व्यक्ति

और

व्यक्तित्व

व्यक्ति और व्यक्तित्व

लेखक
कपिलदेव नारायण सिंह "सुहृद"

प्रथम संस्करण · १९६७

प्रकाशक सन्मार्ग प्रकाशन,
१६ यू० बी० बैंगलो रोड, दिल्ली–७
आवरण शिल्प . पाल बन्धु
मुद्रक भारत मुद्रणालय,
नवीन शाहदरा दिल्ली–३२

समर्पण

भारतवर्ष के महान चिन्तक देश-गौरव
श्री जयप्रकाश नारायण जी
के
कर कमलो मे
सादर समर्पित

कपिलदेव नारायणसिह "सुहृद"

देशरत्न डॉ० राजेन्द्र प्रसाद

जब महात्मा गाँधी ने १९२१ ई० मे असहयोग-आन्दोलन का बिगुल बजाया तब हिन्दू और मुसलमान, चाहे स्त्री हो या पुरुष, बूढे हो या जवान, सबके सब कन्धे से कन्धा भिडा कर हिन्दुस्तान से अँग्रेजी राज्य को उखाड़ फेकने को कटिबद्ध हो गये थे। प्राणो मे पीडा, मन मे उन्माद, आँखो मे उत्सर्ग का तेज, हृदय मे विश्वास तथा मुख-मण्डल पर आशा-नैराश्य की धूप-छाँह लिए राष्ट्र का सम्पूर्ण शरीर एक अभिनव चेतना से कम्पित हो रहा था। विद्यार्थियो ने स्कूल-कॉलेज छोडे, वकीलो ने अपनी चलती वकालत पर लात मारी और अनेक सरकारी अफसरो ने गुलामी की पोशाक उतार फेकी। त्याग और सेवा की सार्वजनिक भावना ने सम्पूर्ण राष्ट्र को एक बार उद्वेलित कर दिया। मेरे मन प्राणो मे भी स्वतन्त्रता की बलिवेदी पर बलिदान होने की उत्कट अभिलाषा, अदम्य उत्साह और अपराजेय उमग की त्रिवेणी कल्लोलित-हिल्लोलित हो रही थी। परतन्त्रता की बेडियो को तोड़ने के लिये मैंने विद्यार्थी जीवन के कर्त्तव्यो को तिलाजलि दे दी और राष्ट्रनायक गाँधी जी के लक्ष्य की पूर्त्ति के लिये अपने छपरा जिले मे ही पूज्य राजेन्द्र बाबू के साथ और कभी उस समय के बाबा रामउदार दास (राहुल बाबा) के साथ घूम-घूम कर काम करने लगा।

१९२२ ई० मे एक दिन मैं राजेन्द्र बाबू को अपने गाँव सिताब दियारे मे ले गया। उनके साथ श्री विन्देश्वरीप्रसाद, श्री शभूशरण जी, श्री मथुराप्रसाद, श्री रामउदार दास (राहुल बाबा) आदि थे। गाँव मे सभा हुई। सभा के बाद उन लोगो ने भोजन किया और चलने लगे। मेरे चाचा श्री दोदराज सिंह ने धोतियो और रुपयों से उन लोगो की विदाई की। लेकिन वे धोतियो और रुपयो को लेने से इन्कार करने लगे। गाँव वालो ने जिद की कि आप लोग पहले-पहल हमारे गाँव मे आये है, इसलिये ये चीजे आप लोगो को लेनी होगी। अन्त मे मथुरा बाबू ने कहा—"अच्छा, केवल धोतियाँ ले ली जायें।" उनकी राय से सभी सहमत हुए। उन्होंने धोतियाँ रख ली और रुपये वापस कर दिये। रास्ते में मथुरा बाबू ने कहा—अगर आप लोग धोतियाँ नही लेते तो श्री दोदराज सिंह को बहुत दु ख होता। यह सुनकर राजेन्द्र बाबू ठठाकर हसे। सभी लोग हसने लगे।

एक बार मथुरा बाबू बालू के ढेर पर गिर गये। उनके मुँह आदि में बालू भर
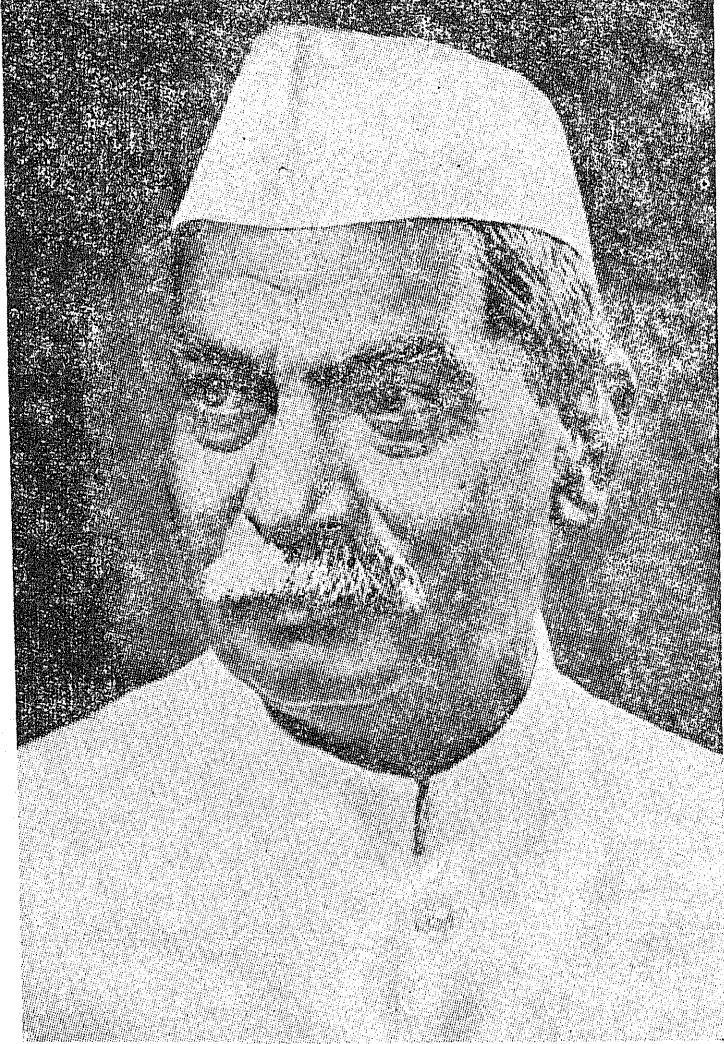
देशरत्न डॉ० राजेन्द्र प्रसाद

गयी। वे हम लोगो के पास आये और बोले—"कपिलदेव बाबू, दियर के टाइल त सब निकल गईल।" यह सुनकर राजेन्द्र बाबू ने मथुरा बाबू से कहा—"आगे-आगे इतना तेजी से दउरत काहे बानी ? हमनी ओ का त छपरे नू जाईब ?" इस पर श्री रामउदार-दास जी ने कहा—"इहा का आगे जाके दौलतगज मे एक्का ठीक करके रखब।" यह सुन कर मथुरा बाबू और तेजी से चलने लगे। श्री रामउदार दास जी ने कहा—"देखल सुहृद मथुरा बाबू के तेजी। ऊ जरूर एक्का जाके ले अइहे।" हम लोग जानटोला होते हुए दौलतगज आये। वहाँ दो इक्के मिले जिन पर चढ कर हम लोग कचहरी के पास गये। मथुरा बाबू का डेरा कचहरी स्टेशन के निकट ही था। वे अपने डेरे मे चले गये। राजेन्द्र बाबू पटना चले गये और विन्देश्वरी बाबू कटरा होते हुए अपने डेरे मे गये। राजेन्द्र बाबू के साथ जब कभी मथुरा बाबू रहते थे तब मैं मथुरा बाबू का दियारे मे गिरकर बालू फाँकना राजेन्द्र बाबू को याद दिला देता था, जिससे राजेन्द्र बाबू खूब हँसते थे। इसके बाद मथुरा बाबू कहने लगते थे—"ए कपिलदेव बाबू, एक दिन और हमनी के अपना गावे ले चली और वोह दिन नियर खूब अच्छा दही खिलइहे।" आज न मथुरा बाबू हैं न राजेन्द्र बाबू। उनकी स्मृति से हमारा कलेजा मुँह को आने लगता है।

१६२२ ई० मे गया काँग्रेस अधिवेशन मे इस बात पर विचार होने वाला था कि हमे १६१६ ई० मे प्रान्तीय स्वशासन का जो दान मिला था उसे हम दामन फैला कर कृतज्ञतापूर्वक ग्रहण करे या नम्र शब्दो मे उसे वापस कर दें। देश का यह दुर्भाग्य था कि महात्मा गाँधी जेल के सीखचो मे बन्द थे। काँग्रेस के जो नेता बाहर थे, उनमे से कुछ कौसिल प्रवेश को राष्ट्रीय आकाक्षा की पूर्त्ति का चरम साधन मानते थे और कुछ इस झमेले मे न पड कर जनता को और भी बलिदान और त्याग करने के लिये तयार रहने की चेतावनी देना चाहते थे। राजेन्द्र बाबू गया काँग्रेस की तैयारी मे जी-जान से जुटे थे। हठात् वे बीमार हो गये। रुपये का प्रबन्ध नही हो सका था। उन दिनो जनता के पैसे से ही आजादी की लडाई लडी जाती थी—जनता की शक्ति, जनता का समर्थन और जनता का पैसा—यही कॉग्रेस का बल था। चिन्ता जब सीमा पार कर गयी तब राजेन्द्र बाबू के पूज्य अग्रज श्री महेन्द्रप्रसाद ने अपनी सम्पत्ति बधक रख कर काँग्रेस-अधिवेशन की तैयारी को आगे बढाया। पूज्य राजेन्द्र बाबू और उनके अग्रज श्री महेन्द्रप्रसाद की त्यागशीलता की स्मृति जब मेरे मानस-लोक मे सुगबुगाती है तब पण्डित जवाहरलाल नेहरू के परिवार के सम्बन्ध मे कही गयी किसी शायर की ये पक्तियाँ मै गुनगुनाने लगता हूँ—

"शम-ये महफिल देख लो,
यह घर का घर परवाना है।"

गया-काँग्रेस के सभापति थे देशबन्धु चित्तरजन दास। विश्व-कवि रवीन्द्रनाथ ठाकुर के शब्दो मे देशबन्धु त्याग मे भीष्म और दान मे कर्ण के समान थे। गया मे ही

स्वराज्य पार्टी का नारा बुलन्द हुआ जिसे, काँग्रेस-अध्यक्ष ने आशीर्वाद दे कर अस्तित्व प्रदान किया। इसमे सन्देह नहीं कि नेता दो दलो मे विभक्त हो गये। काँग्रेस की असहयोग मूलक नीति के प्रतिकूल कौसिल मे प्रवेश करना बहुत लोगो के लिये रुचिकर नहीं था, लेकिन कतिपय प्रभावशाली नेताओ ने इस नीति का समर्थन कर जनता के विचारो मे एक हलचल पैदा कर दी। असहयोग के सिद्धान्तो के श्रवण और मनन से जनता के चिन्तन मे जो एकरूपता उत्पन्न हुई थी उसमे गहरी दरार पैदा हो गयी और कौसिल मे जाना चाहिए या नही, यह प्रश्न बहस का विषय बन गया। इतना होते हुए भी गया काँग्रेस की सफलता मे दो रायें नही हो सकती। इस सफलता का सम्पूर्ण श्रेय गया काँग्रेस-अधिवेशन के स्वागताध्यक्ष श्री ब्रजकिशोरप्रसाद और स्वागत मत्री श्री राजेन्द्र-बाबू को है, जिन्होने अपने प्रयत्न से अनेक चोटी के नेताओ के विक्षुब्ध होने के बावजूद काँग्रेस मे कोई फीकापन नही आने दिया। बिहार के काँग्रेसजनो ने असहयोग-आन्दोलन के चिराग को प्रज्ज्वलित रखा और कौसिल मे जाने के प्रस्ताव का डट कर विरोध किया था। सम्पूर्ण देश ने राजेन्द्र बाबू की कार्य पटुता का लोहा मान लिया था।

१९२७ ई० मे राजेन्द्र बाबू और राहुल जी पटने से बेगूसराय आये। दो बजे दिन मे दोनो व्यक्ति मेरे डेरे मे पधारे और आराम करने के बाद सभा मे गये। रात मे जब दोनो व्यक्ति भोजन करने लगे तब राजेन्द्र बाबू ने कहा—"आज सुबह से सिताब दियारे के ही अन्न खात हो गइल। सुबह पटने मे शभु बाबू के यहाँ खइली हँ और अभी तोहरा हिआँ।" राहुल जी ने हँसते हुए कहा—"सिताब दियारे के अन्न बडा स्वादिष्ट होला। देखत नइखी, खाए मे कितना स्वादिष्ट लागत बा।" मैं अपने गृह मे दो महापुरुषो का आतिथ्य-सत्कार करने मे आत्म-लीन था। भोजनोपरान्त दोनो महापुरुषो से मै बहुत देर तक बाते करता रहा।

१९३० ई० मे राजेन्द्र बाबू बिहार के दौरे के सिलसिले में बछवारा आये थे। उनके साथ मथुरा बाबू भी थे। उनके साथ मै छपरा तक गया। मुझे एक पुस्तक का भूमिका लिखवानी थी। इसलिये मैंने पुस्तक ले ली थी। बछवारा से जब गाडी खुला तब मथुरा बाबू ने कहा—"किताब दीही ना।" मैने पुस्तक राजेन्द्र बाबू की ओर बढा दी। वे थोडी ही देर मे पुस्तक पढ गये और भूमिका लिखा दी। सोनपुर मे मैंने उन्हे भोजन कराया। हम लोग तीसरे दर्जे मे यात्रा कर रहे थे। हम लोग जिस डिब्बे मे थे उसमें हम लोगो के सिवा और कोई नही था। बछवारा से छपरा तक उसमें शायद कोई नही चढा था। हमारे डब्बे के बाद एक जनाना डब्बा था। रात का वक्त था। जब नया गाव से गाड़ी खुली तब एक बदमाश जनाने डब्बे मे चढ गया जिसमे एक औरत थी। बदमाश औरत के गहने आदि छीनने लगा। राजेन्द्र बाबू के नौकर सीताराम ने मुझे इसकी सूचना दी क्योंकि औरत जोर-जोर से बोल रही थी। राजेन्द्र बाबू और मथुरा

बाबू सो गये थे। मैं चलती गाडी में जनाने डब्बे मे चला गया और बदमाश को बहुत डाटा तथा अगले स्टेशन शीतलपुर मे उसे गाडी से उतार दिया। मैं औरत को लेकर अपने डब्बे मे चला आया। औरत दिघवारा स्टेशन पर उतर गई। दूसरे दिन हम लोग छपरे से पटना जा रहे थे। रास्ते मे शीतलपुर स्टेशन पर यह घटना याद आ गयी। मैंने इसका जिक्र राजेन्द्र बाबू से किया। मथुरा बाबू ने कहा—"हमको उस घडी मे क्यो नही जगाया? हम उस बदमाश को ठीक कर देते।" यह सुनकर राजेन्द्र बाबू मुस्कराने लगे और बोले—"हमरा के काहेना जगा देली अ? धरी?" सीताराम ने कहा—"ऊ बहुत मजबूत और पहलवान था।" इस पर मथुरा बाबू बोले—"हम अकेले उमे देख लेते।" राजेन्द्र बाबू ने विनोद मे कहा—मथुरा बाबू देखने मे पतले है लेकिन भीतर से बहुत मजबूत हैं।" यह सुनकर मैं बोला—"मजबूत है तब तो उस बदमाश को अकेले देखने की हिम्मत कर रहे हैं।" सोनपुर मे हम लोग पटना जाने वाली गाडी मे बैठे। मथुरा बाबू होटल मैनेजर जगदीश बाबू के पास गये और टोस्ट आदि ले आये। जगदीश बाबू ने राजेन्द्र बाबू से कहा—"गत रात मे सुहृद जी ने तो प्रोग्राम मुझे बतला ही दिया था। मथुरा बाबू तो होटल मे बेकार गये। मैं सामान ले कर आ ही रहा था।" यह सुनकर मथुरा बाबू ने कहा—"यह बात सुहृद जी ने हमे नही कही थी।" इस पर राजेन्द्र बाबू बोले—"सुहृद तो आपको होटल मे जाने से मना ही कर रहे थे।" इस प्रकार दोनो पुरुषो के सहवास का आनन्द उठाता मैं पटना पहुँच गया।

२६ जनवरी, १६३० ई० मे बेगूसराय मे गोली चली थी। १२ मार्च, १६३० ई० मे महात्मा गाँधी ने साबरमती आश्रम से दण्डी की यात्रा की थी तथा दण्डी मे नमक कानून भग कर एक नवीन आन्दोलन का सूत्रपात किया था। नमक कानून भग करने के सिलसिले मे मैं भी गिरफ्तार कर लिया गया था। मैं २ फरवरी, १६३१ ई० मे कारा-मुक्त हुआ था। कुछ दिनो के उपरान्त मैंने सिताब दियारे से एक पत्र राजेन्द्र-बाबू को प्रेषित किया था जिसका उत्तर उन्होने यों दिया था—

सदाकत आश्रम, पटना
११-२-१६३१ ई०

प्रिय कपिलदेव बाबू,

प्रणाम।

आपका पत्र मिला। इसके पहले ही मुझे मालूम हो गया था कि आप जेल से छूट कर आ गये हैं। बेगूसराय मे जो गोली चली थी उसके सिलसिले मे अनुग्रह बाबू गये थे। उन्ही से पता चला कि आप जेल से आ गये है। शहर से बाहर उलाव से पूरब तरफ-वाली गाछी मे अनुग्रह बाबू ठहरे हुए थे। जिन लोगो को गोली लगी है उन लोगो का

फोटो भी अनुग्रह बाबू लाये है। आपको एक-एक कापी उसकी दूंगा। छपरा मे आने वाला हूँ। आने पर आपको खबर दे दूंगा।

आपका—
राजेन्द्र प्रसाद

इस पत्र से जहाँ यह ज्ञात होता है कि वे साधारण से साधारण लोगो के पत्र की भी उपेक्षा नही करते थे, वहाँ यह भी ज्ञात होता है कि वे देश की बडी से बडी राजनीतिक बात की ही जानकारी नही रखते थे, वरन् देश के साधारण से साधारण सिपाही की भी जानकारी रखते थे और उसके प्रति उनके हृदय मे अपार अपनापन था।

१९३१ ई० मे मैं उनके साथ दरभगा गया था। दरभगा से लहेरियासराय दो मील पूरब है। वही पुस्तक भण्डार मे श्री शिवपूजन सहाय जी रहते थे। इच्छा हुई उनसे जाकर मिलने की। मैंने राजेन्द्र बाबू से कहा—"बाबू जी, जरा जात बानी शिवपूजन बाबू से मिले।" उन्होने तुरन्त कहा—"जा मिल आव। खाये के बेरा तक आ जइह।" जब मैं शिवपूजन बाबू के यहाँ से लौटा तब राजेन्द्र बाबू से कहा—"हम शिवजी के इहा एतना अच्छा स्वादिष्ट भोजन कर ली हँ कि अब खाए के मन नइखे करत।" मैंने अनुभव किया कि शिवपूजन जी के प्रति उनके हृदय मे अपार श्रद्धा थी। मैंने मन-ही-मन दोनो देवताओ को नमन किया। पहले यदि राजनीति मन्दिर के प्रतिष्ठित देवता थे तो दूसरे साहित्य-मन्दिर के। दोनो की नि:स्पृहता, विनीतता, सरलता और निर्दभता की समता अन्यत्र दुर्लभ थी।

१९३५ ई० मे छपरे मे जो बिहार प्रान्तीय हिंदी साहित्य-सम्मेलन का अधिवेशन हुआ था उसमे मैंने अनुभव किया कि राजेन्द्र बाबू साहित्य के भी देवता है और उनके हृदय मे साहित्य के प्रति असीम प्रेम है। वे १२ अप्रैल को ही छपरा आ गये थे, किंतु किंचित् अस्वस्थता की वजह से १३ अप्रैल वाले अधिवेशन मे उपस्थित नही हो सके। १५ अप्रैल को मै "दिनकर" जी को उनके पास ले गया। वहाँ डॉ० महमूद भी थे। "दिनकर" ने उन दिनो "नयी दिल्ली' शीर्षक कविता रची थी। राजेन्द्र बाबू ने यह कविता दो-तीन बार पढवा कर सुनी। मैंने देखा कि कविता सुनते-सुनते उनकी आँखे सजल हो गयी थी। मैंने अनुभव किया कि काव्य के प्रति उनके हृदय मे निश्छल प्रेम है। मेरी "निर्झरिणी" और 'प्रेम प्रलाप" पुस्तको पर उन्होने अपनी जो सम्मति दी थी उससे मैं "प्रेम-मिलन" नामक खण्ड काव्य रचने की दिशा मे प्रेरित हुआ था। मेरी तरह और अनेक व्यक्तियो को उनसे सर्जना-प्रेरणा प्राप्त हुई होगी। यदि सच कहा जाय तो वे जितने साहित्यिक थे उससे अधिक वे साहित्य के विषय थे। यही कारण है, हिन्दी के अधिकतर कवियो ने उनकी वन्दना अपनी लेखनी से की है। नागरी प्रचारिणी सभा, आरा ने उन्हे एक वृहत् काव्य अभिनन्दन-ग्रथ १९५० ई० मे अर्पित कर अपनी गौरव-वृद्धि की है जिस अभिनन्दन ग्रथ का सम्पादन

राजा राधिका रमण प्रसाद सिंह, पण्डित रामदहिनमिश्र, आचार्य शिवपूजन सहाय आदि ने किया था। राजेन्द्रबाबू की स्तुति या स्तवन से सम्बद्ध कविताओ का सचयन यदि किया जाय तो ज्ञात होगा कि उन पर जितनी कविताएँ रची गयी उतनी कविताएँ महात्मा गाँधी के सिवा शायद किसी जन नायक पर नही रची गयी और राजेन्द्र बाबू के गुणो की पूजा का अर्थ है गाँधीवाद की पूजा क्योंकि—

"युगल पुण्य आलोक उतर
भारत मे केन्द्रीभूत हुआ।
एक बना राजेन्द्र, एक से
गुरु गाँधी उद्भूत हुआ।"

वस्तुत जिस प्रकार गाँधी जी महात्मा बुद्ध के नवीन सस्करण थे, उसी प्रकार राजेन्द्र बाबू गाँधी जी के नवीन सस्करण थे। लेकिन भोजपुरी के विख्यात कवि श्री रघुवीरनारायण ने राजेन्द्र बाबू से सम्बद्ध अपना जो सस्मरण लिपिबद्ध किया है वह यहाँ विस्मरणीय नही है—"आप एक प्रकार से मेरे स्कूली साथी हैं। हम दोनो का विद्यार्थी जीवन समसामयिक था। आपसे मैं दो या तीन वर्ष आगे था। जिस समय हम लोग छपरा जिला स्कूल के विद्यार्थी थे, उस समय दो महान् व्यक्ति उसी स्कूल मे अध्यापक थे—राय साहब राजेन्द्र प्रसाद जी, जिनकी विद्वत्ता और साधुता की छाप आज भी बिहार मे बहुतो पर पाई जाती है, और बाबू रसिकलाल जी, जिनको अपने शिष्य (राजेन्द्र बाबू) पर बडा गर्व था और जो आपके सयाना होने तक भी जहा-कही भेंट होती तो आपको अवश्य शिक्षा एव मन्त्रणा देते थे। ये उन अध्यापको मे थे, जो अपने छात्रों से उस्तादो का पूरा हक वसूल करते हैं। और, जो लोग स्वर्गीय राय साहब को देख चुके हैं और उनके स्वभाव से परिचित है, वे यह कहे बिना नही रह सकते कि राजेन्द्र बाबू भी उन्ही के समान मधुरभाषी, त्याग-मूर्ति और साधु है। आप पर साधुता की पहली छाप स्वर्गीय राय साहब की ही पडी, गाधी जी की उसके बाद। राय-साहब की गढी हुई साधुता-प्रतिमा की प्राण-प्रतिष्ठा गाँधी जी ने की।"

राजेन्द्र बाबू ने गाँधी जी को १९१६ ई० मे लखनऊ काँग्रेस के अवसर पर पहले-पहल देखा था। वे केवल यह जानते थे कि गाँधी जी ने दक्षिण अफ्रीका में कोई बडा और अच्छा काम किया है, लेकिन वे काम की जानकारी नही रखते थे। लखनऊ काँग्रेस के कुछ दिनो के बाद अखिल भारत वर्षीय काँग्रेस समिति की बैठक कलकत्ते मे हुई। इस बैठक मे राजेन्द्र बाबू गाँधी जी की बगलवाली कुर्सी पर ही बैठे, लेकिन एक शब्द भी उनसे नहीं बोले क्योकि वे आगे बढकर जान-पहचान करना नही जानते थे। बैठक के बाद गाँधी जी श्री रामकुमार शुक्ल के साथ राजेन्द्र बाबू के डेरे पर पहुँचे और राजेन्द्र बाबू कलकत्ते से जगन्नाथ पुरी चले गये। कलकत्ते मे न रामकुमार शुक्ल ने राजेन्द्र बाबू को गाँधी जी का कार्यक्रम बताया था न राजेन्द्र बाबू

ने श्री रामकुमार शुक्ल से कोई बात की थी। इस स्थिति मे राजेन्द्र बाबू के डेरे से गाँधी जी लौट गये थे और शाम को आचार्य कृपलानी के यहाँ मुजफ्फरपुर मे ठहरे थे। इस प्रकार गाँधी जी और राजेन्द्र बाबू के आरभिक मिलन मे दोनो ओर से प्रकृति-जन्य या परिस्थिति-जन्य अन्यमनस्कता थी। राजेन्द्र बाबू का प्रथम परिचय गाँधी जी से श्री गोरखप्रसाद के मकान मे तब हुआ, जब गाँधी जी पर चम्पारन मे कलक्टर की उदूल-हुक्मी का मुकदमा चल चुका था। श्री राजेन्द्र प्रसाद ने अपनी आत्म कथा मे इसका जिक्र यों किया है—"हम लोग जब वहाँ पहुँचे तो गाँधी जी एक कुर्त्ता पहने हुए बैठे थे। हम लोगो से उनका परिचय पहले से नही था। जब परिचय कराया गया तो मुझसे हँसते हुए उन्होने कहा—"आप आ गये ? आपके घर पर तो मै गया था।" मैंने कुछ किस्सा तो सुन लिया था, इसलिए कुछ शर्मिन्दा भी हुआ। उन्होने, जो कुछ कचहरी मे हुआ था, सब कह सुनाया।"

प्रथम परिचय में गाँधी जी का प्रभाव राजेन्द्र बाबू पर विशेष नही पड़ा। लेकिन भावावेश मे राजेन्द्र बाबू ने उन्हे कह दिया कि यदि आवश्यकता होगी तो मैं भी जेल जाऊँगा। और, ज्यों-ज्यो दिन बीतते गये, राजेन्द्र बाबू उनके अनन्य भक्त होते गये। उन्होने चम्पारन आन्दोलन मे सक्रिय रूप से भाग लिया। गाँधी जी का प्रभाव उन पर यह पडा कि वे जाति प्रथा के विरोधी हो गये, स्वावलम्बी जीवन बिताने लगे और तीसरे दर्जे मे सफर करने लगे। १६१७ ई० मे, जब वे चम्पारन मे काम कर रहे थे तब देश मे होमरूल आन्दोलन जोरो से चल रहा था और गाँधी जी की राय थी कि चम्पारन का काम ही होमरूल का सबसे बडा काम है। राजेन्द्र बाबू वकालत करते थे और गाँधी जी के कार्यों मे भी योग देते थे। १६२१ ई० मे उन्होंने "सदाकत आश्रम" की स्थापना मे योग दिया, १६२२ ई० मे "सदाकत आश्रम" मे बिहार विद्यापीठ की स्थापना की और १६२५ ई० से स्थायी रूप मे सदाकत आश्रम मे निवास करने लगे। उन्होने गाँधी जी के असहयोग आन्दोलन का सूत्र-सचालन किया, हिन्दू-मुस्लिम-ऐक्य और खादी प्रचार का कार्य किया, अपने जीवन मे अहिंसा को क्रियात्मक रूप दिया, सत्याग्रह आन्दोलन मे भाग लिया और समाज तथा देश का नेतृत्व किया। बीहपुर (भागलपुर) मे मद्य-निषेध-आन्दोलन मे, १६२६ ई० मे, वे पुलिस की लाठियो से घायल हुए थे और प्रथम बार गिरफ्तार हुए थे। इसके बाद देश मे राजनीति ने चाहे जो करवट बदली हो, उसमे उनका किसी-न-किसी प्रकार का हाथ अवश्य रहा।

१६४० ई० मे मैं व्यक्तिगत सत्याग्रह आन्दोलन के सिलसिले मे गिरफ्तार हो गया था और सी डिवीजन मे रखा गया था। २—६—४१ को सेन्ट्रल जेल भागलपुर में मुझे राजेन्द्र बाबू का एक पत्र मिला जो यो है—

सदाकत आश्रम, पटना
२९-५-१९४१

प्रिय कपिलदेव जी,

प्रणाम।

मै इधर मुगेर जिले मे गया—वही नन्द कुमार बाबू से मालूम हुआ कि आप गिरफ्तार कर लिये गये है। मुझे बहुत अफसोस है कि आपको सी डिवीजन मे रख दिया है। लेकिन इसमे अपना चारा ही क्या है? मैं भागलपुर की तरफ आने वाला हूँ। आने पर वहाँ आप से मिलूँगा। आशा है, आप सुख से और आनन्द से होगे।

आपका—
राजेन्द्र प्रसाद।

वे ८ जून, १९४१ ई० मे डेढ बजे दिन मे मुझसे मिलने आये थे। टेररिस्ट सेल से मै नयागोल मे श्री अनूप जी से मिलने चला गया था। वहाँ उपेन्द्र बाबू के बिस्तर पर मैं सो गया। राजेन्द्र बाबू ने जेलर को मुझे बुलाने को लिखकर दिया। जेल का आदमी मुझे टेररिस्ट सेल मे खोज कर चला गया। उसकी परेशानी बढ गयी। सम्पूर्ण जेल मे यह खबर बिजली की भाँति फैल गयी कि राजेन्द्र बाबू आये है। उनके पास बहुत लोग बिना बुलाये ही चले गये। अधिक लाल ने मुझे बतलाया कि राजेन्द्र बाबू आये है। उसने पूछा—"आप उनसे मिलने नही गये?" मैने कहा—'मेरी बुलाहट कहाँ हुई है?' बिना बुलाये हुए वहाँ कैसे जाऊँ?" इतनी ही देर मे सहायक जेलर मेरे पास आये और कहा—'आप से मिलने को राजेन्द्र बाबू बैठे है और घटो से आपको खोज रहे है। आपकी बुलाहट है। जल्दी आफिस मे चलिए।" मैं आफिस मे पहुँचा। राजेन्द्र बाबू को पैर छूकर प्रणाम किया। वे मुझे सुपरिन्टेन्डेन्ट आफिस मे ले गये। वही एकान्त मे बाते हुई। उन्होने कहा— "तोहरे इन्तजारी मे बइठल रहली हँ। ऐही तीन बजे के गाडी से जाए के बा।" थोड़ी देर के बाद वे चले गये। जाने के समय मेरी आँखें भर आयी। राजेन्द्र बाबू के साथ मथुरा बाबू और नन्दकुमार बाबू भी थे। उन लोगों से भी बातें हुईं। जब वे फाटक से बाहर निकले तब एक मिनट तक खड़े रहे। उन्हे सभी लोगो ने प्रणाम किया और वे चले गये।

२७ फरवरी, ५६ को बिहार हिन्दी साहित्य-सम्मेलन की जो स्वर्ण जयन्ती डॉ० "दिनकर" के सभापतित्व मे मनायी गयी थी, उसका उद्घाटन राजेन्द्र बाबू ने किया था और विद्वत्तापूर्ण भाषण किया था। उसी दिन उन्होने मोकामा मे गगा नदी-पुल का शिलान्यास किया था। मैं उनके साथ ही मोकामा तक आया था। उनके साथ डॉ० अनुग्रहनारायणसिंह, श्री लाल बहादुर शास्त्री आदि अनेक व्यक्ति थे। हर स्टेशन पर राजेन्द्र बाबू, अनुग्रह बाबू और शास्त्री जी की जय-जयकार के नारे गूँजते थे। हाथिदह मे मच पक्का था जो आज भी उस तिथि का स्मारक है। राजेन्द्र बाबू

ने वैदिक विधि से पुल का शिलान्यास किया था। लाखो की भीड थी। कल्पना की आँखो से जब आज भी यह दृश्य देखता हूँ तब आनन्द-पुलकित हो उठता हूँ।

१९५७ ई० मे दैनिक आर्यावर्त मे डॉ० राजेन्द्र प्रसाद का एक चित्र प्रकाशित हुआ था, जिसमे वे अपनी एक प्रस्तर-मूर्ति के, जो लोगो ने उनके जन्म-दिवस ३ दिसम्बर, १९५७ ई० को भेट की थी बगल मे बैठे हुए है। मूर्तिकार ने उनकी ऐसी सुगढ प्रतिमा गढी थी कि उसे देख कर सहसा पता नही चलता था कि कौन वे स्वय हैं और कौन प्रस्तरमूर्ति है। मैने पूज्य राजेन्द्र बाबू को एक पत्र लिखा और जो फोटो आर्यावर्त मे छपा था उसकी कटिंग उनके पास भेज दी। पत्र मे मैने निवेदन किया था कि चित्र की मूल प्रति मुझे भेजने की कृपा करेगे और साथ ही सभव हो तो अपना एक अन्य नया चित्र भी उन्होने पत्र पाते ही दोनो फोटो मेरे पास भिजवा दिये। उन्हे प्राप्त कर मुझे असीम प्रसन्नता हुई। मैने जाना कि बडो का बडप्पन इस बात मे नही है कि वे जमीन से कितनी ऊँचाई तक उठ सके है वरन् इस बात मे है कि अपने से छोटे को कितना स्नेह वे दे पाते हैं। बादल इसलिए वरेण्य नही माना जाता कि वह हवा के पख बाँधकर आसमान मे उडता है वरन् इसलिए वरेण्य माना जाता है कि वह सूखी मिट्टी पर बरस कर उसे उर्वर बनाता है। वे दोनो चित्र आज भी मेरे ड्राइगरूम की शोभा बढा रहे है। भारत के बडे-बडे नेता जो मेरे यहाँ ठहरते है, उन चित्रो को एक बार अवश्य देखते है और भाव-विभोर हो उठते है।

५ अक्तूबर, ५९ को राजेन्द्र बाबू राष्ट्रभाषा परिषद् (पटना) के वार्षिकोत्सव मे पधारे। इस आयोजन मे मैं भी सम्मिलित हुआ था। ३० दिसम्बर, ५९ को उन्होने बरौनी मे मक्खनशाला का शिलान्यास किया था। शिलान्यास-समारोह के बाद उन्होने सक्षिप्त भाषण किया था। इसके बाद सब लोग स्टेशन पर चले आये। मैंने प्लेटफार्म पर ही कुर्सी निकलवा दी और उनसे बैठने का आग्रह किया। बिहार के राज्यपाल डॉ० जाकिर हुसेन भी साथ थे। दोनो व्यक्ति धूप मे ही बैठ गये। राजेन्द्र-बाबू ने मुझसे कहा—"तु हूँ एक ठो कुर्सी माग लऽ।" मै भी कुर्सी मगाकर उनकी बगल मे बैठ गया। जाडे की धूप बडी स्पृहणीय लग रही थी। मैंने उनसे पुल देखने का आग्रह किया। पास ही खडे मेरे एक मित्र ने भी थोडा जोर लगा दिया। साधुमना राजेन्द्र बाबू सहज ही तैयार हो गये। उन्होने मोटर से चलने की इच्छा प्रकट की। मैंने कहा—"सडक अभी ठीक से तैयार नइखे भइल।" तब उन्होने गाडी से ही चलना स्वीकार किया। जनरल मैंनेजर खॉ साहब की खोज हुई। खाँ साहब पाच मिनट मे अपने स्टाफ से पूछ कर आये और कहा—"पैंतीस मिनट का समय दिया जाय।" पैंतीस मिनट मे गाडी आ गयी। राजेन्द्र बाबू गाड़ी से उतर कर पुल पर बहुत दूर तक चले गये। डॉ० जाकिर हुसेन साहब से मैं पुल के बगल मे खडा होकर बातें करता रहा। डॉ० साहब को मैंने कहा—'आपका नाम मैं बहुत पहले से सुना करता था।" उन्होने मुस्कराते

हुए पूछा—"क्या शरारत मे ?" मैंने भी सहास उत्तर दिया—"नही, नही विद्वत्ता मे।" थोडी देर मे डॉ० ज्ञानवती दरबार भी आ गयी और हमारी बात-चीत मे योग-देने लगी। बाद मे राजेन्द्र बाबू लौटे। सभी लोग सैलून मे सवार हुए। वहाँ कॉफी और बिस्कुट से सबका स्वागत किया गया। हमलोग बरोनी आये। राजेन्द्र बाबू मुजफ्फरपुर चले गये और मैं सुहृदनगर आ गया।

राजेन्द्र बाबू ने अपनी "आत्मकथा" लगभग नौ सौ पृष्ठो मे लिखी है। यह "आत्म कथा" वस्तुत भारत की राजनीति का इतिहास है। जिसमे १९४६ ई० तक की घटनाएँ वर्णित है। २ सितम्बर, १९४६ ई० मे भारत की दरमियानी राष्ट्रीय सरकार के वे खाद्य-कृषि मत्री बने।वे भारत के प्रथम राष्ट्रपति बने और लगातार दस वर्षों तक इस पद पर आसीन रहे। वे भारत के निर्माता थे। उनका जन्म छपरा जिले के अन्तर्गत "जीरादेई" नामक ग्राम मे ३ दिसम्बर, १८८४ ई० को हुआ था। उनके पिता का नाम श्री महादेव सहाय था। उनका निधन पटने मे हुआ।

पण्डित जवाहरलालनेहरू

जो पुरुष अपने कर्मों से इतिहास की सरिता के प्रवाह को मोडता है, वह युग-पुरुष कहलाता है। पण्डित जवाहरलाल नेहरू युग पुरुष थे। उनका युग २७ मई, १९६४ ई को तिरोहित हो गया, जब वे दिवगत हो गये। 'दिनकर' ने बापू के सम्बन्ध मे, जब वे नोआखाली मे मानवता के आंसू पोछने गये थे, लिखा था—

"इतिहास परख नूतन विधान,
पन्ने समेट ले पुरा चीन,
बापू ने कलम उठायी है,
लिखने को कुछ गाथा नवीन।"

नेहरू जी ने गाधी जी के स्वर्गारोहण के पश्चात् अपने युग का अवतरण किया और इतिहास के प्रवाह को मोड दिया। वेप्रत्यक्षत भारतीय स्वतत्रता-युद्ध की प्रथम पक्ति के नायक थे और स्वतन्त्र भारत के सर्वप्रथम प्रधान मन्त्री थे, किन्तु अप्रत्यक्षतः थे वे भारत की आत्मा और नवीन भारत के सर्जक।

वे गाधी जी के सच्चे अर्थों मे राजनीतिक उत्तराधिकारी थे। वे ससार के महान् राजनीतिज्ञो मे परिगणित होते थे। एशिया और अफ्रीका के नेताओ मे वे सर्वोपरि थे, ससार की पीडित, मर्दित, शोषित, शासित और लाछित मानवता के मुक्तिदाता थे और उन्नयनकर्त्ता भी। वे आपादमस्तक कर्मठ थे, भविष्य के महान् द्रष्टा और स्रष्टा थे, चिन्तक थे, दार्शनिक थे, पर्यटक थे और विश्व शान्ति के पुजारी और पथ प्रदर्शक थे। वे सर्वप्रिय थे। भावाभिव्यक्ति की जिस असमर्थता की स्थिति मे महाकवि तुलसीदास ने लिखा था—

"गिरा अनयन, नयन बिनु बानी।"

नेहरू जी के व्यापक-विराट् व्यक्तित्व को शब्दो की सीमा मे बाँधने मे मैं भी अपने को उसी स्थिति मे पाता हूँ। इसलिए मैं उनकी वसीयत के कुछ वाक्यों का उद्धृत कर असीम प्रसन्नता का अनुभव करता हूँ—'अगर मेरे बाद कुछ लोग मेरे बारे मे सोचें, तो मैं चाहूँगा कि वे कहे—वह एक ऐमा आदमी था, जो अपने पूरे दिल-व-दिमाग से हिन्दोस्तान से और हिन्दुस्तानियो से प्रेम करता था और हिन्दुस्तानी भी उसकी खामियो को भूलकर उससे बेहद प्रेम करते थे।" मैं जानता हूँ, इन पक्तियो से नेहरू जी
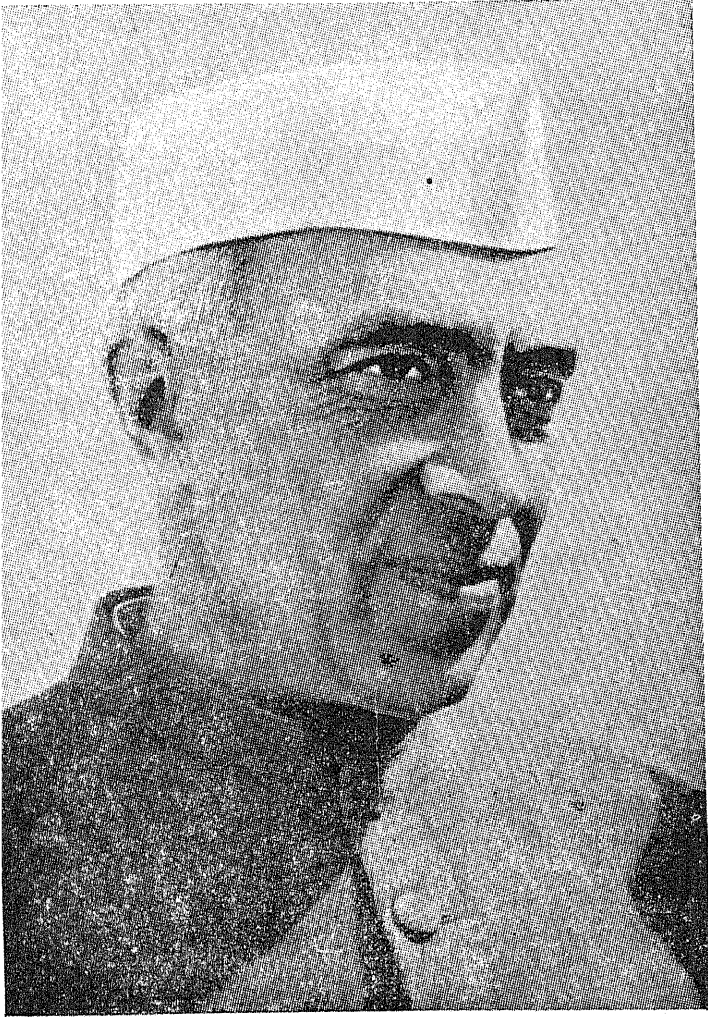
पण्डित जवाहरलाल नेहरू

की आत्मा को स्वर्ग मे भी आनन्द मिलता होगा। लेकिन मैं यहाँ कहना चाहता हूँ, "वे भारत एव विश्व के लिए पैदा हुए थे और हमे नई रोशनी, नये सकेत प्रदान कर हमसे विदा ले गये।"

वे एक वैभवशाली और प्रतिष्ठित परिवार मे उत्पन्न हुए थे। उनका लालन-पालन-पोषण राजकुमारो का-सा हुआ था। उन्होने कैम्ब्रिज और हैरो विश्वविद्यालय मे शिक्षा-दीक्षा प्राप्त की थी। जब वे स्वदेश लौटे तब महात्मा गाधी की वरद छाँह मे यौवन की सुख-सुविधाओ को ठुकरा दिया और स्वतन्त्रता के युद्ध मे सक्रिय रूप से भाग लेने लगे। उनके व्यक्तित्व मे जादू था। सन् १६२७ ई० मै वे मुजफ्फरपुर पधारे थे। तिलक-मैदान मे उनका भाषण होने वाला था। किसी कार्यवश मे भी मुजफ्फरपुर गया हुआ था। तिलक-मैदान मे पहुँच गया। तब तक उनके भाषण का श्रीगणेश हो चुका था। श्रोताओ और दर्शको की सख्या बहुत कम थी। जब उनका भाषण समाप्त हुआ तब उन्होने पूछा—"कब आये ?" मैंने कहा—"आज सुबह। मालूम हुआ कि आप यहाँ पधारे हैं तो चला आया।" इसके उपरान्त मैं उन्हे गाडी मे बिठाने को चला। जब वे गाडी मे बैठ गये तब कहा—"आइये, चलिये।" अखाडाघाट के बगल मे, एक कुटीर मे वे ठहरे थे। उनके साथ गाडी मे बैठ गया। सडक से नीचे की ओर बालू थी। वहाँ वे गाडी से उतर गये। मैं भी गाडी से उतर गया। दोनो व्यक्ति पैदल ही चले। गाडी उनके आवास स्थान तक नही जा सकी। वह बाबू किसुनचन्द (काली कोठी) की थी। मैंने चालक से कहा—"गाडी रोके रहना, मैं आ रहा हूँ।" पण्डित जी से बाते करते-करते मैं कुटीर तक पहुँचा। कुछ देर तक बैठकर मै खद्दर के विषय मैं बतियाता रहा। उन दिनो मुजफ्फरपुर खद्दर का केन्द्र था। कुटीर के पास ही, सडक के बगल मे, किसी का मकान था जिसमे खद्दर का गोदाम था। पण्डित जी ने पूछा—"यहाँ खद्दर बनता है क्या ?" मैंने उन्हे बतलाया—"थोडा-बहुत खद्दर यहाँ भी बनता है, लेकिन अधिकतर खद्दर मधुबन मे बनता है और वहाँ से यहाँ लाया जाता है।" मेरी गाडी का समय निकट आ रहा था। इसलिए मेरा मन स्टेशन पर था और केवल शरीर से मैं उनके निकट था। मेरा मन बातचीत मे नही लग रहा था। इसलिए कुछ देर के बाद मैंने उनसे कहा—"जाता हूँ। गाडी का समय हो गया है।" उन्होंने जाने की इजाजत दे दी। मैंने उन्हे प्रणाम किया और स्टेशन चला आया। मैंने अनुभव किया कि वैयक्तिक रूप मे उनकी विशेषता की सज्ञा निश्छल मानवीयता थी। इच्छा, विचार, भावना, सवेदना और उनकी अभिव्यक्ति तथा सतृप्ति आदि सभी दृष्टिकोणो से विचार करने पर मैंने उन्हे पूर्णतः मानवीय पाया। उनमे मानव-मात्र की इच्छाओ और आकाक्षाओ की गम्भीर और तलस्पर्शी समझ-बूझ तथा उनके प्रति असीम सहानुभूति के दर्शन हुए।

वे मानव को प्रकृत्या पाप-विमुक्त और कलकरहित मानते थे तथा समस्त

सुख-दुख सहित मानव-जीवन को पूर्णतः ग्राह्य और योग्य समझते थे। वे जीवन को प्यार करते थे और अपने ढग से उसकी अनुभूतियो को ग्रहण करते थे। उनके जीवन के चारो ओर अदृश्य बाधाएँ घनीभूत थी, लेकिन जीवन जीने की इच्छा की वाध्यता से वे जीवन से खेलते थे, उसके कूलो से झाँककर देखते थे और उसके दास नही होते थे। वे नियमित रूप से व्यायाम के अभ्यासी थे। यह अभ्यास उनका पैतृक वरदान था। वे योगासन करते थे। वे कुशल खिलाडी थे। चाहे क्रिकेट हो या टेनिस, वाली-बॉल हो या बैडमिटन, तैराकी हो या घुडसवारी या दौड़—सब मे उनकी अभिरुचि थी। उन्होने बतलाया कि जब वे कैम्ब्रिज मे पढते थे तब उन्हे दौड मे पुरस्कार भी हासिल हुआ था। वे बायसिकिल चलाना जानते थे और वायुयान भी।

१९२८ ई० मे काग्रेस का वार्षिक अधिवेशन कलकत्ते मे हुआ था। बिहार वाले अपने कैम्प मे थे। बातचीत के सिलसिले मे सुभाष बाबू ने किसी को कह दिया कि बिहारी सत्तूखोर होते हैं। कानोकान यह बात बिजली की तरह फैल गयी। बिहार वालो ने काग्रेस के अधिवेशन मे जाने से इन्कार कर दिया। सुभाष बाबू राजेन्द्र बाबू से मिलने को बिहार कैम्प मे गये और अपनी बात पर उन्होने दु ख प्रकट किया। तब बिहार वाले काग्रेस के अधिवेशन मे गये। मिलो का काम करने वाले कुलियो का दल जवाहरलाल जी के दर्शन करने को पण्डाल मे घुस गया। बडा हगामा हुआ। जवाहरलाल जी पण्डाल के भीतर घूम रहे थे। मुझे देखकर उन्होने पूछा— "क्या हुआ था तुम्हारे कैम्प मे ?" मैंने उन्हे सारी बाते बतलायी। इसके बाद वे बोले—सुभाष बाबू को ऐसा नही बोलना चाहिए। राजेन्द्र बाबू तो सन्त है। हम लोग उनका लिहाज करते हैं।" इस प्रकार दोनो व्यक्ति टहलते हुए बातचीत कर रहे थे। उन्होने पूछा— "क्या बिहार मे सत्तू बहुत होता है ?" मैंने उन्हे बतलाया कि छपरे मे सत्तू बहुत अच्छा बनता है, खाने मे स्वादिष्ट होता है और गरीब-अमीर सभी खाते हैं। इसके बाद उन्होने कहा कि एक रोज मुझे भी खिलाना। मैंने कहा कि सन् १९२४ ई० मे पण्डित मदन मोहन-मालवीय छपरा गये थे। लोगो ने उन्हे सत्तू खिलाया था। वे बहुत प्रसन्न हुए थे। इस प्रकार हम लोग बतिया रहे थे कि मिल-मजदूर फाटक के अन्दर घुस गये। बडी भीड जमा हो गयी। मजदूरो का कहना था कि हम लोग जवाहरलाल जी को देखकर चले जायेगे। तब तक जवाहरलाल जी बाहर ही टहलते रहे। मै पण्डाल मे जाना चाहता था किन्तु वे मुझे अपने साथ ही रोके रहे। खुले अधिवेशन का समय हो चुका था, लेकिन मजदूरो को निकालने मे किसी का वश नही चलता था। मैंने जवाहरलाल जी से कई बार अनुरोध किया—"भीतर चलिए। आपके दर्शन कर वे सब लोग चले जायेंगे।" उन्होने हँसते हुए पूछा—"वे लोग भी तुम्हारे यहाँ के है क्या ?" मैंने उत्तर दिया—"अधिकतर लोग बिहार और यू० पी० के होगे।" कुछ देर तक दोनो व्यक्ति बतियाते रहे। एकाएक उन्होने कहा—"अच्छा, चलो, पण्डाल मे मच पर पहुँचें।" दूसरे

ही क्षण किसी ने एलान किया—"जवाहरलाल जी आप लोगो के सामने हैं।" उनके जय के नारो से आकाश गूँजने लगा। पण्डाल मे एक अपूर्व जोश छा गया और सरगर्मी छा गयी। इसके बाद किसी ने कहा—"आप लोगो ने जवाहरलाल जी को देख लिया। अब आप लोग बाहर जायँ।" मजदूरो की सभा की ओर से आवाज आयी—"पण्डित मोतीलाल-नेहरू को भी देखना चाहते हैं।" जिसे सुनकर नेहरू जी हँसने लगे। मैंने उनसे निवेदन किया—"ये मजदूर आपके इशारे पर चलनेवाले हैं। आप इन्हे पण्डाल के बाहर जाने को कहेगे तो ये लोग चले जायेगे।" अन्त मे वही हुआ भी। उन्होने कहा—"पण्डित जी के दर्शन करके चले जायेगे।" तब जवाहरलाल जी ने कहा—"आप लोग शान्तिपूर्वक बैठे। बहुत जल्द पण्डिल मोतीलाल नेहरू आ रहे है। कुछ देर के बाद पण्डित जी पण्डाल मे आये, मच पर खडे हो गये और जयजयकार हुआ। तब फिर पण्डित जी ने प्रार्थना की—"अब आप लोग बाहर जायँ।" सभी मजदूर जवाहरलाल जी का जयकार करते हुए सभा से बाहर चले गये। रात मे राजेन्द्र बाबू ने पूछा—"जवाहरलाल जी से का बतिआवत रहलह।" मैंने कहा—"सतुआ के विषय मे अधिक देर तक बातचीत भइल। ओकरा बाद जवाहरलाल जी कहलन कि लोग राजेन्द्र बाबू से लिहाज करते हैं।" मैंने अनुभव किया कि जवाहरलाल जी कृत्रिमता से चिढ जाते थे। उनके हृदय मे अपार उदारता थी। यदि वे किसी को गलत बात कह डालते थे और भूल महसूस करते थे तब उससे क्षमा-याचना करने मे शर्म नही महसूस करते थे। उनमे नैतिक साहस का पुज था। उनकी प्रकृति मे विनम्रता थी। उनमे अहकार नही था। वे मनसा-वाचा-कर्मणा एक थे। वे 'अन्त. शैवा. और 'बहिरशाक्त' नही थे। उनके वाह्य और आन्तरिक जीवन मे सामजस्य था। चाहे वे एक व्यक्ति से बाते करते हो, अथवा लाख व्यक्तियो से, वे एक ढग से बातें करते थे। भोजन के बारे मे उनकी विशेष रुचि न थी। वे जहाँ भी होते थे, वहाँ के अनुरूप भोजन कर लेते थे। अभिप्रेत अर्थ यह है कि वे बेतकल्लुफ थे। वे अपनी आवश्यकताओ की पूर्ति के लिए औरों पर अवलम्बित नही रहते थे। वेश-भूषा के बारे मे वे बहुत सावधान रहते थे और बढ़िया वस्त्रो के साथ बढिया सिलाई पसन्द करते थे। वे प्राय· खादी की अचकन और पायजामा ही पहनते थे। उनमे राष्ट्रीयता कूट-कूटकर भरी हुई थी। वे अथक परिश्रमी थे और बेहद कर्मठ।

१९३४ ई० की पन्द्रह जनवरी को बिहार में जो भूकम्प हुआ, वह इतिहास का अग बन गया। बिहार में अगणित लोग मरे। शहर के शहर और गाँव के गाँव ध्वस्त हो गये। इस सिलसिले मे जवाहरलाल जी का दौरा हुआ। वे मुगेर जाने वाले थे और बरौनी जकशन स्टेशन के प्रतीक्षालय मे ठहरे हुए थे। बेगूसराय वालो की राय हुई कि उन्हे मोटर से बेगूसराय लाया जाय और मोटर से ही मुगेर घाट पहुँचा दिया जाय। कुछ लोगों ने कहा कि वे अपना कार्यक्रम नही बदलेंगे और बेगूसराय नहीं आयेंगे।

रामाधीन बाबू ने कहा कि सुहृद जायगा तब वे आ सकते है। मैंने उन्हे भी साथ लिया और बरौनी प्रस्थान किया। वे प्रतीक्षालय मे चाकलेट रग का खादी का होलडाल बिछाकर बैठे हुए थे और कुछ लिख रहे थे। मैं भीतर गया, उनको प्रणाम किया और रामाधीन बाबू से परिचय कराया। जवाहरलाल जी ने पूछा—"कहाँ से आ रहे हो?" मैने उन्हे अपना मकसद बतलाया। उन्होने कहा—"मुझे सध्या समय मुगेर पहुँचना है।" मैंने उन्हे कहा—"जिस जहाज से आप मुगेर जायेगे, मै उसी जहाज को पकडवा दूँगा। हम लोग बेगूसराय से मोटर से आपको मुगेर घाट पहुँचा आयेगे।" उनके साथ श्री मोहनलाल सक्सेना भी थे। मेरी बाते सुनकर पण्डित जी ने कहा—"तुम्हारी राय है तो चलो, लेकिन मेरा जहाज नही छूटना चाहिए। उन्होने अपना बिस्तर स्वय बाँधा। रामाधीन बाबू ने कुली बुलवाया। हम लोग मोटर से सतीश बाबू के यहाँ पहुँचे। वहाँ लोग पहले से इकट्ठे थे। सभा हुई। सभा के बाद उन्होने मेरे कधे पर हाथ रखते हुए कहा—"अब तो चलना चाहिए।" हम लोग मोटर मे बैठे और मुगेर घाट के लिए प्रस्थान किया। रास्ते मे उन्होने मुझसे कहा—"बेगूसराय मे भूकम्प का उतना असर नही देखा, जितना मुजफ्फरपुर मे।" मैंने हँसते हुए कहा—"मैं था, इसलिए नही हुआ।" मेरी बाते सुनकर सभी लोग हँसने लगे। जवाहरलाल जी ने कहा—"हाँ भाई, तुम तो कपिल मुनि ठहरे। तुम तो स्वय क्रान्तिकारी हो—गगा को हिमालय से गगासागर तक पहुँचाया।" उन्होने १६२८ ई० मे कलकत्ता काग्रेस मे हुई सत्तू की चर्चा सक्सेना साहब से की और उन्हे यह भी बतलाया कि मेरा घर यहाँ नही, छपरा है, जहाँ राजेन्द्र बाबू का घर है। तब सक्सेना साहब ने मुझसे पूछा—"आप यहाँ कैसे आये?" मैंने हँसते हुए नेहरू जी से पूछने का इशारा किया। सक्सेना साहब नेहरू जी से पूछ बैठे। नेहरू जी ने मजाक करते हुए कहा—"वहाँ सत्तू की कमी हो गयी।" सब लोग हँसने लगे। हम लोग मुगेर घाट पहुँचे तब रामाधीन बाबू स्वय होलडाल उतारने लगे। मेने कहा—"वकील साहब, कुली आ रहा है।" इस पर जवाहरलाल जी ने हँसते हुए कहा—"हम लोग क्या हैं?" कुली आया। सामान जहाज पर ले गया वह। नेहरू जी ने पूछा—"जहाज पर चाय का इन्तजाम रहता है? यह जहाज किसका है?" मैंने उत्तर दिया—"मेरे जिले के ही सोनपुर के बाबू भग्गूसिह का।"

"तब तो तुम जहाज पर चाय का इन्तजाम जरूर कर लोगे।" चाय की व्यवस्था हो गयी। पण्डित जी और सक्सेना साहब को चाय दी। उन्होने कहा—"तुम क्यो नही पीते?" मैंने उत्तर दिया—"मैं नही पीता।" यह सुनकर उन्होने कहा—"मैं भी नही पीता। लो, पिओ।" हम लोगो ने चाय पी। जहाज खुलने का समय हुआ। मैंने नेहरू जी और सक्सेना साहब को प्रणाम किया और जहाज से नीचे उतरा। जहाज तीर की तरह चला। मै रामाधीन बाबू के साथ मुगेर घाट से लौटा।

मेरे मनश्चक्षुओ मे नेहरू जी घूम रहे थे। वे प्रात काल सात बजे से लेकर रात के डेढ बजे तक परिश्रम करते थे। हर रोज अठारह-उन्नीस घण्टो तक परिश्रम करना गुडिया का खेल नही है। वे विश्राम को अनिवार्य नही मानते थे। उनके जीवन का प्रत्येक क्षण देश-कल्याण की वेदी पर अर्पित था। वे अतीव भावुक व्यक्ति थे। किसी भी बात का प्रभाव उनपर अधिक होता था। वे किसी की भूल पर क्रुद्ध हो उठते थे, निस्सहाय व्यक्तियो की सहायता का प्रयत्न करते थे और ऐसे मामलो मे उन्हे अपने बडप्पन का एहसास नही रहता था।

वे बच्चो के साथ घुल-मिलकर बाते करते थे तथा उनके प्रति अत्याधिक प्रेम और स्नेह दिखलाते थे। वे जनता के बीच अपने को साधारण व्यक्ति समझते थे। कन्याकुमारी से कश्मीर तक जहाँ वे जाते थे वहाँ के लोगो पर अपने व्यक्तित्व का प्रभाव डाल देते थे। प्रत्येक भारतवासी यह महसूस करता था कि वे भारत के है, सबके आत्मीय है और किसी विशेप स्थान या प्रान्त के व्यक्तियो से वे सम्पृक्त नही हैं यानी सब की भावनात्मक एकता उनके साथ थी।

१९३६ ई० की बात है। मैं लखनऊ काग्रेस मे गया। वहाँ अखिल भारतवर्षीय कवि सम्मेलन भी था। कवि-सम्मेलन मे भारत के प्राय. सभी साहित्यकार, कवि और आलोचक गये थे। सम्मेलन के कर्त्ता-धर्त्ता बाबू गुलाबराय, एम० ए० थे। अध्यक्ष थे हिंदी के क्रान्तिकारी और दार्शनिक कवि पण्डित बालकृष्ण शर्मा "नवीन"। मैं श्री जयशकर प्रसाद और प्रेमचन्द के साथ बैठकर बाते कर रहा था। श्री गुलाबराय ने मेरा नाम पुकारा। मै मच पर गया। 'नवीन" जी ने मेरा परिचय दिया और कविता पढने के लिए मुझसे आग्रह किया। मैने "अयि मातृमूर्ति, तू जाग-जाग" शीर्षक कविता का सस्वर पाठ किया। लोगो ने यह कविता खूब पसन्द की। जनता के आग्रह पर दो-तीन और कविताएँ पढी जिन्हे लोगो ने खूब पसन्द किया। जब मै बैठ गया और जनता आग्रह करती रही तब गुलाबराय जी ने मजाक करते हुए कहा—"अब सुहृद जी अपनी सुहृदता दिखाने से लाचार हैं।" मैने खडा होकर जनता से माफी माँगी। खुले अधिवेशन मे मै मचपर बैठा। राजेन्द्र बाबू से बातें कर रहा था। उसी समय जवाहरलाल जी ने टोका—"तुमने कवि-सम्मेलन मे अच्छी कविताएँ पढी।" मैंने हँसते हुए पूछा—"आपको किसने कहा?" उन्होने "नवीन" जी की ओर सकेत करते हुए कहा—"तुम्हारे अध्यक्ष महोदय ने तुम्हारी तारीफ की है। उस कविता को मुझे भी सुनाना।" मैंने तत्काल कविता लिखकर पण्डित जी को दे दी। उसी अवसर पर मैंने उन्हें राजेन्द्र बाबू से कुछ कहने को कहा। क्या कहा, यह याद नही है। उन्होंने स्वाभाविक रूप में कहा—"मैं उनसे लिहाज करता हूँ। मैं नही कहूँगा।" जब यह मैंने राजेन्द्र बाबू से कहा तो उन्होंने उनका बडप्पन बताया।

१९४० ई० में रामगढ मे काग्रेस-अधिवेशन हुआ। गुलाम भारत मे कांग्रेस का

वह शानदार अधिवेशन था। डॉ० अनुग्रह नारायण सिह जी ने महीनो पहले पत्र लिखकर मुझे रामगढ काग्रेस मे बुला लिया था। मैं वहाँ जाकर निवास-विभाग की व्यवस्था मे लग गया। अधिवेशन का समय ज्यो-त्यो नजदीक आता गया, कामो का बोझ बढता गया। नेता-निवास एक ऊँची जगह बना था जिसका निर्माण श्री रामजी प्रसाद वर्मा ने किया था। अधिवेशन के एक सप्ताह पूर्व ही महात्मा गाधी रामगढ आ गये थे। क्रमश सभी नेता आते गये। विषय-समिति की बैठक के लिए अलग पण्डाल बना था। मैं प्रतिदिन सुबह को नेता-निवास मे जाकर सबसे मिलता था और देखता था कि किसी प्रकार की असुविधा तो नही है और किसी को किस चीज की जरूरत है। सब जगह से घूम-फिर कर अन्त मे मैं नेहरू जी के कैम्प मे पहुँचता था। जब उनकी नजर मुझ पर पड जाती और वे मूड मे होते तो मुझे अपने पास बुला लेते और उस इलाके का हाल-चाल पूछते थे। एक दिन मैं उनकी सेवा मे कुछ फूलो के गुलदस्ते लेकर पहुँचा। उनके साथ श्रीमती सरोजनी नायडू बैठी हुई बातें कर रही थी। नेहरू जी ने मेरा परिचय श्रीमती नायडू से कराया और उन्हे कहा—"आपकी अँग्रेजी मे होती है तो इनकी हिन्दी मे।" श्रीमती नायडू ने कविता सुनाने का आग्रह किया। मैं हँसता रहा और कविता सुनाने से बचता रहा। अन्त मे नेहरू जी ने कहा—"कोई एक कविता धीरे-धीरे सुना दो।"

मैने लगातार चार-पाँच कविताएँ सुनायी। इससे बाद मैने कहा—"यहाँ भी अखिल भारतीय कवि-सम्मेलन हो रहा है। आप चलियेगा और इन्हे भी साथ ले चलियेगा—ये अपनी कविताएँ सुनायेगी।" श्रीमती नायडू ने कहा—"अगर ये चलेगे तो मैं भी चलूँगी।"

जिस समय कवि-सम्मेलन था उसी समय विषय-समिति की बैठक भी थी। बैठक बहुत देर तक हुई। देश की परिस्थितियो पर गरमागरम बहस होती रही। मैं भी वही काम मे व्यस्त रहा। इसलिए मैं कवि सम्मेलन मे नही जा सका। दूसरे दिन जब मैं नेहरू जी के पास पहुँचा तो उन्होने उपालभ दिया—"आप मुझे कवि-सम्मेलन मे नही ले गये।" मैंने उत्तर दिया—"विषय-समिति की बैठक बहुत देर तक होती रही। पण्डाल मे बहुत सरगर्मी थी। इसलिए आपसे नही कहा।" उन्होने हँसते हुए कहा—"पण्डाल मे सरगर्मी थी, तो ठडापन भी लाना जरूरी था। मुझे आप उस समय कहते तो मै जरूर जाता और सरोजिनी नायडू को भी ले जाता।" दोनों व्यक्ति वहाँ से उठे और श्रीमती सरोजिनी नायडू के कैम्प मे गये। वहाँ हम लोग बहुत देर तक बैठे। नेहरू जी बराबर कविता के विषय मे ही बातें करते रहे। मैने अनुभव किया कि वे प्रकृत्या कवि थे। परिस्थितियों ने उन्हे राजनीतिक नेता बना दिया। वे श्रीमती नायडू की कविताएँ सुनने लगे।

तत्क्षण एक स्वयंसेवक मुझे खोजते हुए पहुँचा। ज्ञात हुआ कि बाबू साहब ने

नेहरू जी के लिए फूल भिजवाये हैं। मैंने फूल लेकर नेहरू जी के निवास स्थान पर भिजवा दिये। जब हम दोनों वहाँ से चले तो मैंने नेहरू जी को बतलाया कि अनुग्रह बाबू ने आपके लिए राँची से फूल मँगवाये हैं। उन्होने सोल्लास पूछा—"फूल कहाँ है ?" मैंने उत्तर दिया—"आपके डेरे मे भिजवा दिये है।" यह बात सुनकर वे डेरे की ओर बडी तेजी से बढे और फूलो को देखकर बेहद खुश हुए मानो उन्हे आकाश के तारे मिल गये हों। हम दोनो अनुग्रह बाबू की कर्मठता पर बाते करने लगे। मैंने कहा—"जो कुछ आप यहाँ देख रहे है, सब कुछ अनुग्रह बाबू की देन है। सब चीजो और बातों पर निगरानी रखना उन्ही का काम है।" तब नेहरू जी बोले—"सचमुच यह एक चीज बन गयी।"

दूसरे दिन मै सुबह को सात बजे उनके डेरे पर पहुँचा। वे अखबार पढ रहे थे। टेबुल पर बहुत अखबार थे। देखते ही उन्होने पूछा—"आज अखबार देखे हैं ?"

मैंने उत्तर दिया—"नही, क्या है ?"

उन्होने बतलाया—"आज 'स्टेट्समैन' ने फोटोसहित तुम्हारी जीवनी छापी है और खूब तारीफ की है। यह हिन्दुस्तान स्टेण्डर्ड है। इसमे भी 'होस्ट आफ दि रामगढ कांग्रेस' शीर्षक से कुछ लोगो की तारीफ है—छह व्यक्तियो के फोटो छपे है और थोडी-थोडी जीवनी।" उन्होने दोनो अखबार देखने को मुझे दिये। मै उन्हे देख ही रहा था कि वे पूछ बैठे—'स्टेट्समैन तुमसे इतना प्रसन्न क्यो है ?" मैंने उन्हे बतलाया—"बहुत पहले उसके सम्पादक आये हुए थे। वे अँग्रेज थे। उन्हे रहने को जगह नही थी। मैंने उन्हे अपने साथ रखा, उन्हे सभी जगह मोटर से घुमाया और सभी चीजे जो नयी थी, उन्हे दिखलायी। वे मुझसे बहुत प्रभावित हुए। अपनी लिखी हिन्दी की कई पुस्तके भी उन्हे भेंट मे दी। एक व्यक्ति के नाते मैंने उनका खूब सम्मान किया। इसलिए वे मुझपर प्रसन्न होगे।" नेहरू जी ने कहा—"कोई भी मनुष्य अच्छे व्यवहार से प्रसन्न हो सकता है। आपने तो उनकी बडी मदद की।"

उसके बाद प्रतिदिन प्रत्येक भाषा की पत्रिका मे तारीफ सहित मेरा चित्र छपा रहता था। एक गुजराती पत्र में राजेन्द्र बाबू, अनुग्रह बाबू और मेरे फोटो अलग-अलग छपे थे और कुछ-कुछ तारीफ की थी। वह पत्रिका अभी तक मेरे पास है। नेहरू जी ने उस अखबार को मुझे पढने दिया। मैं पढ नही सका। तब उन्होने पढकर मुझे सुनाया। मैंने कहा—"बचपन मे पढे इसी तरह के अक्षरो मे बहुत कुछ समता है। आप गुजराती तो अच्छी तरह पढ लेते हैं।"

उन्होने कहा—"बखूबी। गुजराती और देवनागरी लिपियों मे बहुत समता है। गुजराती पढ़ने मे कोई कठिनाई नही होती। पढो, इस अखबार का क्या नाम है, ?"

मैंने पढने की चेष्टा की और पढकर सुना दिया—"जनवाणी।" उन्होने कहा—"इसी तरह सब पढ जाओ।" मैं वहाँ से बाबू साहब के पास गया और सारी बातें कहीं।

बाबू साहब ने कहा—"यहाँ भी तो सब अखबार आ गइल बा। रऊओ नाम से ढेर अखबार आइल बा।" मैंने अपने सभी अखबार लिये और अपने डेरे पर रख दिये। रात मे उन्हे देखा। उन अखबारो मे कई से मेरे पास सुरक्षित है।

विषय-समिति की बैठक मे सभी लोग चाय पी रहे थे। मैं नेहरू जी के साथ खड़ा होकर अलग चाय पी रहा था और कुछ बातें भी कर रहा था। बम्बई के एक फोटोग्राफर ने हम लोगो का फोटो अचानक खीच लिया। दूसरे दिन वह फोटो सभी पत्र-पत्रिकाओ मे छपा। नेहरू जी ने मुझे वह फोटो स्टेट्समैन अखबार मे दिखलाया। कुछ दिनो के बाद वही पोज सिनेमाघरो मे न्यूज रील मे भी आया। मैंने अनुभव किया है कि नेहरू जी के हृदय मे भावुकता, सरसता और कोमलता की त्रिवेणी प्रवाहित होती थी। उनकी बातो से कविता फूटती थी अधिवेशन आरभ होने जा रहा था। नेतागण मचपर आ गए थे। मैं सुबह को राँची चला गया था। कुछ भाषण आदि छपवा कर लाने। जब राँची से लौटा, कपडे बदले और सब कागज लिए मोटर पर मच के पास पहुँचा। अचानक जोरो की वर्षा हुई। सभी लोग बैठकर भीगते रहे। मैं कागजो को लेकर मोटर मे ही बैठा रहा। नेहरू जी मच पर खडे रहे और भीगते रहे। जब तक पण्डाल से आदमी नही गये, नेहरू जी खडे रहे। कुछ देर के बाद पानी छूटा। मैं मोटर से बाहर निकला और चालक से सब कागज आफिस ले चलने को कहा और उसके साथ श्री ब्रह्मदेव राय को भेज दिया। नेहरू जी मच से नीचे उतरे। बाबू साहब ने मुझे उनके साथ जाने का आदेश दिया। मैं नेहरू जी के साथ चला। रास्ते मे उन्होने पूछा—"इतनी बारिश होने पर भी तुम क्यों न भीगे ?" मैने सारी बातें कही। उन्होने पुन पूछा—"कागज भीगे नही न ?" मैंने उत्तर दिया—"ऐसी बात नही थी। मैं कागजो के बचाने के प्रयत्न मे रहा लेकिन ईश्वर ने मुझे बचा लिया क्योकि जो दूसरे को बचाता है, ईश्वर उसे बचाता है।" नेहरू जी इतनी तेजी से चलते थे कि उनका साथ देने के लिए कभी-कभी मुझे दौडना पड़ता था। उन्हे डेरे पर पहुँचा कर मैं आफिस की ओर चला आया। रात मे पुन· उनके पास गया और कुछ देर बैठा। उन्हे इस बात का अफसोस था कि पानी की वजह से लोगो को परेशानी हुई। कुछ देर के उपरान्त उन्होने कहा—"चलो, राजेन्द्र बाबू और अनुग्रह बाबू से मिल ले।" हम लोग चले। रास्ते मे अनुग्रह बाबू आ रहे थे। भेंट हो गयी। नेहरू जी ने उन्हे कहा—"मैं तो आप लोगो से ही मिलने जा रहा था। आपसे भेंट हो गयी। अब आप जाइए। सब लोगो को देखिये। हम लोग राजेन्द्र बाबू के पास जा रहे हैं।" हम लोग राजेन्द्र बाबू के पास कुछ देर बैठे, बातें कीं और फिर वहाँ से चले। मैं नेहरू जी के साथ कई जगह घूमता रहा। फिर मैंने उन्हे डेरे पर पहुँचाया और अपने डेरे पर लौट आया।

[१६४५ ई० मे नेहरू जी पटना पधारे थे। एक्जीवीशन रोड से सटे गाधी मैदान में उत्तर की ओर एक बहुत ऊँचा मच बनाया गया। वह कुछ कमजोर प्रतीत

होता था क्योंकि उस पर इतने व्यक्ति बैठे थे कि लगता था कि वह अब टूटा हालाकि लकडियो और बासों से निर्मित था। लोग-लोग बारी-बारी से बोल रहे थे। मच पर मेरे बगल में श्री राजेन्द्र शर्मा (अब, सम्पादक सर्चलाइट पटना) बैठे हुए थे। वे जब-जब अपनी हास्य-विनोद-प्रियता का परिचय देकर लोगों का आनन्द वर्धन कर रहे थे। हम लोगो के बीच एक कवि जी भी बैठे हुए थे। कवि जी की इच्छा हुई कि मै भी कविता पढ़ूँ। लेकिन जवाहरलाल जी को कुछ कहने मे हिचकिचाते थे। उन्होने मुझे कहा—"पण्डित जी से कवि जी को एक कविता पढने के लिए इजाजत दिला दीजिए।" मैं पण्डित जी के मिजाज से परिचित था। शर्मा जी भी उनको अच्छी तरह से जानते थे। अन्त में मैंने पण्डित जी से कहा—"एक कवि जी है। वे अपनी कविता पढना चाहते हैं।" उन्होंने पूछा—'तुम उनको जानते हो?" मैंने सकुचाते हुए कहा—"कुछ-कुछ जानता हूँ।" उन्होने कहा—"बुलाओ।" शर्मा जी सारी बाते सुन रहे थे। उन्होने कवि जी को बुलाया। कवि जी माइक के सामने गये और ज्यो ही कविता की एक पँक्ति पढी त्यों ही नेहरू जी नाक-भौह सिकोडने लगे और ज्योही कवि जी ने दूसरी पक्ति पढी, नेहरू जी मच पर खडे हो गये और कवि जी को कहने लगे—"इसी को कविता कहते हैं? इसी तरह कविता पढी जाती है?" तथा उनको डाँटते हुए मच से नीचे उतार दिया। शर्मा जी मन-ही मन आनद ले रहे थे। मच पर जितने व्यक्ति थे, सबके पेटो मे बल पड रहे थे लेकिन अपने ओठो को रूमाल से ढँके हुए थे। आज भी जब यह दृश्य मेरी आँखो मे आता है तब हम हँसने लगते हैं।

मैंने अनुभव किया कि नेहरू जी खतरे से कभी नही डरते थे। वे खतरे मे कूद जाते थे। उन्होने स्वय लिखा है—"लोग बहुधा कर्म से बचते है, क्योकि उन्हें परिणामो का भय होता है। और कर्म का अर्थ है जोखिम और खतरा। विपत्ति दूर से भयकर लगती है, लेकिन यदि आप उसे निकट से देखें, तो वह इतनी अप्रिय नही रहती। और, बहुधा वह एक आनन्दवर्धक सहचरी सिद्ध होती है, जीवन के उत्साह और उल्लास को बढ़ानेवाली।" वस्तुत: हर परिस्थिति को उन्होंने स्वीकारा और हर विपत्ति का उन्होंने सामना किया तथा हर गलत बात का उन्होने निर्भयतापूर्वक विरोध किया। वे अपने आदर्श से कभी नही डिगे। अपने आदर्शों के लिए वे सदा सघर्ष करते रहे।

उनके विचारों का क्षितिज बहुत विस्तृत था। वे वास्तविकता की दुनिया में रहते थे लेकिन कल्पना के देश में भी निर्बाध रूप में विचरते थे, हालाकि इस सच्चाई से भी इन्कार नही किया जा सकता कि पारलौकिक और मृत्यूत्तर कल्पित परिस्थितियों में वे अपनी अभिरुचि नहीं दिखलाते थे तथा लोक की तत्कालीन समस्याओं और आवश्यकताओं तक ही अपने विचार की सीमा ले जाते थे। इस दृष्टिकोण से वे व्यावहारिकतावादीचिन्तक थे। वे एक ओर गाँधी जी के जीवन-दर्शन से प्रभावित थे तो

दूसरी ओर मार्क्स के जीवन-दर्शन से भी। उन्होने भौतिक जीवन सिद्धान्त मार्क्स का अपनाया और राजनीति गाँधी जी की। इस प्रकार वे नेहरू-दर्शन के अनुसन्धान कर्त्ता हुए। उन्होंने व्यक्तिवाद को, जिसमे व्यक्ति का उन्नयन, सामाजिक एव राष्ट्रीय आस्थाओ को विकसित बनाता है, महत्त्व दिया है।

जितना परिश्रम उन्होने स्वतत्रता-आन्दोलन की सफलता के लिए किया उतनी ही कर्मठता उन्होने स्वतत्र भारत के नव निर्माण करने मे दिखलायी। वे विज्ञान के आधार पर भारत का उन्नयन करना चाहते थे। उन्होने देश की विभिन्न प्रणालियो को वैज्ञानिक पद्धति पर व्यवस्थित किया और आशातीत सफलता भी प्राप्त की। अपने राजनीतिक जीवन मे वे बाधाओ से नही घबराये। उनकी माता का स्वर्गवास हुआ, पत्नी क्षयरोग के कारण स्वर्ग सिधारी और पिता स्वर्गवासी हुए। उन्हे पत्नी के आभूषण बेचने पड़े और दामाद अकाल कालकवलित हुए लेकिन उनकी त्याग-तपस्या और देश भक्ति पर कभी आँच नही आयी।

१९५१ ई० मे मेरी "बिहार-विभूति" पुस्तक प्रकाशित हुई। डॉ० लक्ष्मीनारायण सुधाशु, बिहार राज्य कांग्रेस के अध्यक्ष थे। पण्डित जवाहरलाल नेहरू सदाकत आश्रम पटने मे आये थे। प्रान्त भर के कार्यकर्त्ताओ की बैठक हुई और नेहरू जी का भाषण हुआ। मैं कामों मे व्यस्त था। इसलिए मैंने "गीतेश" को (भूतपूर्व सम्पादक, "भारत मेल", पटना) "बिहार-विभूति" की एक प्रति दी और कहा कि मौका देखकर नेहरू जी को दे देना। "गीतेश" ने उन्हे पुस्तक कब दी, मुझे ज्ञात नही था। बैठक के बाद सडक के किनारे आगे की ओर मैं खडा होकर किसी से बातें कर रहा था। नेहरू जी की गाड़ी चली। मुझे देखकर उन्होने गाडी रोकी और मुझे इशारा किया। मैं दौड कर उनकी गाडी के पास पहुँचा। उन्होने कहा—"तुम्हारी किताब मिल गयी। आठ बजे रात में आकर मिलना।" गाडी पर डॉ० श्रीकृष्ण सिह भी थे। मैंने कहा—"अच्छा" इसके बाद मैं बाबू साहब के साथ चला। बाबू साहब से सारी बातें कही। उन्होने कहा कि जाना। फिर बाबू साहब अपने डेरे पर चले गये और मैं उन्ही की गाडी से डॉ० सुधाशु के पास गया। डॉ० सुधाशु से सारी बाते बतलायी। उन्होने बताया कि मुझे मिलने के लिए सात बजे बुलाया है। बाबू साहब की गाडी मैंने लौटा दी। सुधाशु जी के साथ ही मैं राजभवन गया। वे समयानुसार नेहरू जी से मिलने चले गये। मैं बैठा रहा। एक घटे के बाद सुधाशु जी बाहर निकले। तब मैं गया। नेहरू जी हँसते हुए बोले—"पुस्तक तो देखने मे बड़ी सुन्दर है। छपाई-सफाई भी बहुत अच्छी है। मैं वहाँ जाकर पढ़ूगा।" मैने कहा—"इतना आपको समय कहाँ कि आप उसे पढेगे?" वे बोले—"मै पुस्तक पलग पर रख देता हूँ। सब कामो से निपटने के बाद मै बराबर पुस्तक पढ़ता हूँ।"

इसके उपरान्त बिहार की राजनीति के विषय मे बातें हुई। आधे घण्टे के

उपरान्त मै वहाँ से चला आया।

मई, १९५९ ई० मे नेहरू जी हथिदह मे राजेन्द्र-पुल का उद्घाटन करने को आये थे। लगभग दो-तीन लाख लोगो की भीड थी। जब नेहरू जी मच पर खडे हुए तब चारो ओर शान्ति छा गयी। जहाँ कही भी तनिक शोरगुल होता था, पण्डित जी कहने थे—"बैठ जाओ।' और जो जहाँ होते थे, बैठ जाते थे। यह था उनका विराट् व्यक्तित्व। सभा के बाद पण्डित जी अपने डब्बे मे बैठ गये। मुझे बडे जोर की भूख लगी थी। इसलिए मै डायनिंग कार मे विष्णुदेव बाबू के साथ बैठ गया। गाडी पुल पर सिमरिया की ओर चली। हम दोनो ने टोस्ट खाया और चाय पी। गाडी सिमरिया स्टेशन पर रुकी। पण्डित जी अपने डब्बे से उतर कर उत्तर की ओर चले आ रहे थे और मै डब्बे से उतर कर उनके स्वागतार्थ उनकी ओर बढ रहा था। दोनो व्यक्ति स्टेशन के पास गये, इधर-उधर देखकर स्टेशन से बाहर पूरब की तरफ चले और वही खडे हो गये। मुझसे उन्होने पूछा—"कोई ऊँची चीज है?' मैने श्री रामवृक्ष-सिंह, एस० पी० को इशारा किया। इतने में ही श्री ब्रजनन्दन सिंह दो छोटे-छोटे टेबुल ले आये जिन्हे सटा दिया गया। लाउड स्पीकर भी आ गया। बात की बात मे हजारों की भीड जमा हो गयी। उन्होने भाषण किया। इसके उपरान्त मेरे कन्धे पर हाथ रखकर उतरे और मेरे गले मे हाथ डालकर कुछ दूर चले, मानो हम पुराने मित्र हों।

मैने कहा—'पण्डित जी, यही दिनकर का मकान है।"

उन्होने पूछा—"किधर?"

"यहाँ से आधे मील की दूरी पर पश्चिम और उत्तर की ओर सिमरिया गाँव है।"

"वे तो अपने गाँव आये नहीं—उनको आना चाहिए था।" यही बतियाते-बतियाते हम लोग गाड़ी के निकट पहुँच गये। मैने अनुभव किया कि जनता पर उनका जादू है। वे भाषण करते थे तो बिना किसी भूमिका के, बतियाते थे तो सहज-सरल भाव से और जनसाधारण को उसी प्रकार सम्बोधित करते थे जिस प्रकार अबोध बच्चो को। वे साधारण से साधारण बात के भी हर पहलू पर रोशनी डालते थे। मेरे कई मित्र कहते हैं—"नेहरू जी के पास जाने पर ऐसा लगता है जैसे पहाड़ के पास खडा हूँ।" लेकिन ऐसा मुझे कभी नहीं लगा। शायद इसका कारण यह हो कि मैं सर्वदा उनसे नि:स्वार्थ भावसे मिलता था। जब कभी भेंट हुई, कुछ बातें हुई और बातचीत के सिलसिले मे बहुतो का काम भी बन जाता होगा। वस्तुत. वे देवता थे।

गाँधी जी ने कहा था—

"मै वर्षों से कहता रहा हूँ और अब भी कहता हूँ कि जवाहरलाल मेरा उत्तराधिकारी होगा। वह कहता है कि मेरी भाषा उसकी समझ मे नही आती। वह यह भी कहता है कि उसकी भाषा मेरे लिए अपरिचित है। यह सही हो या न हो, किन्तु हृदयो की एकता मे भाषा बाधक नही होती और मैं यह जानता हूँ कि जब मैं चला जाऊँगा, जवाहरलाल मेरी ही भाषा मे बात करेगा।"

डॉ० अनुग्रह नारायण सिंह

मेरे गाँव सिताबदियारा—छपरा के बाबू शभुशरण जी पटने मे रहते थे और पटना हाईकोर्ट मे वकालत करते थे। १९१७ ई० मे महात्मा गाँधी विदेश से हिन्दुस्तान आये। बिहारवालो ने उनसे चम्पारन जिले के निलहे कोठीवाले लोगो की काली करतूतो की दर्दनाक कहानी कही। वे बिहार आने को तैयार हो गये। निलहे कोठी वाले अग्रेज बेतिया इलाके मे भारतीयो पर जुर्म करते थे। गाँधी जी ने निलहे कोठीवाले अग्रेजों के खिलाफ सत्याग्रह-आन्दोलन का श्रीगणेश किया। उनके इस कार्य मे राजेन्द्र-बाबू, अनुग्रह बाबू, शभु बाबू, ब्रजकिशोर बाबू, रामनवमी बाबू आदि ने सक्रिय सहयोग दिया। जब चम्पारन का कार्य समाप्त हो गया, तब शभु बाबू पुन: पटने मे वकालत करने लगे। बिहार प्रान्त के इने-गिने लोग शभु बाबू के यहाँ ही ठहरते थे। मैं भी शभु-बाबू के यहाँ ही ठहरा करता था। दूसरी बात यह थी कि शंभु बाबू के सिवा अन्य लोग नेताओ को अपने यहाँ अग्रेजो के डर से ठहरने देना नही चाहते थे। नेताओ को जब कभी किसी विषय पर विचार विमर्श करने की आवश्यकता होती थी तब वे शभु बाबू के डेरे पर ही इक्ट्ठे होते थे। राजेन्द्र बाबू ने अपनी आत्म-कथा मे लिखा है, "शभु बाबू के डेरे के सिवाय ऐसी कोई जगह नही थी जहाँ हम लोग एक जगह बैठकर कुछ बाते कर सकें या रात्रि मे विश्राम कर सके।" श्री बाबू, अनुग्रह बाबू आदि प्रान्त के बडे-बडे नेता वही ठहरते थे। वही बाबू साहब (अनुग्रह बाबू) से मेरा परिचय हुआ और वह परिचय धीरे-धीरे घनिष्ठ रूप मे या यो कहा जाय कि पारिवारिक रूप मे हो गया। बाबूसाहब जब कभी शभु बाबू के यहाँ सिताबदियारे मे जाते थे तब वे मेरे घर पर भी अवश्य पधारते थे।

उनका जन्म गया जिले के अन्तर्गत पोईआवाँ गाम मे चौहानवंश मे १८ जून, सन् १८८७ ई० में हुआ था। उनके पिता का नाम ठाकुर विश्वेश्वर दयाल सिंह था जो अपने इलाके के नामी पहलवान, पहलवानो के कद्रदाँ और पुरस्कर्त्ता तथा घुडसवार थे। उन्होने युवावस्था मे अपनी तलवार से एक सिंह को मौत के घाट पहुँचा दिया था। शैशवावस्था में अनुग्रह बाबू का नामकरण किया गया था—उग्रनारायण सिंह। यह नाम अपने कुल के शौर्य के अनुरूप था अवश्य, लेकिन उनके हृदय में उग्रता की जगह

अनुग्रह नारायण सिंह

नम्रता और उदारता थी। वे बचपन मे अतीव सयत-भाषी, शान्त, गभीर, कार्यशील, अध्ययनशील और सकोचशील थे। यही कारण था, उनके एक शिक्षक ने, जिनका नाम श्री वैद्यनाथ सिंह था, "उग्र" को "अनुग्रह" मे परिवर्तित कर दिया।

अनुग्रह बाबू जब दसवे वर्ग मे थे, देशरत्न डॉ० राजेन्द्र प्रसाद से परिचय प्राप्त करने का सौभाग्य प्राप्त किया था। राजेन्द्र बाबू के सत्य प्रयत्न से सन् १९०६ ई० मे बिहार छात्र-सम्मेलन का प्रथम अधिवेशन सैयद सर्फुउद्दीन साहब की अध्यक्षता मे पटने हुआ था जिसमे गया जिले के छात्र-प्रतिनिधि के रूप मे अनुग्रह बाबू ने भाग लिया था। दो-तीन वर्षो के बाद अनुग्रह बाबू बिहार छात्र सम्मेलन के प्रधान मत्री निर्वाचित हुए और राजेन्द्र बाबू के अधिक-से-अधिक निकट आते गये। सन् १९०८ ई० मे वे विश्वविद्यालय की अन्तिम प्रवेशिका परीक्षा मे उत्तीर्ण हुए और बिहारी छात्रो मे प्रथम रहे। उन्होने पटना कालेज मे नाम लिखाया और मिन्टो होस्टल मे रहने लगे। वे लोकमान्य तिलक, सुरेन्द्रनाथ बनर्जी, योगीराज अरविन्द आदि के लेखो और भाषणो से वीरता, बलिदान और त्याग की प्रेरणा पाते थे। १९१० ई० मे वे इन्टरमीडिएट की परीक्षा प्रथम श्रेणी मे पास हुए और बी० ए० मे पढने लगे। उसी साल महात्मा गाँधी के अनन्यतम साथी दलित-सेवक महामना पोलक साहब पटना पधारे थे। उन्होने दक्षिण अफ्रीका के प्रवासी भारतवासियो के विषय मे व्याख्यान भी दिया था। अनुग्रह बाबू उनके व्याख्यान को सुनकर विशेष प्रभावित हुए थे। उन्होने उसी साल प्रयाग मे सर डब्ल्यू बडबर्न के नेतृत्व मे होने वाले अखिल भारतीय काग्रेस का वार्षिक अधिवेशन देखा था और सर सुरेन्द्रनाथ बनर्जी, महामना गोखले के भाषणो से देश प्रेम की शिक्षा हासिल की थी।

जब अनुग्रह बाबू कलकत्ते मे मास्टर आफ आर्ट्स की तैयारी कर रहे थे तब सन् १९१३ ई० मे पटने मे अखिल भारतीय काग्रेस का वार्षिक अधिवेशन हुआ था जिसमे स्वय सेवको के सगठन और सचालन का भार उन्होने पूरी तत्परता के साथ सभाला था। सन् १९१४ ई० मे वे एम० ए० की परीक्षा मे उत्तीर्ण हुए और सन् १९१५ ई० मे बी० एल० की परीक्षा मे भी। जब अनुग्रह बाबू कलकत्ता पहुँचे थे तब राजेन्द्र बाबू कलकत्ता हाई कोर्ट में वकालत शुरू कर चुके थे और अपने पेशे मे धीरे-धीरे नामवरी भी हासिल करने लगे थे। देश की राजनीतिक परिस्थिति पर बातें करने के लिए अनुग्रह बाबू अपने अभिन्न सहपाठी शभु बाबू के साथ प्राय' उनके निवास पर जाया करते थे। ला कालेज का अध्यापक होने के नाते राजेन्द्र बाबू अनुग्रह बाबू के गुरु भी थे, इसलिए अनुग्रह बाबू उनसे लिहाज भी करते थे। जब तक अनुग्रह बाबू कलकत्ते मे रहे अब तक उन्हे राजेन्द्र बाबू के सार्वजनिक कार्यो मे प्रोत्साहन और प्रेरणा मिलती रही। कुछ ही दिनो मे घनिष्ठता इतनी बढी कि अनुग्रह बाबू ने उन्ही राजेन्द्र-बाबू को अपना राजनीतिक गुरु और नेता मान लिया तथा राजेन्द्र बाबू ने भी अनुग्रह-

बाबू के व्यक्तित्व मे अपनेपन के अतिरिक्त अपने सार्वजनिक जीवन के सबसे बडे सहयोगी तथा प्रान्त के भावी नेता के रूप का अवलोकन किया।

अनुग्रह बाबू ने तेजनारायण जुबली कालेज, भागलपुर मे सोलह महीनो तक अध्यापन-कार्य किया। १६ नवम्बर, १९ ६ ई० मे उन्होने कालेज से त्याग-पत्र दे दिया और पटने मे वकालत करने लगे। शभु बाबू की शान्त और गभीर प्रकृति के साथ उनकी प्रकृति का मनोरम सामजस्य रहा। कालेज जीवन के प्रारभ से ही दोनो साथ-साथ रहते चले आते थे। कलकत्ते मे भी दोनो ने साथ मिलकर पूज्य राजेन्द्र बाबू से राजनीतिक जीवन की दीक्षा ली थी। मित्रो का कथन था कि एक ही मकान मे दो वकीलो का निवास आर्थिक दृष्टि से उचित नही जँचता, मगर उन दोनो की अभिन्नता सासारिक स्वार्थ के बन्धन को तोडकर उस विशाल क्षेत्र मे पहुँच चुकी थी जहाँ आर्थिक क्षति का कोई मूल्य ही नही था। पाँच-सात महीनो की वकालत मे ही अपनी प्रतिभा, पाण्डित्य तथा परिश्रम के बल पर ही दोनो मित्र अपने-अपने पैरो पर खडा होने की क्षमता रखने लगे।

अनुग्रह बाबू ने अगस्त, १९१७ ई० मे चम्पारन-सत्याग्रह-आन्दोलन को सफल बनाया और पटना लौट आये। उन्होने गाँधी जी तथा उनके साथ रहने वाले निस्पृह समाज-सेवको के ससर्ग मे रह कर जो कुछ सीखा, उससे उनकी आत्मा अत्यधिक बलवती हो उठी। अगस्त, १९१७ ई० से १९२० ई० तक वे ऐतिहासिक मामले मे उलझे रहे। यही कारण था, वे होमरूल के रजिस्टर पर केवल हस्ताक्षर कर सके और होमरूल आन्दोलन मे सक्रिय भाग नही ले सके।

जब १९२९ ई० मे असहयोग आन्दोलन छिडा तब अनुग्रह बाबू ने वकालत छोड दी और बिहार विद्यापीठ में अध्यापकी करने लगे। काग्रेस का जो अधिवेशन गया मे हुआ था, उसको सफल बनाने के लिए जिस अस्थायी समिति का गठन हुआ था, उसके सहायक मत्रित्व का पद उन्होने ही सभाला था और जी-जान से कार्य किया था। १९२४ ई० मे वे पटना म्युनिसपैलिटी के वायस चेयरमैन थे और पुन. गया जिला बोर्ड के चेयरमैन भी चुने गये। १९२५ ई० मे वे कौसिल आफ स्टेट के सदस्य चुने गये। इस प्रकार १९३० ई० तक वे प्रान्त के एक परिपक्व राजनीतिक और प्रौढ लोक सेवक के रूप मे विख्य त हो गये। १९३० ई० के राजनीतिक आन्दोलन मे वे पूर्णता सक्रिय रहे। १९३५ ई० मे वे सेठ रामकृष्ण डालमिया और श्री जगतनारायण लाल को पराजित कर एम० एल० ए० हुए। जब जबलपुर मे अखिल भारतवर्षीय केन्द्रीय पार्लियामेन्टरी बोर्ड का चुनाव हुआ तब वे उसके सदस्य चुने गये। १९३७ ई० मे वे बिहार काग्रेस मत्रिमडल के वित्त, माल और स्वायत्त विभाग के मत्री हुए।

मत्रित्वकाल के पाँचवे महीने मे जब चीफ सेक्रेटरी मि० ब्रेट ने बिहार मत्रिमंडल की बिना सलाह लिए ही जिलो के अफसरो के पास यह गुप्त आदेश भेज दिया कि

किसी विभाग का कोई आदेश जब तक उस विभाग के सेक्रेटरी के द्वारा नहीं दिया जाय तब तक उस पर अमल नही किया जाय, तब अनुग्रह बाबू सीधे गवर्नर के यहाँ पहुँचे और दृढतापूर्वक कह दिया कि अगर चीफ सेक्रेटरी की ऐसी हरकत रही तो हमारा मन्त्रिमडल त्याग-पत्र दे देगा। गवर्नर ने चीफ सेक्रेटरी की गलती महसूस की, आदेश वापस लिया गया और ब्रेट ने माफी मागी। जब राजनीतिक बदियो की रिहाई के प्रश्न पर मन्त्रिमडल और गवर्नर का मतभेद हुआ तब बिहार विभूति ने भी त्याग-पत्र भेज दिया। जब १९३८ ई० मे बिहार मे काग्रेसी मन्त्रिमडल बना तब बिहार विभूति ने पुन' अपना पद-भार सभाला और जब १९३९ ई० मे काग्रेस मन्त्रिमडल ने द्वितीय महायुद्ध के प्रति ब्रिटिश सरकार की नीति से विरोध प्रकट करने के लिए त्याग-पत्र दिया तब बिहार विभूति ने भी त्याग-पत्र भेज दिया।

१९४० ई० मे रामगढ काग्रेस की सफलता का सारा श्रेय उन्हे है। ३ दिसम्बर, १९४० ई० को व्यक्तिगत सत्याग्रह मे वे भाग लेकर गिरफ्तार हुए और जुलाई, १९४१ के अन्तिम सप्ताह मे जेल से छूटे। पुन १० अगस्त, ४२ को "करो या मरो" आन्दोलन के सिलसिले मे गिरफ्तार हुए। इस बार की जेल-यात्रा कुछ भयावह-सी अवश्य लगती थी, क्योकि कोई नही कह सकता था कि किसकी कब रिहाई होगी। पिछली जेल यात्रा मे उन्होने "मेरे सस्मरण" नामक कोई साढे पाँच सो पृष्ठो की एक पुस्तक लिख डाली थी। छात्र-जीवन समाप्त करने के बाद १९४० ई० के अपने राजनीतिक जीवन के सस्मरण उन्होने इस पुस्तक मे लिपिबद्ध किये हैं। इस पुस्तक को १९४० ई० तक बिहार का राजनीतिक इतिहास ही कहना चाहिए। जेल मे वे समाजवादी साहित्य का गहरा अध्ययन करते थे और मनोरजन के लिए ब्रिज का खेल बड़े चाव से खेलते थे।

जब १९४६ ई० मे बिहार मे पुन काग्रेसी मन्त्रिमडल बना तब बिहार-विभूति वित्त-मत्री बने। वे आपूर्ति, नियत्रण, खाद्य और श्रम विभाग के कार्यों को भी करते थे। उन्होने प्रान्त की अर्थनीति का सफलतापूर्वक सचालन किया। जब राजनीतिक पीडित सहायता कोष का निर्माण हुआ तब वे उसके अर्थ मत्री बने। उन्होने श्रीमती कस्तूरबा के स्मारक कोष के सग्रह-सचालन का भार सभाला और गाँधी-स्मारक-कोष के अर्थ मत्री का भार भी। स्वर्ग मे कुबेर को जो पद प्राप्त था, हमारे स्वर्गोपम बिहार राज्य मे बिहार विभूति भी उसी पद पर सदा सुशोभित रहे।

सन् १९४७ ई० के अगस्त महीने मे पूर्ण स्वतत्रता प्राप्त करने के दूसरे ही दिन उन्होने जेनेवा मे अखिल विश्व-कृषि और खाद्य सम्मेलन मे भारत का प्रतिनिधित्व किया और डेनमार्क, स्वीट्जरलैण्ड आदि की कृषि-प्रणाली का अध्ययन किया। सन् १९५० ई० मे वे जेनेवा मे ही अखिल विश्व-श्रम-सम्मेलन मे भारत की ओर से श्री जगजीवन राम के साथ गये थे और विद्वत्तापूर्ण भाषण के जरिये श्रमिकों की स्थिति के सुधार-सम्बन्धी अनेक सुझाव उपस्थित किये थे। सन् १९५४ ई० मे कनाडा के टोरटो

नगर मे जो अन्तरराष्ट्रीय सामाजिक कार्यकर्त्ता सम्मेलन हुआ था उसमे वे भारतीय प्रतिनिधि की हैसियत से गये थे और भाषण किया था। ५ जुलाई, १९५७ ई० को उन्होने अपनी ऐतिहासिक जीवन-लीला समाप्त की।

वे जब कभी बेगूसराय आते थे तब मेरे यहाँ ही ठहरते थे। १९३० ई० मे जब बेगूसराय मे गोली चली थी, मै जेल मे था और बेगूसराय मे प्लेग था। बाबू साहब बेगूसराय आये थे और टाउनशिप के निकट बगीचे मे दो दिनो तक ठहरे थे तथा गोली काण्ड की जाँच-पडताल कर चले गये थे। जब मै जेल से छूटा और बेगूसराय गोली-काण्ड पर अपनी एक पुस्तक लिखी तब उन्होंने मुझे गोली-कण्ड से सम्बन्धित कुछ फोटो दिये थे जिनका उपयोग मैने अपनी पुस्तक मे किया।

१९४१ ई० मे बाबू साहब डॉ० सुधाशु के साथ सुहृदनगर पधारे थे और मेरे उस मकान मे घटो राजनीति पर बाते की थी जिस मकान मे मेरे नाम पर सुहृदनगर डाकघर है। मुझे याद है, उनकी बातो मे कभी-कभी मै भी टाग अडा दिया करता था।

१३ फरवरी, १९४२ ई० को बाबू साहब सिंहेश्वरस्थान मधेपुरा जा रहे थे। बेगूसराय स्टेशन पर उनसे मेरी भेंट हुई। उनके साथ मै भी गया और मानसी स्टेशन पर उन्हे भोजन कराया। अपनी डायरी मे उन्होने लिखा था—"सितावदियारे के कवि जी (सुहृद) बेगूसराय से कोपाडिया तक गये और श्री लक्ष्मीनारायण सुधाशु, राय बहादुर रघुवश नारायणसिंह (कुरसेला) और चन्द्रचूड देव (उलाव) के विषय मे काफी बाते की। इस प्रकार उन्होने अपनी डायरी मे अनेक स्थलो पर मेरा स्मरण किया है। यह मेरे प्रति उनके स्नेह और अपनेपन का परिचायक है।

१९४० ई० मे उन्होने रामगढ काँग्रेस के अवसर पर मुझे रामगढ़ मे बुलाया और निवास-विभाग मेरे जिम्मे सौप दिया। अधिवेशन आरंभ होने के पाँच मिनट पहले मूसलाधार वर्षा हुई। लोगो के रहने की जगह भी जलमय हो गयी। बाबू साहब ने मुझसे कहा—"लाउडस्पीकर पर कहना कि जो जहाँ है, वह वही से घर लौट जाय। उनके आदेश का मैने पालन किया। रामगढ मे बाबू साहब प्रत्येक झोपडी मे पहुँचते थे और प्रत्येक कार्य की देखभाल करते थे। वे योग्य शासक थे। फाइलो को देखने और समझने मे वे माहिर थे। वे प्रान्त के पथ दर्शक थे और अपने साथियो के लिये एक बडा सहारा थे।

दिसम्बर, १९५३ ई० के अन्तिम सप्ताह मे बेगूसराय मे जो अखिल भारतीय हरिकीर्तन सम्मेलन का ४१ वा अधिवेशन हुआ उसका उद्घाटन बाबू साहब ने किया था। वे २३ दिसम्बर को नन्दकुमार बाबू के साथ सुहृदनगर आये थे। साधु-सतो के जमघट को देखकर उनका मन प्रसन्न हो उठा था। कुछ देर तक उन्होने आराम किया। इसके बाद गोगरी के लिए उन्होने प्रस्थान किया। मै उनके साथ गया। पुनः हम लोग ग्यारह बजे रात मे बेगूसराय पहुँचे। बाबू साहब दो दिनो तक सुहृदनगर मे रहे और

भगवद्‌भक्ति की गगा मे स्नान कर आत्मविभोर हो उठे थे ।

बेगूसराय अनुमण्डलीय राजनीतिक सम्मेलन १९-२० जून, १९४८ ई० को गढहरा (बरौनी) मे हुआ था जिसका सभापतित्व उन्होने ही किया था। वे १९ जून को बेगूसराय हवाई अड्डे पर उतरे थे और मै उनके साथ मोटर मे गढहरा गया था। अपने भाषण मे उन्होने कहा था कि प्रजातत्रीय शासन को चलाने के लिए इगलैण्ड की तरह यहाँ भी सजीव जनमत—नागरिकता की सृष्टि हमे करनी चाहिए। मार्च, १९५० ई० मे बाबू साहब मझोल गाँव गये थे। मैं उनके साथ था। वहाँ उन्होने भाषण किया। वहाँ जब उन्हे अपने नेता श्रीकृष्णसिह के कुछ साथियो की उदासीनता की बात ज्ञात हुई तब उन्हे मर्मान्तिक पीडा हुई। शाम को वे पटना लौट गये। मैं भी उनके साथ था। इस प्रकार घर, सभा, स्टेशन, जहाज, गाडी आदि अगणित स्थानो पर मुझे उनके दर्शन हुए है और मैने उनका स्नेह प्राप्त किया है। मुझे जब उनकी याद आती है तब कलेजा मुँह को आने लगता है। मेरी स्मृतियो के भण्डार मे सुगबुगी पैदा हो जाती है। मैं किसी एक स्मृति को लिपि-बद्ध करने लगता हूँ तो दूसरी स्मृति मानस-लोक मे अपना सिर उठाने लगती है और मेरी स्थिति उस बालक की-सी हो जाती है जो नदी किनारे के कुछ कीमती सीपो के चयन को जाता है लेकिन नदी किनारे पर स्थित अगणित कीमती सीपो को देख कर सोचने लगता है कि मै किन्हे अपने हाथो से उठाऊ और किन्हे छोड दूँ क्योकि सभी सीप आँखो मे चकाचौध उत्पन्न करते है।

सन् १९४७ ई० की बात है। किशुनगज (पूर्णियाँ) मे बिहार प्रान्तीय कांग्रेस का वार्षिक अधिवेशन होने वाला था। प्रान्त के कोने-कोने से लोग प्रतिनिधि और दर्शक के रूप मे अधिवेशन मे भाग लेने के लिए आ रहे थे। उन दिनो डॉ० राजेन्द्र प्रसाद केन्द्रीय सरकार के खाद्य मत्री थे। अधिवेशन में वे भी दिल्ली से हवाई जहाज से आ रहे थे। उनके आने मे विलम्ब हुआ। बाबूसाहब और डॉ० सुधाशु जी किशुनगज से पचहत्तर मील पूरब तथा सिलीगुडी स्टेशन से आठ मील उत्तर दार्जिलिग जाने वाली सडक से हवाई जहाज के बगडोगरा अड्डे पर पहुँचने के लिए रवाना हुए। मैं भी उन लोगो के साथ था। रास्ते मे बातचीत के सिलसिले मे बाबू साहब से बन्धुवर श्री सुधाशु जी ने पूछा—"आपका साठवा साल कब पूरा होता है?" बाबू साहब ने तिथि बतलायी। श्री सुधाशु जी ने उसी समय मुझसे कहा—"उस अवसर पर बाबू साहब की जयती मनायी जाय और एक अभिनदन-ग्रथ भी निकाला जाय।'

किशुनगज के हवा-पानी की शिकायत मै पहले सुन चुका था। सुबह को मेरी तबीयत किंचित् अस्वस्थ हो गयी लेकिन बाबू साहब के साथ जाने के लोभ का मैं सवरण न कर सका। पूज्य राजेन्द्र बाबू सिलीगुडी के बगडोगरा हवाई अड्डे पर न उतरकर दिनाजपुर के हवाई अड्डे पर उतरे। हम लोग लगभग तीन बजे तक उनका इन्तजार करते रहे। लाचार हो कर हम लोग वहाँ से चल कर स्टेशन आये। बाबू साहब और

सुधाशु जी ने स्टेशन पर ही भोजन किया। तत्पश्चात् हम लोगो ने सिलीगुडी से किशुनगज के लिए प्रस्थान किया और सध्या समय वहाँ पहुँचे। तब तक डॉ० राजेन्द्र-प्रसाद जी आ गये थे। हम लोग उनसे मिले। रास्ते की बातो का जिक्र बाबू साहब ने उनसे किया और वे दिल्ली से किशुनगज तक की अपनी यात्रा का वर्णन, बातचीत के सिलसिले मे कर गये।

किशुनगज मे ही दूसरे दिन अभिनदन ग्रथ समारोह-समिति बनी। जिसके अध्यक्ष हुए डॉ० श्रीकृष्ण सिंह और मैं हुआ प्रधान मत्री। श्री सुधाशु और श्री दिनकर अभिनदन ग्रथ के सम्पादक बने। "अनुग्रह-अभिनदन-ग्रथ" बडी ही सजधज के साथ आर्ट पेपर पर छपा। १ मई, १९५० ई० को पण्डित गोविन्दवल्लभ पत ने ग्रथ बाबूसाहब को समर्पित किया। इस अवसर पर डॉ० श्रीकृष्ण सिंह ने कहा था—"यदि प्रान्त के सौर जगत् का केन्द्र राजेन्द्र बाबू है तो उस सौर मण्डल का सबसे निकट का और उज्ज्वल नक्षत्र अनुग्रह बाबू को ही कह सकते हैं। बिहार सरकार मे अनुग्रह बाबू का जो स्थान है, उसके विषय मे मैं स्पष्ट शब्दो मे कह सकता हूँ कि यदि उन्हे वहाँ से हटा दिया जाय तो शासन नही चल सकता। वे गाँधी जी के सिद्धान्तो पर चलने का हमेशा प्रयत्न करते हैं और इसी के कारण वे बिहार के आदर और श्रद्धा के पात्र बन गये है।"

पण्डित गोविन्दवल्लभ पत ने अपने भाषण मे बतलाया था कि बाबू साहब के जीवन मे सादगी, लगन, गभीरता, कार्य कुशलता और असाधारण योग्यता का अपूर्व सामजस्य हुआ है। उसी साल से अठारह जून को बाबू साहब की वर्षगाठ प्रतिवर्ष मनाई जाने लगी।

१८ जून, १९५७ को हम लोगो ने उनकी अन्तिम वर्षगाठ बड़ी धूमधाम से मनायी थी, जिस अवसर पर मैंने "बिहार विभूति" नामक काव्य-पुस्तक प्रकाशित की थी और जिस पुस्तक को तत्कालीन रेलवे मत्री श्री जगजीवन राम ने उन्हें समर्पित किया था।

बाबू साहब बिहार के दूसरे जनक थे। उनको खाने पीने और पहनने का शौक नही था। इन सब बातो मे वे सिद्ध फकीर थे। १९ जून, १९५७ ई० की बात है। मैं सुबह को उनके पास पहुँचा। बाबू साहब पलग पर लेट कर सरकारी फाइल देख रहे थे। पलग पर जो चादर थी, वह पलग से बहुत छोटी थी। मुझे देखने मे वह चादर अच्छी नही लगी। मैंने उनसे कहा—"चादर हटा दीहल जाय।" इस पर चट उन्होंने कहा—"दोसर नइखे।" मैंने अठारह जून को एक अच्छी चादर खरीदी थी। वह ज्यो की त्यों रखी हुई थी। मैंने उसे मगवाया और बाबू साहब को पलग से उठने का निवेदन किया। वे निश्छल भाव से पलग से उठे। मैंने नयी चादर बिछा दी। तब उन्होने कहा—"ओकरा से काम चल जाइत।" मैंनें हँस कर कहा—"ओह से ई अच्छा लागत बा। एकरा रहला से तोसक पूरा ढक गइल।" वे हँसते हुए बैठ गये और बगल में (श्री रवीन्द्रनारायण) लल्लू को बिठा लिया। मैं बगलवाली कुर्सी पर बैठ गया और बाहर

बजे दिन तक हम लोग बाते करते रहे। ८ जनवरी, १९५३ ई० को जब सुहृदनगर में टेलीफोन लगवाया तब बाबू साहब अक्सर टेलीफोन पर मुझ से बाते करते थे और काम की बात कर लेने पर हँसते हुए पूछते थे—"सुहृदनगर से बोलत बानी ?"

एक बार अखिल भारतीय कांग्रेस महासमिति की बैठक मे हम लोग बगलोर गये। वहाँ के एक बहुत बडे आदमी ने बाबूसाहब को अपने यहाँ ठहराया। हम लोग भी उनके साथ ही ठहरे। जब हम लोग वहाँ से बिहार के लिए रवाना होने लगे तब उन्होने मुझे एक सौ रुपये दिये और कहा कि जितने नौकर हैं, सबको बाँट कर दे दो। मैंने नौकरो को केवल चालीस रुपये दिये। साठ रुपये मेरे पास बचे रहे। जब हम लोग मद्रास मे आये तब कोई सज्जन बाबू साहब को भोजन का पूरा सामान दे गये। बाबू साहब हम लोगो के डब्बे तक स्वय आये और कहा—"भोजन का सामान बहुत है। आप लोग आकर या किसी से मगवा कर भोजन कर लीजिए।" जब मै श्री रामजी प्रसाद शर्मा के साथ वाल्टेयर रिफ्रेशमेन्ट रूम मे चाय पी रहा था तब बाबू साहब भी वहाँ आ गये और हम लोगों के साथ चाय पीने बैठ गये। बातचीत के सिलसिले मे मैंने कहा—"साठ रुपया बच गइल बा।" उन्होने सहज विनोद के साथ कहा—"रउआ बडा किरपिन बानी। सब काहे ना बाँट देली ?" यह थी उदारता उनमे। मैंने शेष रुपये वही उन्हें लौटा दिये।

जिन बातो को नैतिकता की दृष्टि से वे हेय समझते थे, उनकी वे भर्त्सना करते थे और उन्हे जनता के समक्ष लाने मे भी सकोच करते थे। वे अपने राजनीतिक जीवन की पराजय से विषण्ण नही होते थे और खिलाडियो की तरह चुनाव मे हारकर भी हतोत्साह नही होते थे और अपने प्रतिद्वन्दी को सहर्ष बधाई देते थे। यही कारण था, सन् १९५७ ई० मे कांग्रेस विधायक दल के नेता-निर्वाचन मे जब वे पराजित हो गये तब उन्हे तनिक भी पश्चाताप नही हुआ। जिन्होने उन्हे धोखा दिया था, वे भी उनसे मिलने आये तो उन्हे क्षमा कर दिया और चुनाव की घोषणा होते ही वे सबसे पहले डॉ० श्रीकृष्ण सिंह को बधाई देने के लिए उनकी कोठी पर दौड गये। दोनो गले से मिले। दोनो की आँखो से स्नेहाश्रु उमड चले। दोनो ने राम-भरत-मिलाप का दृश्य उपस्थित कर दिया, जिसे देख कर दोनो के समर्थक दग रह गये। उनका हृदय समुद्र की तरह प्रशान्त था और मस्तिष्क हिमालय की तरह गर्वोन्नत। वे अपने सिद्धान्तो पर अडते थे। तब किसी से समझौता करना नही चाहते थे और दूसरो के सिद्धान्तो को अपनाते थे तो उन्हे दृढता के साथ अपने व्यवहारों मे ढालते थे। इस अर्थ मे वे फौलाद की तरह कठोर थे तो रबर की तरह लचीले भी। वस्तुत. वे परस्पर विरोधी तत्वों से निर्मित थे। २३ जून, १९५७ ई० को मैं दरभगा सर्किट हाउस मे था। तीन बजे एक सज्जन बाबूसाहब के पास फल, चाय आदि लेकर गये। उन्होने उन्ही के द्वारा मुझे बुलवाया। मैं दौड़ा हुआ उनके पास गया। उन्होने आज्ञा दी—"ली चाय वगैरह पी ही।" बाबू साहब को चाय बनाकर

मैने ही दी। दोनो व्यक्ति चाय पीने लगे और बाते करने लगे। "दिनकर" जी का एक निजी काम था। मैंने बाबू साहब से कहा। उन्होने कहा कि २८-२९ तक पटना आ जाना, मैं कर दूंगा। हम लोगो ने विभिन्न विषयो पर दिल खोल कर बातें की। कौन जानता था कि उनके साथ मेरा यह अन्तिम वार्तालाप है? कुछ देर के बाद सत्यनारायण बाबू, पटेल साहब और विनोदा बाबू वही आ गये। इसके बाद हम लोगो की बाते बन्द हो गयी। बाबू साहब उन लोगो से बतियाने लगे। २४ जूब को सुबह की गाडी से मैने सुहृदनगर को प्रस्थान किया और वे लोग हवाई जहाज से पटना चले गये।

मैं २८ जून, १९५७ को पटना पहुँचा। "दिनकर' जी को सारी बाते कही। हम लोगो ने शाम को बाबू साहब के यहाँ चलने का कार्यक्रम निश्चित किया। डेरा आकर मैंने बाबू साहब को फोन किया। मालूम हुआ कि २८ जून को रात मे वे स्नान गृह मे जा रहे थे कि हम लोगो के दुर्भाग्यवश उनका पाँव टेलीफोन के तार मे फँस गया जिससे वे जमीन पर गिर गये। उनकी जाँघ की हड्डी टूट गयी। तुरन्त उन्हे अस्पताल पहुँचाया गया। उन्हे काटेज मे रखा गया। उनका दर्द बढता गया। हम लोग शीघ्र अस्पताल पहुँचे। इस दुर्घटना का समाचार पाते ही डॉ० राजेन्द्र प्रसाद दिल्ली से दौडे आये और घटो उनकी बगल मे बैठे रहे। श्री लालबहादुर शास्त्री, श्री जयप्रकाशनारायण आदि अपने सारे कार्यक्रमो को स्थगित कर पटने मे बाबू साहब की बगल मे बैठे रहे। बाबू साहब ने ५ जुलाई, १९५७ ई० की आर्द्ध रात्रि मे अपनी ऐहिक जीवन-लीला समाप्त की और हमे रोते हुए छोड दिया।

आज उनका भौतिक शरीर वर्तमान नही है लेकिन वे अपने यश शरीर से जीवित हैं और तब तक जीवित रहेगे जब तक भारत जीवित रहेगा। बिहार उनका जीता-जागता स्मारक है।

श्री लालबहादुर शास्त्री

श्री लालबहादुर शास्त्री के प्रथम दर्शन कब हुए और कब हम लोग एक-दूसरे के सौहार्द-बन्धन मे बधे, यह स्मरण नही है। श्री शभु बाबू के कारण मैं उनके नाम से परिचित था किन्तु उनका पूरा परिचय छोटे साहब (श्री सत्येन्द्र नारायण सिंह, अब शिक्षा मन्त्री) ने मुझे १९४८ ई० मे दिया था। १९४८ ई० मे अनुग्रह-अभिनन्दन-ग्रथ मुद्रित हो गया। मैं अभिनन्दन-समिति का मन्त्री था, डॉ० श्रीकृष्ण सिंह अध्यक्ष थे और भारत के दो प्रमुख विद्वान डॉ० सुधाशु और डॉ० दिनकर सम्पादक थे। बिहार वालो की राय हुई कि अभिनन्दन-समारोह धूमधाम से सम्पन्न हो और सभापतित्व करने के लिए किसी विख्यात नेता को बुलाया जाय। कौन बाहर से आये—कोई नाम नही लेता था। मैं बडे पसोपेश मे पडा। मैंने अपनी कठिनाई छोटे साहब के सामने रखी। उन्होने दो-तीन नाम सुझाये जिनमे एक नाम था पण्डित गोविन्दवल्लभ पन्त का। मैंने छोटे साहब से पूछा कि पन्त जी को कैसे बुलाया जाय। उन्होने कहा—"लाल-बहादुर जी को पत्र लिख दी—उहाँ के ठीक कर देब।" यह सुझाव मुझे भाया और मैंने फौरन शास्त्री जी को अपने सिताबदियारा, छपरे का परिचय देते हुए एक पत्र प्रेषित किया। उनका उत्तर लौटती डाक से प्राप्त हो गया। पटना आने के लिए पन्त जी को उन्होने ठीक कर दिया। इस प्रकार हम लोग एक सुन्दर अतीत काल मे, जिसमे न समय का बन्धन है न स्थान का, मिले थे और ऐसे मिले थे कि प्रतीत होता था कि हम दोनो कब के परिचित हो और कब की घनिष्ठता हम लोगो मे रही हो। तब से लगातार शास्त्री जी से भेंट होती रही, कभी सार्वजनिक सभा मे, कभी ट्रेन मे और कभी घर बैठे। जब मैं उनसे मिलता मेरा दिल खुशी से खिल उठता। राष्ट्रपति डॉ० राजेन्द्र-प्रसाद से मेरा घनिष्ठ सम्बन्ध था। इसलिए मैं उनके स्वभाव से पर्याप्त परिचित था। उनकी नम्रता और गम्भीरता बेमिसाल थी। मैं शास्त्री जी को वैसा ही पाता था। वे स्वभावत' मितभाषी थे और बहुत मिलनसार थे। उनके सार्वजनिक जीवन में भी वही सारी बातें पायी जाती थी।

१९५२ ई० मे शास्त्री जी भारत सरकार के मन्त्री थे। बगलौर में ए० आई० सी० सी० की बैठक थी। मैं भी बगलौर गया हुआ था और डॉ० सुधाशु के साथ ठहरा हुआ था सरकारी अतिथि भवन में। श्री हजारीलाल शर्मा राजस्थान से 'राष्ट्रदूत'
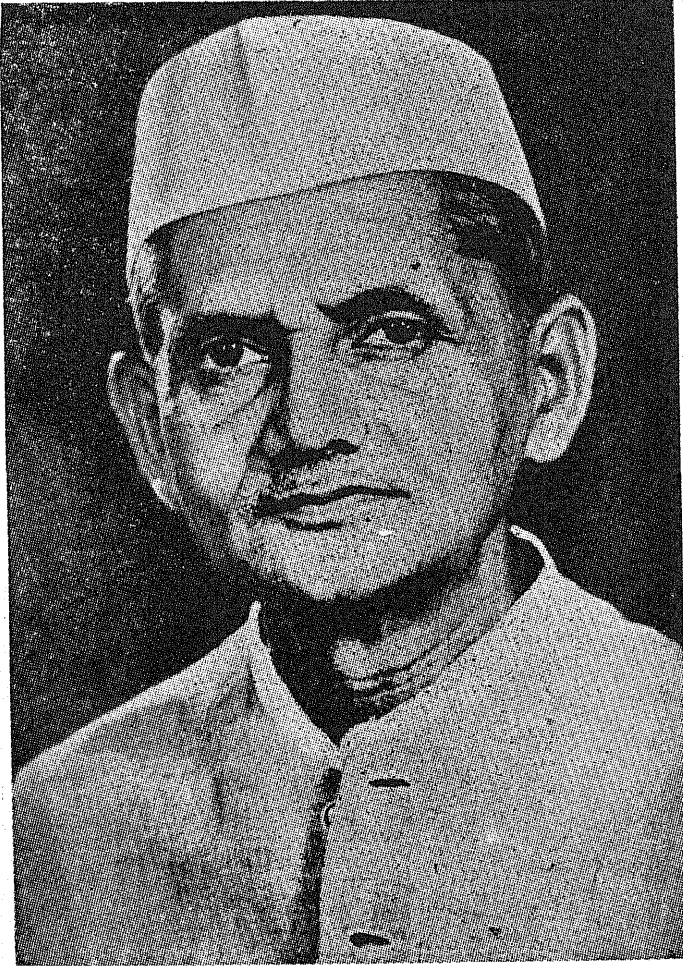
श्री लालबहादुर शास्त्री

नामक दैनिक पत्र निकालना चाहते थे जिसके लिए वे कुछ महापुरुषो से सन्देश लिखवाना चाहते थे। बहुत लोगो से जब सन्देश लिखवा दिया तब उन्होने कहा कि शास्त्री जी भी दो शब्द लिखा दे। हम शास्त्री जी के निवास-स्थान पर गये। वहाँ ज्ञात हुआ कि वे वहाँ गये है जहाँ उत्तर-प्रदेश कॉंग्रेस का कैम्प है। हम दोनो उत्तर-प्रदेश काँग्रेस कैम्प मे पहुँचे। शास्त्री जी अपने साथियो के बीच मे बैठकर बाते कर रहे थे। मुझे देखते ही उन्होने अपने पास बुला लिया। हम लोग बहुत देर तक बाते करते रहे। चलते समय मैंने अपना मन्तव्य प्रकट किया। उन्होने कहा—"डेरे पा आइए, लिख दूगा।' वे जमीन पर बिछी दरी पर बैठकर बातें कर रहे थे। उनका वेश सादा था। उनकी बातचीत मे आत्मीयता का पुट था। प्रतीत होता था कि वे एक महापुरुष है। उस समय राजर्षि पुरुषोत्तमदास टण्डन और पण्डित जवाहरलाल नेहरू मे कुछ अनबन-सी थी। रात्रि मे जब बाबू साहब से मैंने पूछा कि अब शास्त्री जी क्या करेगे, तब बाबू साहब ने कहा—"शास्त्री जी बहुत बुद्धिमान आदमी हवन। सबके साथ अतना अच्छा व्यवहार रखेलन। एहसे उनकरा से केहू नाखुश ना होखे। सब काम अपना विचार से करेलन। एहसे टण्डन जी भी खुश रहेलन और नेहरू जी भी विश्वास करेलन।"

वस्तुतः नेहरू जी और टण्डन जी दो विभिन्न प्रकृति के महापुरुष थे। नेहरू जी बहुत जल्द नाराज हो जाते थे लेकिन उनकी नाराजगी बहुत देर तक नही टिकती थी। लेकिन टण्डन जी बहुत जल्द नाराज नही होते थे। वे किसी से यदि असन्तुष्ट होते थे तो उसके बारे मे अपनी राय आसानी से नही बदलते थे। शास्त्री जी दोनो महापुरुषो का सम्मान करते थे और दोनो के स्नेह-भाजन और कृपा-पात्र थे। यह उनकी सामजस्यपूर्ण बुद्धिमत्ता का परिचायक था।

शायद १९५२ ई० की बात है। श्री शास्त्री जी सहरसा जिले मे एक रेलवे पुल का उद्घाटन करने जा रहे थे मेल गाडी से। यह गाडी बेगूसराय स्टेशन पर पहले नही रुकती थी। इसलिए हम लोग कार्यक्रम के अनुसार मानसी स्टेशन पर पहुँच गये। लगभग दस बजे उनकी गाडी पहुची। वे फर्स्ट क्लास डब्बे मे थे। उन्हे हल्का ज्वर था। जब मैं उनके डब्बे मे गया तब वे ज्वर की स्थिति मे भी उठ बैठे। मैंने ऐसा करने से उन्हे रोका। तब वे लेट गये और बातें करने लगे। रेलवे डाक्टर चौधरी उनके साथ थे। चौधरी जी उन्हे दवा देते रहते थे। कटिहार पहुँचते-पहुँचते शास्त्री जी का बुखार भाग गया। पूर्णियाँ स्टेशन पर डॉ० श्रीकृष्ण सिह और डॉ० सुधाशु उनके स्वागतार्थ खडे थे तथा एक बड़ी भीड भी स्वागतार्थ खडी थी। जब गाडी खडी हुई तब शास्त्री जी फूल मालाओ से लद गये और उनके जयकार से आकाश गूंज उठा। डॉ० श्रीकृष्णसिह और डॉ० सुधाशु उनके डब्बे मे ही आकर बैठे। गाड़ी अपनी रफ्तार से आगे बढ़ी। आपस में बातें भी होने लगीं। मैंने अनुभव किया कि शास्त्री जी मे दृढता की कमी नही था। उनमें कार्य करने की अथक शक्ति थी। वे विनयिता, नम्रता, सादगी और

सरलता की मूर्ति थे। मुरलीगज के आसपास जिस स्टेशन पर शास्त्री जी उतरने वाले थे और पुल का उद्घाटन करने वाले थे उस स्टेशन पर हजारो की भीड स्वागतार्थ खडी थी। शास्त्री जी हाथ जोडे गाडी से उतरे और मालाओ से लद गये। जय-जयकार के नारे लगते रहे। इन्द्र भगवान् ने भी रिमझिम के स्वरो मे उनका स्वागत किया। नियत समय पर शास्त्री जी ने पुल का उद्घाटन किया और भाषण भी। जनता ने मुझे बोलने को बाध्य किया किन्तु मैं कुछ न बोला। बाद मे डॉ० सुधाशु और श्री बाबू का जोशीला भाषण हुआ। सभा-विसर्जन के उपरान्त हम लोग डाइनिंगकार मे गये। जिस टेबुल पर शास्त्री जी, सुधाशु जी और श्री बाबू आसीन थे, मैं उससे दूर था। शास्त्री जी ने श्री भीष्म अरोडा (जी० एम०) को भेजकर मुझे बुलाया और अपने पास बिठाया। भोजन करते समय उन्होने पूछा—'आप उधर क्यो चले गये थे ?' मैंने कहा—'यो ही।' कटिहार मे गाडी लगी। सुधाशु जी और श्री बाबू उतर गये। श्री विष्णुदेव नारायण जी, श्री रामजी प्रसाद शर्मा, श्री कुँजबिहारी शर्मा आदि के साथ मैं दूसरे डब्बे मे बैठा। शास्त्री जी गाडी से उतर कर स्टेशन पर घूम रहे थे। जब वे मेरे डब्बे के सामने आये, पूछा—'आराम है न ?' मैंने कहा—'जी हाँ।' गाड़ी खुली। सुबह को हम लोग बरौनी पहुँचे। शास्त्री जी बनारस की ओर चले गये और हम लोग बेगूसराय चले आये।

शास्त्री जी के साथ रहने मे कोई यह महसूस नही करता था कि वह एक महापुरुष के साथ है। वे किसी व्यक्ति के 'इफिरियारिटी कम्प्लेक्स' को उभरने ही नही देते थे। जब वे पटना आते थे तब अधिकतर वे बाबू साहब (डॉ० अनुग्रह नारायण सिंह) के साथ ठहरते थे। एक रोज की बात है। दिन के तीन बजे होगे। एक फोटो ग्राफर बाबू साहब का फोटो लेने आया। बाबू साहब का फोटो लेने के बाद श्री अम्बिका शरण सिंह (अब मन्त्री) ने कहा कि एक फोटो शास्त्री जी के साथ भी लिया जाय। बाबू साहब के बगल मे एक कुर्सी रखवा दी गयी। हम लोगो ने उस पर बैठने को उनसे बारम्बार आग्रह किया पर वे बैठ नही रहे थे। इस पर मजाक करते हुए अम्बिका बाबू ने शास्त्री जी से कहा—' बैठो ना, रउआ बाबू साहब से कम बानी थोडे।" इस पर शास्त्री जी ने नम्रतापूर्वक कहा—'कम तो जरूर हूँ' और बैठ गये। वे बाबू साहब का बडा आदर करते थे और उनके सामने कुर्सी पर नही बैठते थे। उनका जीवन इतना सरल और सादा था और व्यवहार इतना स्नेहपूर्ण और आकर्षक कि उसकी छाप हर व्यक्ति पर पड जाती थी। उनका सीधा सम्पर्क जनसेवको के साथ था और कहना चाहिए कि वे भारतीय जनता के प्रतिनिधि थे। गाधी जी ने कहा था कि भारत के प्रधान मन्त्री को भारतीय किसानो का प्रतिनिधित्व करने वाला होना चाहिए। शास्त्री जी गाँधी जी के विचार के अनुरूप भारतीय किसानो के प्रतिनिधि थे। यही कारण था, कि वे जनता की कठिनाइयो और मुसीबतो को अच्छी तरह से जानते थे और उन्हे दूर करने की भरपूर चेष्टा करते

थे। वे जवाहरलाल जी की तरह जन्मत. बडे नही थे। बडप्पन उन्होने अर्जित किया था अपनी अविराम लगनशीलता, ईमानदारी और परिश्रमशीलता से। उन्होने प्रतिकूल परिस्थितियों से लोहा लिया था और उन्हे अपने अनुकूल बनाया था।

वे इस बात के प्रमाण थे कि जिस व्यक्ति मे, जिन भारतीय युवको मे बढने की आकाक्षा हो, समाज और देश की सेवा करने की उत्कट अभिलाषा हो, वह अपनी कर्त्तव्यनिष्ठा और निष्कपटता से भारत का प्रधान मत्री हो सकता है। उन्होने भारतीय प्रजातान्त्रिक पद्धति का जो आदर्श जनता के सामने प्रस्तुत किया वह भारतीय राजनीति के इतिहास मे अपना सानी नही रखता। सन् १९५६ ई० मे देश मे अनेक ट्रेन दुर्घटनाएँ हुईं। शास्त्री जी भारत सरकार के रेल मत्री थे। उन्होने मन्त्रि-पद से फौरन त्याग-पत्र देकर इस परम्परा की नीव रखी कि प्रजातन्त्र मे यदि हम किसी पद से किसी कार्य को सँभालने मे असमर्थ हो जाये तो हमे उस पद से हट जाना चाहिए। मैंने उसी समय यह अनुभव किया कि देश मे यदि निस्पृह त्यागी कोई है तो वे शास्त्री जी थे और भारत को ऐसे ही मन्त्रियो की आवश्यकता है।

शास्त्रा जी ऊपर से विनम्र थे और भीतर से चट्टान की तरह दृढ भी। विभिन्न विचारों और विवादो मे वे सन्तुलन स्थापित करने की अद्भुत शक्ति रखते थे। उनमे विभिन्न विचारो के लोगो को साथ लेकर चलने की जबर्दस्त क्षमता थी। जब वे रेल मन्त्री थे तब रेलवे विभाग मे उन्होने सुधार के अनेक कार्य किये। उन्होने रेलवे का शताब्दी-त्योहार मनाने का आयोजन किया। उन्होने अनेक तरह की गाडियाँ चलवायी। जनता एक्सप्रेस उनकी ही सूझ-बूझ का नतीजा है जो भारतीय जनता को सुविधा ही नही देती वरन् भारतीय एकता को भी मजबूत करती है।

बेगूसराय का रेलवे पार्क उनके आशीर्वाद का सुफल है। घटना सन् १९५४-५५ के बीच की है। उन दिनों रेल मन्त्री थे श्री लालबहादुर शास्त्री और उत्तर-पूर्व रेलवे के जनरल मैनेजर थे श्री भीष्म अरोडा। अरोडा साहब के पिता श्रीनारायण अरोडा कानपुर के बहुत बडे नेता और सुलेखक थे तथा श्री गणेश शकर विद्यार्थी के सहयोगी। अरोडा साहब को भी जन-सेवा की लगन और सहृदयता पिता से उत्तराधिकार के रूप मे प्राप्त हुई है। बेगूसराय स्टेशन वाली सडक बन्द करके दूसरी सडक बनी। इस सडक के निर्माण कार्य मे जो मिट्टी कटी उससे रेलवे के दोनों ओर बडे-बडे गड्ढे हो गये। हमारे देश मे गड्ढे और गन्दगी मे चोली और दामन का सम्बन्ध है। शौचार्थियो को स्वर्णयोग हाथ लगा और उन्होने पूरी उदारता से गड्ढों को गन्दा बनाना शुरू किया। इन गढ्ढो के बारे मे शास्त्री जी से तभी बातें हुईं जब वे पुल के उद्घाटन मे मुरलीगज गये थे। दूसरी बार श्री अरोड़ा साहब मेरे यहाँ आये तो उनसे कहा गया। उन्होंने बहुत कम खर्च में एक सुन्दर पार्क बनवा दिया जो सम्प्रति बेगूसराय का एकमात्र पार्क है। हर प्रकार के लोगों से हर प्रकार की बातें सुनने का शास्त्री जी में अपार धैर्य

था। वे सामूहिक विचार पद्धति और सामूहिक कार्य-प्रणाली मे विश्वास करते थे। असम की भाषा समस्या का हल उन्होने जिस बुद्धिमत्तापूर्वक निकाला उसकी प्रशसा सपूर्ण देश करता है। इसी प्रकार कश्मीर-समस्या हो या भारत-नेपाल-मतभेद की समस्या हो, उनकी बुद्धि पराक्रम दिखलाती रही। भारत जैसे विविधताओं के देश का सफल प्रधान मन्त्री वही हो सकता है जो विभिन्न विचार-बिन्दुओ मे समन्वय-सन्तुलन स्थापित कर सके। शास्त्री जी नि सन्देह इस प्रतिभा के धनी थे।

फरवरी, १९५६ की बात है। गगा नदी पर पुल के शिलान्यास की तिथि २७-२-५६ निश्चित हुई। इस कार्य की स्वीकृति राष्ट्रपति डॉ० राजेन्द्रप्रसाद ने दी। २७-२-५६ को राजेन्द्र बाबू ने पटने से मोकामा प्रस्थान किया। उनके साथ बाबू साहब और रेल मत्री श्री लालबहादुर शास्त्री भी थे। श्री वाल्मीकि चौधरी (राष्ट्रपति के निजी सचिव) ने मुझे बतलाया कि राजेन्द्र बाबू ने मेरी जगह रिजर्व करने के लिए उन्हे कहा है जिस डिब्बे मे "दिनकर" जी भी चलेगे। मैं नियत समय पर स्टेशन पहुँचा। पार्क के सामने स्पेशल गाडी के सामने मैं बैठ गया। इतने मे राजेन्द्र बाबू और शास्त्री जी आये। राजेन्द्र बाबू अपने सैलून मे चले गये। मैं सैलून मे चला गया, राजेन्द्र बाबू के साथ कॉफी पी और सैलून से उतरा। मैंने देखा कि शास्त्री जी प्लेट-फार्म पर घूम रहे थे और लोगो से बातें कर रहे थे। मैं उनके साथ हो गया। उन्होने कहा कि चलिए, आपका डब्बा देखूँ। वे मेरे डब्बे के सामने आये। हम लोग डब्बे के सामने खडे-खडे बाते कर रहे थे। तब तक "दिनकर" जी भी आ गये। गाडी खुलने का समय हो चुका था। शास्त्री जी राजेन्द्र बाबू के साथ बैठ गये। हम लोग अपने डब्बे मे बैठ गये। गाडी मोकामा के लिए चल दी। हर स्टेशन पर शास्त्री जी और राजेन्द्र बाबू के जय-कार के नारे लगते थे। हाथीदह स्टेशन पर, जहाँ पुल बनने वाला था और सभा होने वाली थी, गाडी रुकी। मोटर से राजेन्द्र बाबू, बाबू साहब और शास्त्री जी सभा-स्थल की ओर चले। जी० एम० ने हम लोगो को भी एक गाडी दी। हम लोग भी समय पर सभा स्थल पर पहुँच गये। लाखों की भीड थी। मच पक्का था जो आज भी उस तिथि का स्मारक है।

राजेन्द्र बाबू ने वैदिक विधि से पुल का शिलान्यास किया। जहाँ आजकल डाक बँगला है वहाँ भोजन की व्यवस्था थी। शामियाने मे भोजन के टेबुल लगे थे। राजेन्द्र बाबू हाथ-मुँह धो रहे थे। शास्त्री जी मेरे कन्धे पर हाथ रखकर शामियाने मे घूम रहे थे और बातें भी कर रहे थे। मैंने इस क्रम मे ही उनसे कहा—"आपने अपने समय मे एक बड़ी देन बिहार को दी जिससे उत्तर और दक्षिण बिहार वालो का सम्पर्क निर्विघ्न रूप मे बढता रहेगा और जब तक यह देन कायम रहेगी, इतिहास आपको याद करता रहेगा।" मेरी बातें सुनकर शास्त्री जी मुस्कुराने लगे और कहा—'मुझे कौन याद करेगा ?" इतनी देर मे राजेन्द्र बाबू और बाबू साहब भी आ गये। हम दोनो व्यक्ति

टेबुल पर जाकर बैठ गये। भोजनोपरान्त मैं इधर-उधर घूमने लगा। स्पेशल गाडी खुलने का समय हो गया। श्री भीष्म अरोडा ने मुझसे पूछा—"आप पटना नही जायेगे क्या ?" मैंने कहा—"हाँ !" तब उन्होने मुझे गाडी से स्पेशल गाडी तक पहुँचा दिया। मुझे देखकर बाबू साहब ने मुझे अपने डब्बे मे बुला लिया। शास्त्री जी, बाबू साहब और राजेन्द्र बाबू से बाते करते-करते मैं पटना पहुँच गया। डॉ० दिनकर वही से अपने घर सिमरिया चले गये। इस प्रकार शास्त्री जी की अनेक मधुर स्मृतिया मेरे मन मे है। इन स्मृतियो की गगा मे एकान्त मे स्नान कर मैं अपार आनन्द से भर जाता हूँ। उन्होने अपने को उस पद पर प्रतिष्ठित कर लिया, जिसके लिए इतिहास उन्हे सर्वदा याद रखेगा।

उनका जन्म २ अक्तूबर, १९०४ ई० मे, उत्तर प्रदेश की काशी नगरी के निकट गंगा नदी के दक्षिण पार मोगलसराय नामक गाँव मे हुआ था। उनकी माता का नाम श्रीमती रामदुलारी देवी था और पिता का नाम श्री शारदा प्रसाद था। श्री शारदा प्रसाद गाँव मे स्कूल के एक दरिद्र शिक्षक थे। जब शास्त्री जी केवल डेढ वर्ष के अबोध शिशु थे, उनके पिता स्वर्गवासी हो गये। कठोर दरिद्रता का भार वहन करते हुए भी श्रीमती-रामदुलारी देवी ने शास्त्री जी का प्रवेश स्कूल मे करा दिया क्योकि उनका दृढ सकल्प था कि मैं अपने पुत्र की शिक्षा-दीक्षा का प्रबध किसी भी तरह से करूँगी। बचपन मे शास्त्री जी घर से आठ मील दूर स्कूल मे पैदल जाते थे और शाम को पैदल घर पहुचते थे। १९२१ ई० मे जब महात्मा गाँधी ने असहयोग-आन्दोलन का बिगुल बजाया था, शास्त्री जी दसवे दर्जे मे पढते थे। वे अपनी विधवा माता की आशा के केन्द्र बिन्दु थे। लेकिन जब अनेक विद्यार्थियो ने असहयोग-आन्दोलन की पुकार पर स्कूल छोडे तब शास्त्री जी ने भी स्कूल त्याग दिया। उस समय वे सोलह वर्षों के किशोर थे। पुलिस ने उन्हे पकडा और डरा-धमकाकर छोड दिया। वे समाज-सेवा मे लग गये। उनकी माता की आशा पर पानी फिर गया। लेकिन उनकी माता उनकी शिक्षा-दीक्षा के लिए ईश्वर से प्रार्थना करती रही और ईश्वर ने उनकी पुकार सुनी थी। काशी विद्यापीठ स्थापित हुआ जिसके आचार्य हुए भारत के विख्यात दार्शनिक डॉ० भगवानदास। श्री लालबहादुर शास्त्री जी ने काशी विद्यापीठ मे नाम लिखाया। तेईस वष की अवस्था वे काशी विद्यापीठ से दर्शनशास्त्र मे स्नातक हुए। उनके नाम के साथ "शास्त्री" उपाधि जुडी। यह उपाधि उन्होने १९२५ ई० मे प्राप्त की। उनका विवाह श्रीमती ललिता देवी से हुआ। आज उनके चार पुत्र दो पुत्रियाँ हैं (उन्ही के भाँजे श्री श्रीशकरण शरण जी, आई० ए० एस०, सिताब दियारा, छपरे के है)।

शास्त्री जा ने ३१ सितम्बर १९२९ ई० को लाहौर कॉंग्रेस की विशाल सभा मे सर्वप्रथम पण्डित जवाहरलाल नेहरू के दर्शन किये थे। इसके बाद दोनों एक-दूसरे से परिचित हुए और कालान्तर मे यह परिचय घनिष्ठता मे बदलता गया।

शास्त्री जी १९२८ ई० मे लाला लाजपतराय द्वारा स्थापित लोकसेवा सघ के आजीवन सदस्य हो गये थे जिससे उन्हे ७५ रुपये मासिक रूप मे मिलते थे और कुछ मासिक भत्ता भी। १९३१ ई० मे कानून भग आन्दोलन मे वे प्रथम बार गिरफ्तार हुए थे। दूसरी बार वे १९३३ ई० के व्यक्तिगत सत्याग्रह-आन्दोलन मे गिरफ्तार हुए थे और फैजाबाद जेल मे बी० क्लास मे थे। १९४० ई० के सत्याग्रह आन्दोलन और १९४२ ई० के "भारत छोडो आन्दोलन" मे भी वे गिरफ्तार हुए थे। सब मिलाकर अपनी जिन्दगी के पूरे अमूल्य नौ वर्ष उन्होने कारागार मे व्यतीत किये हैं। सन् १९४६ ई० के आम चुनाव मे वे उत्तर प्रदेश की विधान-सभा के सदस्य हुए और पण्डित गोविन्दवल्लभ पत के ससद्-सचिव। एक वर्ष के भीतर ही वे पण्डित गोविन्दवल्लभ-पत के मत्रिमडल मे पुलिस विभाग के मन्त्री हो गये। १९५३ ई० के पूर्व जब जवाहरलाल-नेहरू अखिल भारतवर्षीय कॉंग्रेस कमेटी के अध्यक्ष हुए तब उन्होने शास्त्री जी को अखिल भारतवर्षीय कॉंग्रेस कमेटी का महामत्री नियुक्त किया। १९५२ ई० मे जब केन्द्रीय मन्त्रिमडल गठित हुआ तब शास्त्री जी रेल मन्त्री नियुक्त हुए। सन् १९५६ ई० मे जब उन्होने रेल-दुर्घटनाओ की वजह से अपना पद त्याग किया तब जनता की नजरो मे बहुत ऊँचे उठ गये। पण्डित गोविन्दवल्लभ पत के स्वर्गवास के बाद वे भारत के गृह-मन्त्री हुए। जब कामराज-योजना का कार्यान्वयन हुआ तब जवाहरलाल नेहरू ने हटने वाले मन्त्रियो की जो सूची बनायी उसमे शास्त्री जी का नाम नही था लेकिन शास्त्री जी ने नेहरू जी पर जोर डाला और अपना नाम सूची मे रखवाया। सन् १९६४ ई० मे भुवनेश्वर कॉंग्रेस-अधिवेशन मे नेहरू जी अचानक बीमार हो गये। उनकी इच्छा के अनुसार शास्त्री जी निर्विभागीय मन्त्री हुए और नेहरू जी के कार्यो की देखभाल करने लगे। १९६४ ई० में जब नेहरू जी स्वर्गवासी हो गये तब उनकी इच्छा के अनुसार सर्व-सम्मति से उनके स्थान पर प्रधान मन्त्री हुए।

जब पाकिस्तान ने हिन्दुस्तान पर आक्रमण किया तब उन्होने उसका मुँहतोड जवाब दिया और भारत की प्रतिष्ठा ससार की आँखों मे बढा दी। उन्होने प्रमाणित कर दिया कि वे अपने वामन रूप मे विराट् शक्ति रखते है। मैने बरौनी (मुगेर) से प्रकाशित "बसन्त" के किसी अक मे उनके बारे मे होली के अवसर पर लिखा था—

"नाटे कदवाले शरीर मे है पौरुष साकार,
लाल बहादुर, इस कलियुग में तुम वामन-अवतार।
कैद बली को होना है ॥"

इन पक्तिओं को मैं विस्मृत कर चुका था। अचानक इनकी स्मृति दिलाई मेरे एक मित्र कवि ने तब जब हिन्दुस्तान से पाकिस्तान ने युद्ध में मुँह की खायी थी। इसके उपरान्त मैं अपनी भविष्यवाणी पर फूला न समाया। वस्तुत. शास्त्री जी ने हिन्दुस्तान-पाकिस्तान-युद्ध में अपने "वामनत्व" का विराट रूप मे परिचय दिया है। उनके आचार-विचार

राजेन्द्र बाबू के आचार-विचार से समता रखते थे और उनका आदर्श नेहरू जी के आदर्श से। प्रकारान्तर से यो कहा जा सकता है कि वे यदि नेहरू जी की तरह आदर्शवादी थे तो राजेन्द्र बाबू की तरह आचारी और विचारी भी। वस्तुत उन्होने दोनो के जीवन के अनुरूप अपने जीवन को ढालने की चेष्टा की। अपनी वैयक्तिक सम्पत्ति के रूप मे उनके पास कुछ नही था। जब वे इलाहाबाद जाते थे तब अपने किराये के मकान मे ठहरते थे। दिल्ली मे वे नियमित रूप से जनता की फरियाद सुनते थे। उनका दरवाजा फरियादियो के लिए खुला रहता था।

११ जनवरी १९६६ को ताशकन्द मे भारत-पाकिस्तान के साथ हुए समझौते में ताशकन्द मे ही शास्त्री जी की जीवन-लीला समाप्त हुई। उनका शव भारत मे लाया गया और नेहरू जी की समाधि के पास ही दाह-सस्कार किया गया, जिसका नाम विजय-घाट रखा गया।

डॉ० लक्ष्मीनारायण सुधांशु

श्री सुधाशु जी १५ दिसम्बर, १६०६ ई० मे पूर्णिया जिले के अन्तर्गत रूपस-पुर ग्राम मे पैदा हुए थे। वे बचपन मे "होनहार बिरवान के होत चीकने पात" वाली लोकोक्ति के अनुरूप नही थे। लेकिन पढने मे भोदू भी नही थे। साहित्य के प्रति उनके हृदय मे छात्रजीवन मे ही प्रेम जाग्रत हो गया था। सन् १६२४ ई० मे जब वे आठवे वर्ग मे पढते थे, उन्होने "भ्रातृ प्रेम" नामक एक दिलचस्प उपन्यास लिखा था। यह उपन्यास उसी समय प्रकाशित भी हुआ था। वे अपने स्कूली छात्रो के साहित्यिक नेता थे और अपने स्कूल के "कुमार" नामक मासिक पत्र का सम्पादन करते थे। जब वे मैट्रिक के विद्यार्थी थे तब उनकी अभिरुचि कहानियो की ओर उन्मुख हुई। उन्होने कई कहानियाँ लिखी थी। सर्वप्रथम "गुलाब की कलियाँ" नामक पुस्तक रूप मे प्रकाशित हुई थी। मैट्रिक की परीक्षा उन्होने जिला स्कूल भागलपुर से पास की। उनकी नव-रसमय कहानियो को औपन्यासिक-सम्राट् श्री प्रेमचन्द जी ने अपनी प्रकाशन सस्था से "रस रग" नामक पुस्तक रूप मे तब प्रकाशित किया था जब "सुधाशु" जी हिन्दू विश्वविद्यालय, काशी मे इन्टरमीडिएट के छात्र थे।

१६३१ ई० मे सुधाशु जी की प्रथम सहधर्मिणी का स्वर्गवास हो गया जिसके शोक मे उन्होने डेढ सौ पृष्ठो का एक गद्य काव्य "वियोग" लिखा था। यह गद्य काव्य युगान्तर साहित्य मदिर, भागलपुर ने प्रकाशित किया था। सन् १६३१-३२ मे सुधाशु जी ने "द्रौपदी का बहुपतित्व", "सीता का शील-सन्दर्भ" आदि अनुसधानात्मक निबन्ध लिखे थे, जो काशी नागरी प्रचारिणी पत्रिका मे प्रकाशित हुए थे और अब जो "साहित्यिक निबन्ध" (राजकमल प्रकाशन, दिल्ली) मे सकलित कर दिए गए है। इसके पूर्व उन्होने सन् १६२६ से सन् १६२६ ई० तक आल्हा खण्ड पर शोधकार्य किया था और शोध-कार्य से सम्बद्ध आठ-दस निबन्ध "सुधा" और "माधुरी" नामक मासिक पत्रो मे प्रकाशित कराये थे। वे आल्हा खण्ड के मूल रूप के सम्पादन की दिशा मे सचेष्ट थे किन्तु अनेक कारणों से पूर्ण नही कर सके।

पण्डित रामचन्द्र शुक्ल ने अपने "हिन्दी साहित्य का इतिहास" और "काव्य में रहस्यवाद" नामक ग्रन्थो मे अभिव्यजनावाद के प्रवर्तक क्रोसे को स्थान दिया था। सुधाशु जी को क्रोसे के सिद्धान्तो ने बडे वेग से आकृष्ट किया जिसका परिणाम यह

डॉ० लक्ष्मीनारायण सुधांशु

हुआ कि उन्होने क्रोसे को अपनी थीसिस का विषय बना डाला। "काव्य मे अभिव्यजनावाद" नामक ग्रन्थ उनकी थीसिस का परिवर्तित और परिवर्द्धित रूप है। यह ग्रन्थ आज भारत के विभिन्न विश्वविद्यालयो के पाठ्य-क्रम मे स्वीकृत है। डॉ० विरचीकुमार बरुआ द्वारा इसका असमिया रूपान्तर असम के कालेजो मे भी पढाया जाता है।

सुधाशु जी हिन्दू विश्वविद्यालय काशी से सन् १९३४ ई० मे हिंदी भाषा तथा साहित्य मे एम०ए० पास हुए और हिन्दी विद्यापीठ, देवघर के प्राचार्य-पद पर सुशोभित हुए। उनकी देखरेख मे सन् १९३६ ई० मे बिहार हिन्दी साहित्य सम्मेलन का अधिवेशन बडी धूमधाम से पूर्णिया मे हुआ था जिसके सभापति श्री यशोदानन्दन अखोरी थे। अतिथियो को किसी भी प्रकार की असुविधा न हो, इसके लिए सुधाशु जी विशेष प्रयत्नशील थे। उन्होने १९३८ ई० तक प्राचार्य पद पर रह कर हिन्दी की सेवा की। वे साहित्य के साथ-साथ राजनीति मे भी सक्रिय भाग लेते थे। वे सन् १९३९ ई० मे पूर्णिया जिलाबोर्ड के चेयरमैन हुए और दो वर्षो तक जनता-जनार्दन की सेवा की। जब गाधी जी ने १९४० ई० मे व्यक्तिगत सत्याग्रह आन्दोलन का बिगुल बजाया तब सुधाशु जी ने जिला बोर्ड की अध्यक्षता से त्याग पत्र देकर व्यक्तिगत सत्याग्रह मे भाग लिया और ४ दिसम्बर, १९४० ई० को गिरफ्तार हुए। उन्हे एक वर्ष की कैद और ढाई सौ रुपये जुर्माने का दण्ड हुआ। कॉंग्रेस ने जुर्माने की रकम चुकाने की मनाही की थी। इसलिए सुधाशु जी ने जुर्माने की रकम जमा नही की। फलत. सरकार ने उनकी मोटर-गाडी जब्त कर ली और उसे नीलाम कर दिया।

सुधाशु जी ने सन् १९४१ ई० मे हजारीबाग सेन्ट्रल जेल मे 'जीवन के तत्व और काव्य के सिद्धान्त" नामक बृहद् काव्य समीक्षात्मक ग्रन्थ का प्रणयन किया। इसमे यह बतलाया गया है कि काव्य-सृष्टि की प्रक्रिया का सम्बन्ध मनोविज्ञान से है। इसमे पाण्डित्य का प्राचुर्य है। इसके बारे मे डॉ० दिनकर का यह मत उल्लेखनीय है— "इस ग्रन्थ मे काव्य-सृष्टि की प्रक्रिया का सम्बन्ध मनोविज्ञान के साथ इतने अधिक पाण्डित्य के साथ दिखलाया गया है कि कभी-कभी हमे इस ग्रन्थ को साहित्य की अपेक्षा मनोविज्ञान मान लेने की इच्छा होती है और फिर भी यह कितना सत्य है कि काव्यालोचन की नवीनतम परिपाटी मनोविज्ञान से दूर नही है।" इसमे सन्देह नही है कि "सुधाशु" जी जितने बडे साहित्यज्ञ है उतने ही बडे मनोविज्ञानज्ञ भी। जिस गाभीर्य से उनका व्यक्तित्व ओतप्रोत है वही गाभीर्य उनके "काव्य मे अभिव्यंजनावाद" और "जीवन के तत्त्व और काव्य के सिद्धान्त" नामक ग्रन्थो मे परिलक्षित होता है। "हम उनकी पुस्तको मे चिन्तन की जो गहराई पाते हैं, उनका मन भी उतना ही गम्भीर है और शैली पक्ष मे अपने लेखो के भीतर शुद्ध सत्य पर पहुँचने के लिये वे जितने प्रयत्नशील मिलते हैं, तर्क और बातचीत मे भी सत्य के लिए उनमे उतना ही आग्रह रहता है। फेन, रगीनी और सतह पर के मन बहलाव पर न तो उनकी कलम आसक्ति

दिखलाती है और न रोजमर्रे के व्यवहार मे वे हल्की और ढीली बातो को प्रश्रय देते है।"

सुधाशु जी हजारीबाग सेन्ट्रल जेल से दिसम्बर, १९४१ ई० मे मुक्त हुए। जब गाधी जी ने १९४२ मे "भारत छोडो आन्दोलन" का श्री गणेश किया तब श्री सुधाशु जी २९ अगस्त, १९४२ ई० मे गिरफ्तार किये गये और पूर्णिया जेल मे रखे गये। लेकिन दूसरे ही दिन पूर्णिया जेल मे एक पुराने खर्राट अग्रेज-परस्त पुलिस-सुपरिन-टेन्डेन्ट ने राजनीतिक बन्दियो को लाठियो से पिटवाया। सुधाशु जी को कम से कम तीस-चालिस लाठियो की मार सहनी पडी। उन्हे पीठ की किसी नस मे या किसी ऐसी जगह चोट लगी जिससे उनकी आखो मे दर्द हो गया। यह दर्द आज तक उनका पीछा नही छोड सका है और साल मे एक-दो महीनो के लिए कभी-न-कभी उभर ही जाता है।

पूर्णियाँ जेल से सुधाशु जी भागलपुर सेन्ट्रल जेल भेज दिये गये जहाँ उनकी आँखो का दर्द बहुत जोर से उभर गया और वे परेशान रहने लगे। उन दिनो जेल मे बन्दियो के साथ कैसा व्यवहार होता था और बीमार होने पर उनकी चिकित्सा का क्या प्रबन्ध होता था, इसका थोडा अनुभव मुझे भी है। वे भागलपुर जेल से इलाज के लिए भागलपुर अस्पताल लाये गये। उन्हे अस्पताल के एक कमरे मे रखा गया और कमरे के बाहर बन्दूकधारी सिपाहियो का पहरा बिठा दिया गया ताकि वे किसीसे न मिल पायें न कही अन्यत्र भाग पाये। उनकी पीडा का समाचार सुनकर मैं व्याकुल हो गया और उनसे मिलने को बेगूसराय से भागलपुर रवाना हुआ। बारह बजे रात मे भागलपुर अस्पताल मे पहुँचा। पता लगाते-लगाते मैंने वह कमरा खोज ही निकाला जिसमे वे रखे गये थे। मैने देखा कि उनकी चारपाई के चारो ओर सिपाही बन्दूक रख कर सोये हुए हैं। मैं किसी तरह सिपाहियो को पार कर सुधाशु जी की चारपाई तक पहुँचा। वे जागृतावस्था मे थे लेकिन मुझे देख नही पा रहे थे। मैं धीरे-धीरे उनकी चारपाई पर बैठ गया और कहा—"हम हैं सुहृद।" उन्हे मेरा नाम सुनकर बडा आश्चर्य हुआ। उन्होने पूछा—"तुम यहाँ कैसे?" मैंने अपनी सारी कहानी उन्हे सुनायी। इसके बाद दो घटों तक हम देश की और इधर-उधर की बातें करते रहे। सभी सिपाही खर्राटे भर रहे थे। उनमे से किसी की नीद न टूटी या सभव है, टूटी भी हो तो उन्होने जान-बूझकर मटिया दिया क्योकि मेरा यह व्यक्तिगत अनुभव है कि अल्पवेतन भोगी सिपाहियो मे बड़े-बड़े पदा-धिकारियो की अपेक्षा अधिक मानवता और देश प्रेम की भावना वर्तमान थी और देश की आजादी की लडाई मे, चाहे वह गुप्त रूप से ही सही, उनका योगदान कम महत्त्वपूर्ण नही रहा।

सुधाशु जी के जीवन मे मै किसी-न-किसी रूप में सम्बद्ध रहा हू। उनके अनेक सस्मरण मेरे मस्तिष्क मे सिनेमा की रील की तरह घूर्णित होते हैं। सन् १९४६ की पहली अगस्त की बात है। छ. बजे शाम वे पूर्णियाँ से कटिहार पहुँचे। मैं उनकी प्रतीक्षा मे वहाँ पहले से उपस्थित था। साढे नौ बजे रात मे बगाल-आसाम रेलवे की गाड़ी से

हम लोगो ने कटिहार से प्रस्थान किया और तीन बजे रात मे पार्वतीपुर मे दार्जिलिंग मेल से सिलीगुडी पहुँचे। यहाँ से दार्जिलिंग ५१ मील दूर है, लेकिन यह दूरी चक्कर काटती हुई रेलवे लाइन और पक्की सडक की है। कौआ-उडान दूरी २०-२२ मील से अधिक न होगी। सिलीगुडी से पहाड पर चलनेवाली ट्रेन बहुत छोटी है और धुक-धुक करती हुई बहुत धीरे-धीरे ऊपर चढती है। सिलीगुडी से दार्जिलिंग पहुँचने मे गाडी को छ घटे लग जाते हैं। मोटर से यह दूरी दो-तीन घटो मे तय हो जाती है। इसलिए हम लोग मोटर से चले। सिलीगुडी से सात मील आगे बढने पर पहाडी चढाई शुरू होती है। मोटर के रास्ते और रेलवे समानान्तर हैं। ऊँचाई पर चढने के लिए कही-कही ट्रेन को लम्बा लूप बनाना पडता है। पहाड पर सडक बनाने मे करोडो की लागत लगी होगी और इजीनियरिंग के कौशल का तो कहना क्या? वहा की प्राकृतिक छटा अद्भुत थी। कही पहाडी झरने झरते हैं, कही जगलो के बीच से सडक गुजरती है। बरसाती दिनो मे बादल बर्फीली चोटियो से अभिसार करते नजर आते हैं। कभी वे हमारे सिर के ठीक ऊपर होते हैं और कभी हम ही उनसे अधिक ऊँचाई पर होते हैं। जगल, पहाड, झरने, बादल आदि मे एक निराली सुषमा दीखती है। चक्करदार रास्ते और मोटर की तेज चाल से यात्रियो को चक्कर आने लगता है और उल्टी तक हो जाती है। दार्जिलिंग की यह मेरी पहली यात्रा थी। मेरा जी मिचलाने लगा। बहुत से दार्जिलिंग मे रहनेवालो की भी तबीयत इस यात्रा मे बदमजा हो जाती है। सुधाशु जी इसके पूर्व भी एक-दो बार दार्जिलिंग जा चुके थे लेकिन उनकी हालत भी बहुत अच्छी न थी। ट्रेन मे यह चक्कर नही आता क्योकि वह बहुत धीरे-धीरे चलती है। कुर्सियाग मे हम लोगो ने चाय पी। दो अगस्त को दस बजे दिन मे हम लोग दार्जिलिंग पहुँचे। कुछ देर आराम करने के बाद हम लोगों की तबीयत स्वस्थ हो गयी। हम लोगो ने शाम को हवाखोरी की। तीन अगस्त को हम लोग पूरब की तरफ खूब घूमे और थकने के बाद वापस हुए। वहाँ से कचन जघा और एवरेस्ट का दृश्य थोडा-थोडा झलकता है, यदि आसमान साफ हो तो। बादलविहीन आकाश मे सूर्योदय का दृश्य अद्भुत दीखता है। हम यह दृश्य नही देख सके क्योकि बरसाती मौसम था। ४ अगस्त की शाम को हिमाचल हिन्दी भवन मे ससमारोह तुलसी जयती मनायी गयी। सुधाशु जी ने बहुत विद्वत्तापूर्ण भाषण किया। मैंने अपनी कुछ रचनाएँ सुनायी। ५ अगस्त को हम लोग जाला पहाड छावनी देखने गये। शाम को गाँधी चौक मे एक सार्वजनिक सभा बुलायी गयी थी। सभा से कुछ देर पहले ही वर्षा होने लगी थी लेकिन लोग वर्षा मे भीगते रहे और छाते ताने रहे पर सुधाशु जी का भाषण सुनते रहे। काग्रेस की सभा के बाद सात बजे हिन्दी भवन मे सुधाशु जी ने राष्ट्रभाषा के स्वरूप पर भाषण किया। सारा हाल खचाखच भरा था। कुछ लोगो ने सुधाशु जी से कुछ प्रश्न भी पूछे जिनका उन्होने यथोचित उत्तर दिया। मैं उनके वाक्यचातुर्य, प्रत्युत्पन्नमतित्व और हिन्दी अनुराग पर

मुग्ध था। हम लोगों ने ६ अगस्त को दार्जिलिंग से प्रस्थान किया। गाड़ी खुलने पर "सुधाशु जी जिन्दाबाद, हिन्दी जिन्दाबाद" आदि नारे लगते रहे। सुधाशु जी कटिहार से पूर्णियाँ चले गये और मैं बेगूसराय आ गया।

सन् १९४६ ई० मे सुधाशु जी बिहार-विधान-सभा के सदस्य चुने गये और १९४७ ई० मे उनकी प्रेरणा से मैंने डॉ० अनुग्रह नारायण सिंह की हीरक जयन्ती मनाने का और अभिनन्दन-ग्रथ निकालने का विचार किया था। अभिनन्दन-ग्रथ के सम्पादन मे सुधाशु जी ने अपनी एडी चोटी का पसीना एक कर दिया था। यह ग्रथ १ मई, १९५० ई० मे पण्डित गोविन्दवल्लभ पन्त के करकमलो द्वारा डॉ० अनुग्रहनारायण-सिंह को समर्पित किया गया था।

सुधाशु जी अपनी आत्मा के खिलाफ कुछ नही कर सकते, चाहे उन पर किसी भी प्रकार का दबाव पडे। वे दृढ हैं और न्याय-प्रिय भी। डॉ० अनुग्रह नारायण सिह ने 'मेरे सस्मरण' मे लिखा है—"सन् १९४२ के जन-आन्दोलन मे जो असामाजिक तत्व प्रविष्ट हो गये थे, काग्रेस उन्हे किसी भी शर्त पर अपनी परिधि मे रखने को तैयार नही थी। आन्दोलन के बाद जब काग्रेस की सरकार बनी तब १९५० ई० मे श्री लक्ष्मी-नारायण सुधाशु बिहार राज्य काग्रेस के अध्यक्ष थे और प्रधान सचिव थे श्री नन्दकुमार-सिंह। भागलपुर जिले से श्री सियाराम सिंह ने अपने तथा अपने पचास साथियों की ओर से काग्रेस मे प्रविष्ट होने का आवेदन-पत्र किया। राज्य काग्रेस के अध्यक्ष ने कुल नामो की जाच-पड़ताल के लिए भागलपुर जिला काग्रेस के तत्कालीन अध्यक्ष श्री राघवेन्द्र-नारायण सिंह के पास भेज दिया। उनकी रिपोर्ट के आधार पर श्री सियाराम-सिंह सहित जितने व्यक्ति सन् १९४२ के पूर्व काग्रेसी थे, उन सबको लेने को हम लोग सहमत थे। श्री बाबू कुल व्यक्तियों को जो पहले काग्रेसी नही भी थे, लेने के लिए अध्यक्ष पर दबाव डालने लगे, लेकिन अध्यक्ष काग्रेस के निर्णय की अवहेलना कर असामाजिक तत्त्वो को मान्यता देने को तैयार नही हुए, जिसके चलते वे श्री बाबू की नजर पर चढ़े रहे।' आज सारे लोग मानते हैं कि सुधाशु जी बिहार काग्रेस के अध्यक्षो मे सर्वाधिक-निर्भीक, सर्वाधिक योग्य और सर्वाधिक न्याय-प्रिय थे।

१९५१ ई० की बात है। बिहार राज्य काग्रेस के अध्यक्ष थे डॉ० सुधाशु और अखिल भारतीय काग्रेस के अध्यक्ष थे राजर्षि पुरुषोत्तमदास टण्डन। टण्डन जी का बिहार मे आने का कार्यक्रम बना। सुधाशु जी ने मुझे सूचित किया कि मुझे भी उन लोगो के साथ बिहार मे दौरा करना होगा। हिन्दी के दो तप पूत पुत्रो के दर्शन करने के सौभाग्य से मैं वचित कैसे रहता? टण्डन जी पटना आये। हम लोग उनके साथ मुजफ्फरपुर गये। वहाँ से हम लोग हवाई जहाज से कटिहार गये, फिर बारसोई और दूसरे दिन कटिहार लौट आये। सुधाशु जी काग्रेस के किसी कार्य से पूर्णियाँ मे ही रह गये और हम लोग पटना तक गये। इस यात्रा के दौरान मैंने अनुभव किया कि सुधाशु जी

आपाद मस्तक आतिथेय है और उनमे आतिथ्य-भावना कूट-कूट कर भरी हुई है।

मैं डॉ० दिनकर के इस विश्लेषण से पूर्णतः एकमत हूँ—"···राजनीति के अखाडे मे भी सुधाशु जी राजनीतिज्ञ की तरह नही चलते। उनकी निर्मलता, उनका सरल स्वभाव, उनकी मलिनता और जटिलता से भागते रहने की प्रवृति और अखाडे मे उतरने से पहले अपने बदन को तेल से पिच्छल कर लेने की नीति के प्रति उत्कट घृणा, ये सारी बातें राजनीति मे सफलता चाहने वालो की कमजोरियाँ हैं और ये कमजोरियाँ सुधाशु जी मे कूट-कूटकर भरी हैं और चूंकि इन कमजोरियो के रहते हुए भी सुधाशु जी काफी आगे जा चुके हैं, इसलिए, वे इन्हे प्यार भी करते हैं।" प्रकारान्तर से यो कहा जा सकता है कि वे दाव-पेच से अनभिज्ञ है। १९४५ ई० मे वे अखिल भारत वर्षीय काग्रेस कार्य समिति के सदस्य थे। उस समय सरदार वल्लभ भाई पटेल ने बिहार प्रान्त के एक प्रमुख नेता पर क्रुद्ध होते हुए सुधाशु जी से कहा—"इनको मै देखना नही चाहता। वे समझते हैं कि मै ही बिहार प्रान्त को चला रहा हूँ। अगर अब किसी तरह की शिकायत सुनने मे आयेगी तो मै बिहार को अपने हाथ मे ले लूँगा।" यह सुनकर दूसरा कोई होता तो आग मे घी डालता और खुद बिहार की गद्दी पर बैठने की कोशिश करता लेकिन सुधाशु जी ने सरदार पटेल साहब से बिहार के नेता के पक्ष मे पर्याप्त बाते कही। तब सरदार साहब शान्त हुए और डॉ० अनुग्रह नारायण सिंह से सुधाशु जी की खूब तारीफ की।

डॉ० अनुग्रह नारायण सिह ने सुधाशु जी की देव-दुर्लभ निस्पृहता और त्याग शीलता का जिक्र 'मेरे सस्मरण" नामक ग्रथ मे यों किया है—"सार्वजनिक निर्वाचन (१९५२) के पश्चात् मन्त्रिमण्डल के निर्माण का झमेला चला। इस बार हमारे कुछ हिमायतियो ने मुझे भी तनने को उत्प्रेरित किया। उधर श्री बाबू के समर्थको ने उन्हे भी झुकने नही दिया। फलत सर्वसम्मति से नेता का चुनाव सम्भव नही हो सका, जो न तो मै चाहता था, न श्री बाबू चहाते थे। मामला दिल्ली तक बढा। राज्य काग्रेस-अध्यक्ष श्री सुधाशु की बुलाहट हुई। प्रधान मन्त्री नेहरू ने उनसे आजीज मे आकर कह दिया—यदि दोनो नेता नही मिल सकते, तो जाइये, आपही नेता हो जाइए और मन्त्रि-मण्डल का गठन कर लीजिए। लौटने के बाद सुधाशु जी श्री बाबू से मिले और दिल्ली का दास्तान कह सुनाया। श्री बाबू ने उन्हे राय दी कि आप मुझे नेता मान ले, तो आपको शिक्षा मन्त्री का पद दे दिया जा सकता है। मगर, सुधाशु जी सहमत नही हुए। श्री बाबू से मिलने के बाद वे मुझसे मिले। मैंने उन्हे सलाह दी कि आप स्वय नेता हो जाये, तो मुझे कोई आपत्ति नही होगी और जब उन्होने अपनी हिचक दिखाई तब मैंने उन्हे यहाँ तक कह दिया कि डरने की कोई बात नही है इसमे। मैं वित्त मन्त्री के रूप मे आपको पूरी सहायता पहुँचाता रहूँगा।" लेकिन सुधाशु जी ने इस अवसर से लाभ नही उठाया, क्योकि वे अवसरवादी नेता नही है। उन्होने प्रयत्न कर दोनो नेताओ मे मेल कराया और

श्री बाबू को नेता बनवाया।

१९५० ई० मे गया मे बिहार हिन्दी साहित्य सम्मेलन का जो अधिवेशन हुआ था उसका सभापतित्व सुधाशु जी ने ही किया था और उसका सचालन उन्होंने सफलता पूर्वक किया था। वे साहित्य-मन्दिर मे ही समादृत नही होते, राजनीति के क्षेत्र मे भी उनकी धाक है। फरवरी, १९५६ ई० की बात है। बहुत दिनो से यह तय नही हो रहा था कि गगा पर पुल पटने मे बने या मोकामा मे। बगाल वाले यह चाहने लगे थे कि पुल बगाल के फरक्का मे गगा नदी पर बने। यह बात जब बिहार वालो को ज्ञात हुई तब सुधाशु की अध्यक्षता मे एक सभा हुई और यह तय हुआ कि पुल मोकामा मे ही बने। यदि सुधाशु जी इस कार्य में अपना हाथ नही डालते तो मोकामा मे राजेन्द्र-पुल न बनकर कही और बना होता।

२३ जून, १९४७ ई० मे मै दरभगा सर्किट हाउस मे डॉ० अनुग्रह नारायण सिह के साथ ठहरा हुआ था। दरभगा जिला वालो ने उनके अभिनन्दन-समारोह का आयोजन किया था। बाबू साहब जब आराम करके उठे तब मैं पटेल साहब के कमरे मे सोया हुआ था। उन्होने मुझे बुलाया। जलपान, चाय आदि के बाद बातचीत के सिलसिले मे विनोदा बाबू पटेल साहब और सुधाशु जी की चर्चा हुई। सुधाशु जी के बडप्पन का परिचय देते हुए बाबू साहब ने मुझसे सारी बातें कही। सरदार पटेल ने सुधाशु जी की जो तारीफ की थी, उसे मैंने बाबू साहब के मुख से ही सुना। मैं सुधाशु जी को बराबर कहा करता हूँ कि आप क्या है, इसे आप खुद नही जानते, जैसे,

"अमिय न जानता है अपनी अनूपता को,
जानता उसे जो पी के पाता मोद घोर है।
सुजन न जानते हैं, जानता है मिलनहार,
उनकी सुजनता का आनन्द अथोर है।
वारिद न जानता है अपनी महानता को,
जान उसे नाचता सदैव मजु मोर है।
कैसे ठगे जाते हैं अनन्यरूपता पै लोग,
चन्द्र जानता न इसे जानता चकोर है।"

३० मार्च, १९५८ ई० मे मै सुधाशु जी के डेरे पर था। शाम को हजारीप्रसाद द्विवेदी, दिनकर जी और रामवृक्ष बेनीपुरी जी भी वहाँ आये। द्विवेदी जी ने बात की बात मे एक श्लोक रचा और सुनाया—

"असहृद्वा सुहृद्वापि न सुहृत् समतामियात्।
यस्य सर्वस्वहृत्प्रेममुषणदप्युपकारम्॥
जयति कपिलः सुकपि. श्रयतितरु रामवृक्षाख्य।
दिनकरमादाय मुखे हस्ते धृत्वा सुधाशु च॥

सुहृदो भवने यस्य समागच्छन्ति नित्यश ।
चित्ते च तस्य सौख्यस्य न किंचित्प्रतिम सुखम् ।।"

अर्थात् मेरे लिए शत्रु या मित्र कोई हो तो सुहृद की बराबरी नही कर सका है जिनके सर्वस्व हृदय का प्रेम गर्म रहने पर भी उपकार करने वाला है। सुन्दर कवि रूपी कपिल की जय हो जो रामवृक्ष का आश्रय करते है और जो दिनकर को मुह मे लेकर तथा सुधाशु को हाथ मे धारण कर शोभते हैं। जिनके घर मे नित्य ही सुहृद आते हैं, उसके चित्त के सुख के बराबर और कोई सुख नही होता।

इस श्लोक को सुनकर हम लोगो को जो आनन्द प्राप्त हुआ उसे मैं अपने शब्दो मे नही बाँध सकता। इस प्रकार सुधाशु जी के अनेक सहवास अन्य आनन्द को मैं भोगता रहा हूँ। १० जून, १९५९ ई० की बात है। पलामू के चेनपुर इस्टेट वाले सुधाशु जी के यहाँ पहुँचे थे, सुधाशु जी के बडे पुत्र चि० पद्मनारायण के विवाह के सिलसिले मे। मैं सुधाशु जी के आदेश से इस अवसर पर उपस्थित था। शादी की बाते हुई। सुधाशु जी ने कहा—"मुझे आपकी कोई चीज नही चाहिए। बरात मे जो लोग आयें, उनके रहने-सहने, खाने-पीने का प्रबन्ध हो, उनके आराम की उचित व्यवस्था हो, इसके अतिरिक्ति मैं और कुछ कहना नही चाहता। उनकी बाते सुनकर वे लोग दग रह गये। हिन्दू समाज मे विवाह की जो रीति है वह हृदयो का सम्मिलन नही, एक सौदेबाजी है। वे सोचते थे कि सुधाशु जी अपने योग्य पुत्र की अच्छी-खासी कीमत चाहेगे, लेकिन उनकी नि स्पृहता और उदारता को देखकर वे उनके सामने नतमस्तक हो गये।

बिहार राष्ट्रभाषा परिषद् नामक सस्था सुधाशु जी की देन है। उनकी प्रेरणा से ही बिहार सरकार ने इसकी स्थापना की थी। पण्डित मोहनलाल महतो 'वियोगी' ने जून, १९६५ ई० की मासिक 'नयी धारा' मे लिखा है—"सुधाशु जी के प्रभाव ने अपना काम किया। सरकार ने यह स्वीकार कर लिया कि यहाँ भी एक प्रयाग की हिन्दुस्तानी अकादमी जैसी कोई सस्था हो और वह आज बिहार राष्ट्रभाषा परिषद् के रूप मे हमारे सामने है।"

१९५९ ई० में सुधाशु जी गया मे बिहार प्रान्तीय हिन्दी साहित्य सम्मेलन के अध्यक्ष थे। वे अपना भाषण समाप्त कर ज्यो ही बैठे, डॉ० "महेश" ने मेरे हाथ मे एक पुर्जा दिया जिसमे लिखा हुआ था—"केदार बाबू हमारे प्रान्त के बहुत बडे विद्वान हैं। इनको भी भाषण करने के लिए समय मिलना चाहिए।" मैंने पुर्जा सुधाशु जी के हाथों मे दिया। वे पुर्जा पढकर मुस्कुराने लगे। उनकी मुस्कुराहट का रहस्य मेरी समझ मे नही आया। इतने मे ही केदार बाबू अग्रेजी मे भाषण देने लगे। उनकी आवाज ज्यों ही मेरे कानो मे पहुँची, मेरी नजर उनके चेहरे पर पहुँची। तब सुधाशु जी की मुस्कुराहट का अर्थ मेरी समझ मे आया। केदार बाबू हिन्दी, सस्कृत और अग्रेजी में

धारा प्रवाह भाषण करते हैं। गया से चलते समय सुधाशु जी ने नयी धोती मगवायी और उन्हे पहनायी। मैंने अनुभव किया कि सुधांशु जी भारत के जीवित शहीदों की पूजा मनसा-वाचा ही नही करते वरन् कर्मणा भी।

सुधाशु जी के घर मे ऐसा अनुभव करता हूँ कि मैं उनके परिवार का सदस्य हूँ। २४ मार्च, १९६० ई० को भोजन की सारी सामग्री पद्मनारायण की पत्नी ने तैयार की थी और अपने हाथों से परोस कर मुझे और प्रभुनाथ सिंह को भोजन कराया था। मैने महसूस किया था कि सुधाशु जी की पुत्र-वधू लक्ष्मी की लाडली ही नही है वरन् कुशल गृहिणी तथा पाक् विद्या विशारदा भी।

२४ अगस्त, १९६१ ई० मे सुधाशु जी ने भारत सेवक समाज टेक्निकल इस्टिट्यूट, बरौनी का निरीक्षण किया। शाम को मेरे सभापतित्व मे एक सभा हुई जिस मे सुधाशु जी ने वर्तमान युग मे टेक्नालाजी के महत्त्व पर भाषण किया। मैंने महसूस किया कि वे सर्वज्ञ है और जिस धारा प्रवाह रूप मे साहित्यिक विषयों पर भाषण कर सकते हैं उसी धारा प्रवाह रूप मे वैज्ञानिक विषयो पर भी। रात मे हम लोगो ने श्री विष्णुदेव नारायण अग्रवाल का आतिथ्य स्वीकार किया। इसके उपरान्त सुधाशु जी पूर्णियाँ चले गये।

१९६२ ई० मे अखिल भारत वर्षीय काग्रेस का अधिवेशन पटने मे हुआ था। इस अवसर सुधाशु जी ने काग्रेस अभिज्ञान-ग्रथ का सम्पादन किया था और अधिवेशन को सफल बनाने मे सिर-तोड परिश्रम किया था। उन्होने अपने सरल-सौम्य व्यक्तित्व, अपनी गभीर विद्वत्ता और अपनी सुदीर्घ साधना के बल पर जो सम्मान अर्जित किया है, वह कम लोगों को नसीब होगा। दो वर्षो तक वे बिहार काग्रेस समिति के अध्यक्ष पद को सुशोभित करते रहे हैं। १९६२ ई० मे भागलपुर विश्वविद्यालय ने उन्हे डी० लिट्० की उपाधि से सम्मानित किया और अपनी प्रतिष्ठा बढायी। बिहार के भूतपूर्व राज्यपाल डॉ० जाकिर हुसैन उन्हे भागलपुर विश्वविद्यालय का कुलपति बनाना चाहते थे और उन्होने सुधाशु जी को राजी भी कर लिया था। पर इसी बीच उन पर बिहार विधान-सभा की अध्यक्षता स्वीकार करने के लिए दबाव पडने लगा और सुधाशु जी ने इस आग्रह को अपनी सहज उदारतावश स्वीकार कर लिया। बिहार विधान-सभा के इतिहास मे यह एक अभूतपूर्व बात है कि सुधांशु जी का निर्वाचन निर्विरोध हुआ और उनके अध्यक्ष चुने जाने से केवल काग्रेसी सदस्यो को ही प्रसन्नता नही हुई बल्कि विरोधी दल के सदस्यो ने उन्हे दिल खोल कर बधाई दी।

सुधाशु जी के चरित्र की यह विशेषता है कि अभिमान उन्हे छू तक नही गया है। वे चाहे जिस पद पर हो, उनके व्यक्तित्व में सदैव एक जैसी सरलता मिलेगी और उनका द्वार हर किसी के लिए खुला रहेगा। विशेष रूप से वर्तमान समय में उन्होंने राष्ट्रभाषा हिन्दी का पक्ष जितनी सबलता से ग्रहण किया है, उतनी दृढता

से हिन्दी की वकालत करने वाला शासन मे मुश्किल से कोई मिलेगा। देश की एकता एव अखण्डता के लिए दिल्ली मे जो राजभाषा सम्मेलन हुआ था उसकी अध्यक्षता करते हुए सुधाशु जी ने तालियो की गडगडाहट के बीच उद्घोषित किया था—

"यदि हिन्दी भाषी जनता, हिन्दी की रक्षा के लिए अभी आगे न बढेगी तो हिन्दी भाषियो का भविष्य सदैव के लिए अन्धकारमय हो जायेगा। अतः अब समय आ गया है कि हिन्दी भाषी जनता अपने दलगत मतभेदो को भूलकर सभी दलो का सहयोग लेकर, हिन्दी भाषी राज्यो मे अपनी राजभाषा हिन्दी की रक्षा के लिए तैयार हो जाये। आज यह परम आवश्यक है कि हिन्दी भाषी राज्यो के सभी जिलो मे शीघ्र ही राजभापा—रक्षा—समिति का गठन करके एक लाख स्वयसेवक भर्त्ती किये जायें। यदि सत बिनोवा भावे को दिये गये बचनो का पालन केन्द्रीय नेतृत्व नही करता और किसी भी छल से वह हिन्दी भाषी राज्यो पर अग्रेजी को लादने का प्रयत्न करता है, तो वैसी परिस्थिति मे राष्ट्रपिता बापू के आदर्शो और आदेशो के अनुसार हिन्दीभाषी राज्यो मे राष्ट्रभाषा हिन्दी की रक्षा के लिए सत्याग्रह अभियान का चलाना परम आवश्यक हो जायेगा।" इसमे सन्देह नही है कि जिस आवाज से हिन्दी का पक्ष मजबूत होता है उस आवाज के प्रथम उद्घोषक सुधाशु जी है। वे हिन्दी की रक्षा की खातिर अपना तन-मन-धन-जीवन सहर्ष बलिदान कर सकते हैं और बडी-से-बडी प्रतिष्ठा पर लात मार सकते हैं। इस अर्थ मे उनकी तुलना महाराणा प्रताप से की जा सकता है। जिस प्रकार महाराणा प्रताप भारत मे स्वतंत्रता की मशाल जलाकर वन-वन की खाक छानता था लेकिन स्वाभिमान को ताक पर रख कर घी की रोटियाँ खाना पसन्द नही करता था, उसी प्रकार सुधाशु जी हिन्दी की रक्षा की खातिर अपने पदो का त्याग कर सकते है लेकिन हिन्दी के हित का बलिदान नही कर सकते। राजर्षि टडन का अटूट हिन्दी प्रेम यदि किसी व्यक्ति मे परिलक्षित होता है, तो वह व्यक्ति सुधाशु जी हैं। इस अर्थ मे वे देश के गौरव है। बिहार हिन्दी साहित्य-सम्मेलन का उन्तीसवाँ अधिवेशन २० अक्तूबर १९६२ ई० को फारबिसगज (पूर्णियाँ) मे उनकी अध्यक्षता मे सम्पन्न हुआ था। १९ अक्तूबर की रात मे गाडी से मैंने फारबिसगज के लिए प्रस्थान किया। डॉ० दिनकर और डॉ० सुधाशु हवाई जहाज से पहले ही पूर्णियाँ पहुँच गये थे। २० अक्तूबर को मैं गाडी मे बैठा था और दोनों व्यक्तियो की प्रतीक्षा कर रहा था। वे लोग गाडी खलने के समय पहुँचे और जिस डब्बे मे मैं था उसी मे आकर बैठे। श्री जनार्दन-प्रसाद झा "द्विज" भी उन्ही के साथ आये। जिस बर्थ पर मैं था उसके एक ओर थे डॉ० दिनकर और दूसरी ओर थे डॉ० सुधाशु। दोनो साहित्य महारथियो से बातें करने मे ऐसा प्रतीत हो रहा था मानो ज्ञान और विवेक की सम्मिलित धाराओं मे मैं नहा रहा होऊँ। पूर्णिया के बाद हर एक स्टेशन पर हजारो की भीड़ थी, फूल, माला, अक्षत और चन्दन के साथ। जिस प्रकार शिवजी के मस्तक पर फूल के साथ

पत्ते भी चढ जाते हैं और गधहीन होकर भी गौरव पा लेते हैं उसी प्रकार दो महारथियों के बीच बैठने का एक लाभ यह हुआ कि मेरा गला भी फूल मालाओं से पूर्ण हो गया। १९३५ की १३ अप्रैल को जो छपरा मे साहित्य सम्मेलन हुआ था, उसमे जो जनता की भीड देखने को मिली वैसी भीड बहुत दिनो के बाद आज देखने को मिली। इस तरह की भीड बहुत कम साहित्य-सम्मेलनो मे मैने देखी। हालाँकि बहुत सम्मेलनो मे मैं गया हू। ऐसा प्रतीत हो रहा था मानो जन-सागर सुधाशु को देखकर आन्दोलित, उद्वेलित हो रहा हो और दिनकर दर्शन के लिए आत्म मथन कर रहा हो। तीन बजे खुला अधिवेशन आरभ हुआ जिसका उद्‌घाटन दिनकर जी ने किया था। इसके पश्चात् सुधांशु जी ने भाषण किया। डॉ० शभुनाथ सिंह, श्री काशीनाथ उपाध्याय "भ्रमर" "बेधडक" श्री राधाकृष्ण चौधरी, डॉ० श्यामनन्दन किशोर आदि विद्वानों ने भी सम्मेलन मे भाग लिया था। डॉ० सुधाशु और डॉ० दिनकर के सम्मान मे वहाँ कई एक सज्जनो ने प्रीतिभोज तथा जलपान का प्रबन्ध किया जिसमे सभी साहित्यकार सम्मिलित हुए। २१ अक्तूबर, १९६२ को ३ बजे खुला अधिवेशन आरम्भ हुआ। आगत अतिथि के बाद सुधाशु जी ने दिनकर को और मुझे कविताएँ सुनाने का आग्रह किया—हम दोनो ने कवितायें सुनाई रात्रि मे कवि सम्मेलन हुआ। इसके बाद सम्मेलन समाप्त हो गया। दूसरे दिन हम लोगो ने ३७ अप गाड़ी से फारबिसगज से प्रस्थान किया—वहाँ की जनता मे साहित्य के प्रति काफी उत्साह देखा। विदाई के समय मे फूल-माला के साथ वहाँ की जनता वैसे ही उमड पडी जैसे स्वागत के समय। गाडी २ बजे वहाँ से चली। पूर्णियाँ मे सुधाँशु जी और दिनकर जी उतर गये, मुझे भी रुकने के लिए कहा गया लेकिन अपने प्रोग्राम के अनुसार श्री राधाकृष्ण चौधरी, एम० ए० के साथ–मैं यह सोचते हुए सुहृदनगर लौटा कि जनता केवल राजनीतिक नेताओ की ही आरती नही उतारती वरन् साहित्यकारो की भी।

१९४२ के आन्दोलन मे हजारीबाग जेल मे डॉ० सुधाशु ने रस-तत्व की वैज्ञानिक समीक्षा करते हुए छह सात सौ पृष्ठो का एक ग्रथ काव्य योग लिखा था, जो कई एक कारणो से अब तक वह अप्रकाशित है। जब यह ग्रथ प्रकाशित होगा तब उनके साहित्यिक सुयश मे और चार चाँद लग जायेंगे।

डॉ० रामधारी सिंह "दिनकर"

सन् १९२८ ई० की बात है। बेगूसराय के बगल मे उलाव नामक इस्टेट मे सुधार-समिति नामक सस्था का, जिसके अन्तर्गत एक पुस्तकालय और एक दीन-सहायक औषधालय भी था, वार्षिकोत्सव मनाया जाने वाला था। श्री शालिग्राम सिंह (बेगूसराय के प्रसिद्ध वकील) और मैंने पण्डित मदन मोहन मालवीय जी को उत्सव का सभापतित्व करने की प्रार्थना की थी। उन्होने अपनी स्वीकृति दे दी लेकिन निश्चित तिथि को कही दूसरी जगह जाने का उनका कार्यक्रम बन गया। उन्होने पत्र द्वारा अपनी असमर्थता व्यक्ति की और जगत बाबू को (भूतपूर्व मत्री, बिहार सरकार) उलाव आने को पत्र लिख दिया। जगत बाबू भी निश्चित तिथि को नही आ सके। उन्होने साप्ताहिक पत्र "महावीर" के सम्पादक श्री विश्वनाथ प्रसाद वर्मा का सभापतित्व करने को सहमत किया। विश्वनाथ बाबू निश्चित तिथि को पधारे। बडी धूमधाम से उत्सव मनाया गया। श्री रामधारी सिंह "दिनकर" ने उस साल मैट्रिकुलेशन की परीक्षा दी थी। वे "महावीर" मे लिखते थे। वे अपने गाँव सिमरिया से, जो उलाव से चार मील पश्चिम मे है, विश्वनाथ बाबू से मिलने आये थे। मैंने उसी समय "दिनकर" जी को पहले-पहल देखा। पहली मुलाकात में ही वे मुझसे बहुत घुल मिल गये। उनके साथ ग्रामीण श्री शिवकुमार शर्मा भी थे। तब तक "दिनकर" जी शहरी हवा के स्पर्श से दूर थे और गृहस्थ के भोले-भाले तथा सीधे-सादे किशोर लड़के की तरह दीखते थे। उनका चेहरा भव्य था। सिर पर छोटे-छोटे बाल थे। उनके मुख-मण्डल पर तेजस्विता, ओजस्विता और वर्चस्विता की त्रिवेणी प्रवाहित होती थी। कालान्तर मे उनसे मेरी इतनी घनिष्ठता बढी कि प्रतीत होता था कि हम लोग एक परिवार के हो।

उनका जन्म ३० सितम्बर, १९०८ ई० (आश्विन मास, नवरात्र, बुधवार) को रात्रि मे गगा नदी के तट पर अवस्थित सिमरिया (जिला मुगेर, बिहार) मे हुआ था। उनके पिता का नाम श्री रविनाथ सिंह था। वे अत्यन्त साधारण स्थिति के किसान थे। उनका स्वर्गवास उस समय हो गया था जब "दिनकर" जी केवल दो वर्षो के अबोध शिशु थे। इस प्रकार वे अपने शैशवकाल मे ही अपने पिता के लाड-प्यार से वचित हो गये। उनके लालन-पालन और शिक्षा-दीक्षा का प्रबन्ध उनकी विधवा माता की देखरेख

डॉ० रामधारी सिंह "दिनकर"

मे हुआ। "दिनकर" जी ने प्रारभिक शिक्षा अपने गाँव में प्राप्त की। मैट्रिकुलेशन की परीक्षा उन्होने पटना जिले के अन्तर्गत मोकामाघाट हाई स्कूल से पास की। इसके बाद वे पटना कालेज मे पढने लगे। वे भिखनापहाडी मुहल्ले के एक छात्रावास मे रहते थे। जब वे नौवें वर्ग मे पढते थे तब उन्होने "प्रणभग" नामक एक पुस्तक लिखी थी। इसके बहुत दिन पूर्व उन्होने एक और पुस्तक लिखी थी—"वीर बाला"। मैंने दोनो पुस्तके उनसे ले ली। मैंने उन पुस्तको को आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, श्री लाला भगवान-दीन, पण्डित "हरिऔध", श्री जयशकर "प्रसाद" और जौहरी जी को दिखलाया था और उनसे "दिनकर" की प्रतिभा का जिक्र किया था। बनारस मे "सुधाशु" जी से श्री दिनकर की प्रतिभा की चर्चा की थी। उन दिनो सुधाशु जी वहाँ एम०ए० के छात्र थे। मैंने "प्रणभग" नामक पुस्तक ज्ञान मण्डल, काशी मे छपवायी थी जिसका प्रूफ सम्पादकाचार्य श्री विष्णुराव पराडकर जी देखते थे। प्रकाशक के रूप मे सुधार-समिति, उलाव का नाम छपा। भूमिका हिन्दी के प्रसिद्ध साहित्यकार श्री विश्वमोहन कुमार सिंह ने लिखी थी। जब 'प्रणभग" प्रकाशित हुई तब (१९२९ ई०) उसकी एक प्रति मैंने आचार्य रामचन्द्र-शुक्ल को समर्पित की थी। शुक्ल जी ने "प्रणभग" का उल्लेख 'हिन्दी साहित्य का इतिहास" नामक ग्रथ मे किया था। 'प्रणभग" की रचना उसी छन्द मे की गयी थी जिस छन्द मे महाकवि श्री मैथिलीशरण गुप्त ने "जयद्रथ वध" नामक पुस्तक रची थी। आचार्य पण्डित रामचन्द्र शुक्ल की दृष्टि अत्यन्त सूक्ष्म और पैनी थी। वे हिन्दी के प्रथम इतिहासकार थे। उनका अध्ययन अपरिमेय था। उदीयमान कवियो की प्रतिभा की उन्हे अचूक परख थी। बनारस मे उनके निवास स्थान पर मैं अक्सर जाया करता था। उनको मैंने 'दिनकर" की "वीर बाला" नामक अप्रकाशित पुस्तक और अनेक प्रकाशित रचनाएँ दिखलायी थी। बहुत देर उन्हे उलटने-पुलटने के बाद उन्होने कहा था—"दिनकर की कविताओ मे जहाँ एक ओर मानवतावादी स्वर है, वहाँ दूसरी ओर समाज को बदलने की भी शक्ति है। कवि समाज का जहाँ द्रष्टा होता है वहाँ स्रष्टा भी होता है लेकिन स्रष्टा के कर्त्तव्य का पालन बहुत कम कवि करते हैं। मुझे प्रसन्नता है कि "दिनकर" ने इसका पालन आरभ से ही किया है।"

"दिनकर" जी की पहली कविता १९२४ ई० या १९२५ ई० मे जबलपुर से प्रकाशित होने वाले "छात्र-सहोदर" नामक मासिक पत्र मे प्रकाशित हुई थी जिसका सम्पादन श्री नरसिंह दास करते थे। उनके हृदय मे देश प्रेम की आग जलती थी। देश मे जब बारदोली-सत्याग्रह का बिगुल बजा था तब उन्होंने "बारदोली सन्देश" नामक राष्ट्रीय गीतों का प्रणयन किया था। "बारदोली-सन्देश" का प्रकाशन १९२९ ई० में हुआ था। मैट्रिकुलेशन परीक्षा पास करने के पूर्व "वीर बाला" और "मेघनाद वध" नामक दो खण्ड काव्यों की रचना का श्रीगणेश किया था, लेकिन दोनों खण्ड काव्य अधूरे रहे। अब उनकी पाण्डलिपियाँ अनुपलब्ध हैं। "प्रणभग" की एक प्रति उनके पास सुरक्षित है।

उनका कवि-जीवन वास्तविक रूप मे १६३० ई० से आरभ हुआ। तब उनकी कविताए पत्र-पत्रिकाओ मे अधिक सख्या मे प्रकाशित होने लगी। १६३२ ई० मे वे पटना कालेज से बी०ए० हुए। १६३३ ई० मे वे बरबीघा (मुगेर) हाई स्कूल के प्रधानाध्यापक हुए। उस समय ही उन्होने "हिमालय" शीर्षक कविता लिखी थी जिसने उनकी प्रसिद्धि को प्रान्त की सीमा का अतिक्रमण करा दिया। इस कविता ने उनके यश मे चार चाँद लगा दिये। १६३५ ई० मे उनका "रेणुका" नामक काव्य-सकलन प्रकाशित हुआ और वे हिन्दी के उदीयमान कवि के रूप मे सम्पूर्ण देश मे प्रसिद्ध हो गये। इसके पूर्व ही १६३४ ई० मे उन्होने बिहार सरकार के अधीन सब-रजिस्ट्रारी मजूर की थी, क्योकि गरीब परिवार ने पेट काटकर उनकी शिक्षा-दीक्षा की व्यवस्था की थी। इसलिए उनका प्रथम कर्तव्य यह था कि वे अपनी अजीविका के द्वारा अपने परिवार का भरण-पोषण करे। चूकि उन्होने दरिद्रता की तीव्र अनुभूतियाँ प्राप्त की थी, इसलिए वे अपने जीवन के प्रभाव मे ही जमीदारी-प्रथा के विरोधी हो गये थे और धनतन्त्र के प्रति अपनी कविताओ मे आक्रोश व्यक्त करने लगे थे। १६३८ ई० मे "विपथगा" शीर्षक कविता मे उन्होने लिखा था—

श्वानो को मिलते दूध-वस्त्र,
    भूखे बालक अकुलाते हैं,
माँकी हड्डीसे चिपक, ठिठुर,
    जाडो की रात बिताते हैं,
युवती के लज्जा-वसन बेच,
    जब ब्याज चुकाये जाते है,
मालिक जब तेल-फुलेलो पर,
    पानी-सा द्रव्य बहाते है,
पापी महलो का अहकार,
    देता मुझको तब आमत्रण।
झन-झन-झन-झन-झन झनन झनन।"

१६३५ ई० मे उन्होने छपरे मे बिहार प्रान्तीय साहित्य सम्मेलन के साथ हुए कवि-सम्मेलन का सभापतित्व किया था जिसका स्वागत मत्री मैं था। उन्होने सर्वप्रथम मुझे लिखा था—

दलसिंग सराय (दरभगा)
२-४-३५

प्रिय कपिल,

कल रात में तुम्हारा तार मिला। द्विज जी क्यो नही आ रहे हैं? क्या उन्हे अपने प्रान्त से जरा भी प्रेम नही है? अगर वह अस्वस्थ हों, तब तो कोई बात नहीं, यदि यों ही टाल-मटोल कर रहे हों, तो उन्हे किसी तरह भी मत छोड़ो। उन्हे अवश्य

सभापति बनाना।

मेरे सम्बन्ध मे कई बातें है। मुझे सरकार से मजूरी लेनी पडेगी। यह पहली बाधा है। दूसरे, तुम स्वागत-मत्री हो और यह चुनाव, चुनाव के आरोप से मुक्त नही हो सकता। इसके सिवा मैं उम्र और साहित्य-सेवा के लिहाज से भी सभापति बनना नही चाहता। मुझे दो-चार वर्ष तक कूदने-फाँदने दो। मेरे सभापतित्व मे सम्मेलन को नियत्रणो के अन्दर रहना पडेगा अथवा मुझ पर ही विपत्ति आयेगी। अगर तुम्हे कोई सभापति नही मिले तो तार दो, मैं सरकार से छुट्टी लेने की कोशिश करूँगा, लेकिन हार्दिक प्रार्थना है कि मुझे छोड दो। द्विज अगर तैयार नही हो तो वियोगी जी को लिखो, वह नही हो तो सुधाशु जी या प्रोफेसर मनोरजन को पकडो। आशा है, तुम लोग मेरी इस प्रार्थना पर विचार करोगे और मुझे दभी समझने की निष्ठुरता नही दिखलाओगे।

तुम्हारा
दिनकर

इस पत्र-रूपी दर्पण मे उनका निश्छल हृदय प्रतिबिम्बित है। वे अपने से वयोवृद्ध व्यक्तियो का सम्मान करना चाहते हैं लेकिन मित्रो के आग्रह को कठोरतापूर्वक टाल नही सकते। वे निरभिमान हैं। मित्रो के आग्रह का पालन कर वे १२ अप्रैल, ३५ ई० को छपरा पधारे। दूसरे दिन सध्या सात बजे से उनके सभापतित्व मे कवि-सम्मेलन आरभ हुआ और सारी रात कवि-सम्मेलन चलता रहा। आज तक शायद ही कोई कवि सम्मेलन ऐसा हुआ होगा, जो सात बजे सध्या से आरम्भ होकर सात बजे भोर तक अविराम चलता रहे और तारीफ यह कि अन्त तक उतनी ही भीड बनी रही जितनी शुरू मे थी।

वस्तुत "दिनकर" का हिन्दी-काव्य मे जो आविर्भाव हुआ वह एक महती घटना है क्योकि उनके पूर्व हिन्दी-जनता के हृदय मे हिन्दी-कविता के लिए जैसा उत्साह था वह उत्साहवर्धक नही था। लेकिन "दिनकर" की कविताओ ने काव्य-रसिक जनता को अभूतपूर्व रूप मे जागृत किया। सन् १९३५ ई० मे "विशालभारत' नामक मासिक पत्र के विख्यात सम्पादक पण्डित श्री बनारसीदास चतुर्वेदी ने पटने मे यह उद्घोषणा की थी कि यदि "दिनकर" जी अफ्रीका मे जन्मे होते तो उनसे मिलने को मैं अफ्रीका भी चला जाता। "दिनकर' जी की "हिमालय", "नयी दिल्ली", "ताण्डव", "दिगम्बर" "हाहाकार", "विपथगा", "अनल-किरीट" आदि कविताएँ तत्कालीन जन-मानस को बेहद मथ डालती थी। इन कविताओ को सुनकर बडे-बडे राष्ट्रीय नेता सभाओ मे फूट-फूटकर रोने लगे थे और बूढे भी सभाओ मे खडे हो जाते थे। मुझे स्मरण है, बिहार प्रान्तीय हिन्दी साहित्य-सम्मेलन के अवसर पर मैं "दिनकर" जी को राजेन्द्र बाबू के पास ले गया था। वही डॉ० महमूद साहब बैठे थे। वहाँ लोग घटो "दिनकर" से कविताएँ सुनते रहे। राजेन्द्र बाबू ने "नयी दिल्ली" कविता दो-तीन बार पढवाकर सुनी। मैने देखा, उस कविता को सुनकर राजेन्द्र बाबू की आँखो मे आँसू भर आते थे। पण्डित

जनार्दन प्रसाद झा "द्विज" ने अपनी "चरित्र रेखा" नामक पुस्तक मे ठीक ही लिखा था—"ऐसे बहुत-से पाठक हैं जो "दिनकर" की कविताएँ पढकर और कुछ पढना आवश्यक नही समझते।" उनका हृदय हिन्दी-काव्य की उस धारा से हुआ जो भारतेन्दु हरिश्चन्द्र, मैथिलीशरण गुप्त, रामनरेश त्रिपाठी, सुभद्राकुमारी चौहान, माखनलाल-चतुर्वेदी और बालकृष्ण शर्मा "नवीन" से उद्भूत हुई थी। इसमे सदेह नही कि "दिनकर" के पूर्व हिन्दी मे विपुल परिमाण मे राष्ट्रीय कविताएँ लिखी गयी थी। लेकिन बलिदानी भारत की वीरता, स्वाभिमान, अधीरता और आक्रोश की अभिव्यक्ति जितने सबल रूप मे "दिनकर" ने की उतने सबल रूप मे किसी ने नही।

'रेणुका" का स्वागत हिन्दी-ससार ने दिल खोलकर किया। "विशाल-भारत" नामक मासिक पत्र ने अपने सम्पादकीय लेख मे लिखा—"रेणुका के प्रकाशन पर हिन्दी वालो को उत्सव मनाना चाहिए।" मासिक पत्रिका "माधुरी" मे प्रकाशित एक लेख मे रेणुका की गणना हिन्दी की सौ सर्वश्रेष्ठ पुस्तको मे की गयी। १९३९ ई० मे "दिनकर' जी की राष्ट्रीय कविताओ का सकलन "हुकार" प्रकाशित हुआ। 'हुकार" भारतीय भाषाओ मे उल्लेख्य काव्य-पुस्तक है। १९४० ई० मे उनकी "रसवन्ती" काव्य पुस्तक प्रकाशित हुई। इस पुस्तक मे उनकी सरस कविताओ का सकलन है। इसके उपरात "द्वन्द्वगीत" (रबाइयाँ), "कुरुक्षेत्र", (महाकाव्य), "सामधेनी", "बापू" "इतिहास के आँसू", "धूप और धुआँ', 'रश्मिरथी", दिल्ली", "नीम के पत्ते", "नील कुसुम", "चक्रवाल", "कविश्री", 'सीपी और शख", "नये सुभाषित और उर्वशी" (महा-काव्य) प्रकाशित हुए। उनकी गद्य-पुस्तको की सूची भी कम लम्बी नही है—'मिट्टी की ओर'' (आलोचना), 'अर्धनारीश्वर" (निबध-सग्रह), "रेती के फूल", (निबध-सग्रह), "हमारी सास्कृतिक एकता" (सस्कृति), "राष्ट्रभाषा और राष्ट्रीय एकता" (सस्कृति), "सस्कृति के चार अध्याय" (सस्कृति), "उजली आग" (कथा और गद्य-काव्य), "देश-विदेश" (यात्रा-विवरण), "काव्य की भूमिका" (आलोचना), "पत, "प्रसाद और मैथिलीशरण" (आलोचना), 'वेणुवन' (निबध-सग्रह) 'धर्म, नैतिकता और विज्ञान" (निबध-सग्रह), "वट-पीपल" (सस्मरण और निबध), और 'लोक देव नेहरू", (सस्मरण और निबध)। बाल-साहित्य मे भी उनकी देन नगण्य नही है। इस प्रकार उन्होंने साहित्य के अनेक अगो की श्रीवृद्धि की है। 'कुरुक्षेत्र'' का अनुवाद कन्नड़ भाषा मे श्री कुमुद प्रिय ने किया है और तेलुगू भाषा मे श्री रामचन्द्र राव ने। उनकी कुछ कविताओ का अनुवाद रूसी भाषा मे हुआ है और अन्यान्य भाषाओ मे भी। उनके साहित्य के सम्बन्ध मे अनेक पुस्तके प्रकाशित हो चुकी है जिनमे श्री मुरलीधर श्रीवास्तव की "दिनकर की काव्य-साधना", पण्डित श्री शिवचन्द्र शर्मा की "दिनकर और उनकी काव्य-प्रवृत्तिया" श्री कपिल की "दिनकर और उनकी काव्य कृतिया", नेमिचन्द्र जैन "भावुक" की 'दिनकर का काव्य-साधना", श्री कामेश्वर शर्मा की "दिग्भ्रमित राष्ट्रकवि", आदि उल्लेख्य हैं।

उनके सम्बन्ध मे पत्र-पत्रिकाओ मे जो निबन्ध प्रकाशित हुए हैं उनमे श्री कामेश्वर शर्मा "कमल", श्री भगवतीचरण वर्मा, श्री गोपालप्रसाद व्यास, श्री जगदीशचन्द्र माथुर, श्रीमती कमला रत्नम्, श्रीमती माया गुप्त, श्री लक्ष्मीनारायण शर्मा "मुकुर", श्री महेन्द्र चतुर्वेदी आदि के निबन्ध उल्लेख्य हैं। श्री लक्ष्मीनारायण सुधाशु ने "जीवन के तत्व और काव्य के सिद्धान्त" नामक ग्रथ मे, श्री रामनरेश त्रिपाठी ने 'कविता कौमुदी (दूसरा भाग) नामक ग्रथ मे, पण्डित नन्ददुलारे वाजपेयी ने "आधुनिक साहित्य" नामक ग्रथ मे, पण्डित शिवचन्द्र शर्मा ने "प्रगतिवाद की रूप रेखा, नामक ग्रथ मे, डाक्टर देवराज ने "साहित्य-चिन्ता" नामक ग्रथ मे, डाक्टर नगेन्द्र ने "विचार और विश्लेषण", "विचार और अनुभूति" तथा "विचार और विवेचन" नामक ग्रथो मे, श्री मुरलीधर-श्रीवास्तव ने "बिहार की काव्य-साधना" नामक ग्रथ मे, श्री रामचरण महेन्द्र ने "हिन्दी महाकाव्य और महाकाव्यकार" नामक ग्रंथ मे, श्री कुमारविमल ने 'मूल्य और मीमासा" नामक ग्रथ मे, श्री सिंहासन राय सिद्धेश ने "हिन्दी के श्रेष्ठ साहित्यकार" नामक ग्रथ मे, श्री विश्व मोहन कुमार सिंह ने "काव्य और कवि" नामक ग्रथ मे, श्री मदन गोपाल ने "साहित्य-वार्ता" नामक ग्रथ मे, श्री चन्द्रबली सिंह ने "लोक दृष्टि और साहित्य" नामक ग्रथ मे, डॉ० शभुनाथ पाडेय ने "आधुनिक हिन्दी काव्य मे निराशावाद" नामक ग्रथ मे और श्रीमती शचीरानी गुर्टू ने "हिन्दी के आलोचक" नामक ग्रथ मे "दिनकर" जी के साहित्यकार के विविध रूपो का विवेचन-विश्लेषण किया है। सदर्भ मे ग्रथो की सूची निरर्थक है। एक प्रकार से विषयातर हो जाता है। दिनकर-साहित्य के आलोचको की लम्बी सूची यह बतलाती है कि "दिनकर" जी को जितने आलोचक मिले, उतने आलोचक शायद ही किसी हिन्दी-कवि को मिले होगे। उन्होने देश मे जितना सम्मान पाया है उतना ही विदेशोमे भी। पोलैण्ड और रूस मे उन की कविताओ की ओर विदेशी जनता जितनी उनकी ओर खिची थी उतनी किसी भारतीय कवि की ओर नही। इस प्रकार उन्होने विदेशो मे भारत का गौरव बढाया है। जीवन के जितने विभिन्न क्षेत्रो का उन्होने अनुभव प्राप्त किया है उतने विभिन्न क्षेत्रो का अनुभव शायद ही किसी हिन्दी-कवि या भारतीय कवि ने प्राप्त किया है। इसका कारण यह है कि उन्होने सरकार के विभिन्न पदो पर कार्य किया है। १६४३ ई० मे उन्होने बिहार सरकार के युद्ध-प्रचार विभाग मे कार्य किया। १६४७ ई० मे वे बिहार सरकार के प्रचार-विभाग के उपनिदेशक हुए और १६५० ई० मे मुजफ्फरपुर कालेज मे हिन्दी विभाग के अध्यक्ष। १० मार्च, १६५२ ई० को उन्होने सरकारी नौकरी त्याग दी और राज्य सभा के काँग्रेसी सदस्य हो गये। १६६२ ई० मे भागलपुर विश्वविद्यालय ने उन्हे डी० लिट्० की उपाधि से सम्मानित किया। वे भागलपुर विश्वविद्यालय के उपकुलपति के रूप मे सुशोभित हुए। इसमे शक नही कि सघर्ष मे उन्होने सफलता प्राप्त की है। सघर्ष की कटुता ने न उनके व्यक्तित्व को विशृखल किया न लक्ष्य भ्रष्ट। उनकी आन्तरिक सात्विकता और

कल्याण-भावना सर्वदा अक्षुण्ण रही है।

सन् १९३५ ई० की बात है। सुल्तानगज (भागलपुर) से "गगा" नामक मासिक पत्रिका निकल रही थी जिसके सम्पादक श्री रामगोविन्द त्रिवेदी थे। मैं 'दिनकर' जी के साथ भागलपुर से आ रहा था बस से। रास्ते मे हम लोग त्रिवेदी जी से मिलने गये। उन्होने हम लोगो को रोक लिया। उनके यहाँ जमकर साहित्य-चर्चा हुई। दूसरे दिन हम लोग जलपान आदि के उपरान्त गाडी पकडने के लिए सुल्तानगज स्टेशन पर गये। हमारी गाडी आने मे देर थी। हम लोग विश्रामालय मे बैठे और कुछ लिखने बैठ गये। जब मेरा लिखना समाप्त हो गया तब 'दिनकर' जी ने भी लिखना बन्द कर दिया। घडी मे समय देखा। मै स्टेशन मास्टर के पास गया और पूछा—"मुगेर जाने वाली गाडी लेट है क्या ? स्टेशन मास्टर मुझे पहचानते थे। उन्होने कहा—" गाडी गये हुए करीब एक घण्टा हो गया। अब तो गाडी जमालपुर पहुँचती होगी।" मुझे बडा अफसोस हुआ। 'दिनकर' जी को गाडी छूटने की बात बतलायी। उन्हे यह विश्वास नही हो रहा था कि गाडी आई और चली गयी तथा उसकी आवाज हम लोगो के कानों तक नही पहुँची। यह बात जब मुझे याद आती है तब स्वय मै विस्मित हो जाता हू। ऐसी एकाग्रचित्तता थी हम लोगो मे लिखने के समय !

आरा मे होने वाले बिहार प्रान्तीय साहित्य-सम्मेलन के अधिवेशन से हम लोग अपने-अपने घर आ रहे थे। 'दिनकर' जी को सिमरिया जाना था और मुझे बेगूसराय। 'दिनकर' जी किंचित् अस्वस्थ भी थे। जिस गाडी से हम लोग मोकामाघाट पहुँचे उसका 'कनेक्शन' जहाज से नही था। हम लोगो ने माल जहाज से गगा को पार किया। रात बहुत बढ गयी थी। रूपनगर के पास बाया नदी मे जो पुल था वह खराब हो गया था। हम लोग उसे पार नही कर सकते थे। इसलिए हम लोग एक खेत मे स्थित झोपडी मे ठहर गये। एक बार रात मे मैं बाहर निकला ! मैंने देखा कि जगली सूअरो का एक झुण्ड कास की ओर जा रहा है। मुझे वह दिन याद आ गया जब हम लोग इस दियारे मे ही सूअर का शिकार करने गये थे और रात मे ही दो-तीन सूअरो का शिकार किया गया था। सुबह को 'दिनकर' जी सिमरिया चले गये और मैं बेगूसराय चला आया। बहुत दिनो के बाद जब मैने उनसे सूअरो की चर्चा की तब उन्होने कहा—"मुझसे क्यों नही बोले ? मै भी बाहर निकल कर देखता।" इस प्रकार मेरी और उनकी अनेक स्मृतियाँ जुडी है। सन् १९५५ ई० मे एक एम० एल० ए० साहब ने मेरे विरुद्ध आचरण किया था और मेरे विरुद्ध अनेक नेताओ के कान भरे थे, हालाकि उन्हे मुह की खानी पड़ी थी। जब १९५७ ई० मे देश व्यापी चुनाव हो रहा था तब 'दिनकर' जी और श्री मथुराप्रसाद-मिश्र, एम० पी० मेरे यहाँ ठहरे थे। उस समय उन एम० एल० ए० साहब ने 'दिनकर' जी से कुछ सहायता मागी। 'दिनकर' जी ने कहा—"सुहृद मेरा दोस्त है। जिस आदमी ने उसे बेपानी करने के लिए अपनी सारी ताकत लगा दी, उसके साथ मेरी तनिक भी

सहानुभूति नही है।" 'दिनकर' जी का यह रुख देखकर वे एम० एल० ए० साहब ३ फरवरी, १९५७ ई० को मेरे यहाँ आये और मुझसे क्षमा याचना की। जिन शब्दो मे उन्होने मुझसे क्षमा-याचना की उनसे मेरी आँखो मे आँसू उमड आये। मैंने उनके प्रति अपने सारे असन्तोष को भुला दिया और सच्चे हृदय से उन्हे सहायता देने का आश्वासन दिया। आज भी जब वह घटना याद आती है तब मेरी आँखें डबडबा जाती हैं। ऐसे है 'दिनकर' जी दोस्तपरस्त। वे अपने मित्रो के कल्याण के लिए अपनी हानि भी उठा सकते हैं और औरो का विरोध भी कर सकते है। जो व्यक्ति उनके कटु आलोचक है उनके प्रति भी उनके मन मे सम्मान की भावना है।

२२ फरवरी, १९५९ ई० को मैं उनके साथ दिल्ली मे राहुल जी से मिलने गया था। हम लोग घटो बातचीत करते रहे थे। २४ अप्रैल, ५९ को मै टाटा एक्सप्रेस से बिहार हिन्दी साहित्य सम्मेलन के वार्षिक अधिवेशन मे भाग लेने के लिये राँची जा रहा था। 'दिनकर' जी सम्मेलन मे भाग लेने के लिए दिल्ली से आ रहे थे। उनका डब्बा भी गया मे काट कर हम लोगो की गाडी मे जोड दिया गया। २५ अप्रैल को साढे सात बजे सुबह मे हम लोग राँची रोड पहुँचे। वहाँ स्वागत-समिति के लोग मिले। हम लोग मोटर से ९ बजे राँची पहुँचे। मैं रायबहादुर हरखचन्द के यहाँ ठहरा और दिनकर जी श्री ब्रजशकर वर्मा के साथ, जो हिन्दी साहित्य-सम्मेलन के अध्यक्ष थे। गर्मी का महीना था। मैंने दस बजे रायबहादुर साहब की गाडी से प्रस्थान किया। सिन्दरी और झरिया गया। ६ बजे पुन' राँची लौट आया और सम्मेलन के खुले अधिवेशन मे भाग लिया। 'दिनकर' जी ने पूछा—' दिन भर कहाँ रहे ?" मैंने अपना दिन भर का कार्यक्रम उन्हे बताया। वे ताज्जुब करने लगे और कहने लगे कि कडाके की गर्मी मे और लू मे तुमने कैसे आने की हिम्मत की ? मुझे उनकी बातो को सुनकर हँसी आ गयी। भला मनुष्य की सकल्प-शक्ति के सामने गर्मी और लू की क्या बिसात। सभा समाप्त होने के बाद 'दिनकर' जी और पण्डित मथुरा प्रसाद दीक्षित के साथ कुछ लोगो से मैं मिलने गया। कुछ देर के बाद दीक्षित जी अपने निवास-स्थान पर लौट आये। मैं दस बजे रात तक 'दिनकर' जी से बाते करता रहा। लल्लू का समाचार सुनकर उन्होने मुझे कहा कि कल मै भी लल्लू के यहाँ चलूंगा। २६ अप्रैल को वे मुझे खोजते-खोजते राय बहादुर के यहाँ सरोसामान के साथ आ गये और मेरे ही साथ ठहर गये। कुछ देर बाद विकास महाविद्यालय के लोग आये और हम लोगो को ले गये। रास्ते मे श्री राजेन्द्र शर्मा मिले। उन्हे भी हम लोगों ने साथ ले लिया। विकास महाविद्यालय मे साहित्य-गोष्ठी हुई। लौटते समय 'दिनकर' जी ने श्री राजेन्द्र शर्मा से बातचीत के सिलसिले मे कहा—'आज तो सभी मुझसे सटने की कोशिश करते हैं, लेकिन जिस दिन मुझे कोई नही जानता था, उस दिन से सुहृद मुझे पूछता आया है ?" इस पर शर्मा जी मेरे पक्ष मे बोलते रहे। 'दिनकर' जी मेरी प्रशसा करते रहे। मैं सकोच से गड़ा जा रहा था। अन्त

मे मैंने हँसते हुए शर्मा जी से कहा—"ई सब बात पाछे बतिआइब, जब हम ना रहब तब चाहे बतियाए बिना ना रहल जाए त एकरा 'योगी' मे लेख लिख के छाप दी।" मेरी बातें सुनकर दोनो हँसने लगे। तीन बजे दिन मे मैं दोनो को लेकर बिड़ला इस्टिच्यूट गया। यहाँ हम लोग पहले लल्लू से मिले, फिर अशोक से। अशोक शर्मा जी का सुपुत्र है और लल्लू का सहपाठी। अब दोनो अभियन्ता है। अधिवेशन की समाप्ति के बाद हमलोगो ने राँची से प्रस्थान किया। 'दिनकर' जी दिल्ली जाने वाले डब्बे में बैठे। मैने भी उनके डब्बे मे अपना बिस्तर बिछा दिया। गया तक हम लोग बतियाते हुए आये। गया मे 'दिनकर' जी का डब्बा कट गया। मैं पटना वाले डब्बे मे बैठ गया।

२४ सितम्बर १९६० ई० को 'दिनकर" जी के साथ पटना मेडिकल कालेज अस्पताल मे मैं सुकवि ब्रजकिशोर "नारायण" को देखने गया था। "नारायण" जी एकाएक बीमार होकर पेइग वार्ड मे भरती हो गये थे। डॉ० श्री निवास की देखरेख मे उनका इलाज हो रहा था।

अक्तूबर, १९६२ ई० मे फारबिसगज (पूर्णिया) मे बिहार हिन्दी साहित्य-सम्मेलन का उन्तीसवा अधिवेशन डॉ० सुधांशु की अध्यक्षता मे हुआ था। जिसका उद्घाटन किया था "दिनकर" जी ने। मैं पूर्णिया से उनके साथ गया था और जो प्रतिष्ठा प्राप्त की थी वह मेरी सुखद स्मृतियो के अक्षय भाण्डार की स्थायी निधि है। हम लोगो मे जो स्नेह पहले था, वह आज भी ज्यों-का-त्यो है और काल ने उसके रग को फीका नही किया है। मेरे विषय मे "सुहृद" नामक पुस्तक मे २९-१-१९५७ ई० को उन्होने लिखा—' मैं नही चाहता कि उनकी विदाई का काल मेरी विदाई से पहले आवे।" यह वाक्य जब मैं पढता हूँ तब मेरी आँखे भर आती हैं। मैं ईश्वर से प्रार्थना करता हूँ कि मेरी विदाई का काल सभी मित्रो की विदाई के काल से पहले हो। देश, समाज और मित्रों की सेवा करते-करते मैं पहले चला जाऊँगा तब मेरी आत्मा को सुख मिलेगा। यह मेरी इच्छा है लेकिन ईश्वरेच्छा को कौन जानता है और उसके विधान को कौन पलटेगा ? समय के पहले न कोई जायगा और न समय के बाद एक पल भी कोई रुकेगा। मेरी "बीती बातें" नामक पुस्तक की भूमिका में उन्होने लिखा है—

"अगर जवानी का दोस्त आपके साथ हो तो बुढापे की यात्रा का आनन्द और नहीं तो दूना अवश्य हो जाता है। मैं इस दृष्टि से सौभाग्यशाली मनुष्य हूँ कि मेरे कुछ जवानी के दोस्त आज भी मेरे साथ है। श्री कपिलदेव नारायण सिंह "सुहृद" का स्थान इन मित्रो में अन्यतम है। इसीलिए श्री सुहृद जी की "बीती बाते" मे बहुत-सी बातें ऐसी हैं जो मेरी भी बीती बातें कही जा सकती हैं।

× × ×

कैसा था वह समय जब अपनी नयी कविताएँ "सुहृद" को सुनाये बिना मुझे चैन नहीं आता था। कैसा था वह समय जब हम दोनो इक्के पर चढकर देहातो मे घूमते

थे और सारी राह कवियो और कविताओं की चर्चा करते रहते थे। किन्तु, अब फूलो पर न तो ओस के कण दिखाई देते हैं, न अगल-बगल हरी घासों की कतारे है। ऊषा चली गई। दोपहरी का दिनमान अब पश्चिम की ओर ढल रहा है। अब हम चढाई के नही, उतार के मुसाफिर हैं और रास्ते के शुरू मे हमने जो फूल देखे थे, पक्षियो की जो चहचहाहट सुनी थी, हरे तृणो का जो स्पर्श किया था, वे सबके सब हमे याद आते हैं और हृदय मे एक कचोट छोडकर फिर अदृश्य हो जाते हैं। "बीती बातें" से मेरे भीतर बहुत-सी ऐसी स्मृतियाँ लहलहा उठी जिनपर धूल की परत जम गयी थी।"

"दिनकर" जी विनोद प्रिय हैं और आशुकवि भी। उनके गाव के निकट "बारो" नामक एक गाँव है जो अपनी बेवकूफी के लिए मशहूर है, ठीक उसी प्रकार, जिस प्रकार, उत्तर प्रदेश का "भोगाँव" या चम्पारन जिले का "मझोआ" परगना। "दिनकर" भी एक बार बेतिया मे नियुक्त थे। कुछ दिनों के बाद उनके एक मित्र ने उनके बारे मे एक गजल लिखी जिसमे कहा गया था—"आप आदमी तो खूब हैं लेकिन आपकी बातचीत ओर चाल-ढाल से आपके वतन की बू आती है अर्थात् बारो की बेवकूफी आपमे आशकार है।" गजल लिखनेवाले मित्र मझोआ के निवासी थे। इसलिए "दिनकर" जी ने गजल की पीठ पर तुरन्त यह रुबाई लिख दी—

"यह ठीक है, बारो के वे हौआ चले गये,
जो हाकते थे रात-दिन कौआ, चले गये।
पूछा जो चित्रगुप्त से, बारो का क्या हुआ ?
बोला कि सभी लोग मझोआ चले गये।"

यह रुबाई दोस्त को मिली, वे कटकर रह गये।

"दिनकर" जी स्पष्ट वक्ता है। वे प्रथम दृष्टि मे किसी को अविश्वासपात्र नही मानते लेकिन जब छले जाते हैं तब अपनी पीडा स्पष्ट रूप मे व्यक्त कर देते हैं। जब अफसर बैडमिंटन या ताश खेलते थे तब "दिनकर" जी कविताएँ लिखते थे। उनकी कापियो मे बहुत-सी अधूरी कविताएँ हैं क्योकि जब दफ्तर जाने का समय होता था तब वे अधूरी कविताएँ छोड़कर दफ्तर चले जाते थे। पारिवारिक चिन्ताओ से वे कभी मुक्त नही हुए। स्कूल की नौकरी छोडकर जब वे सब रजिस्ट्रारी मे जाने लगे तब उनकी इस इच्छा का कई मित्रो ने विरोध किया था। लेकिन मैंने नौकरी मे जाने की राय दी। सरकार ने उन्हे अनेक बार चेतावनी दी थी। लेकिन छद्मनाम से भी देश-प्रेम सम्बन्धी कविताएँ लिखते थे। १९४० ई० मे जब महात्मा गाधी जी इस दुविधा मे थे कि भारत सरकार के खिलाफ आन्दोलन प्रारम्भ करूँ या नही तब "दिनकर" जी ने अमिताभ नाम से गाधी जी के प्रति एक जोरदार कविता लिखी थी जिसकी चन्द पक्तिया यों है—

"नख-दन्त देख, मत हृदय हार
गृह-भेद देख मत हो अधीर,
अन्तर की अतुल उमग देख,
देखे, अपनी जजीर वीर!
यह पवन परम अनुकूल देख,
रे, देख भुजा का बल अथाह,
तू चले बेडियाँ तोड कही,
रोकेगा आकर कौन राह?
डगमग धरणी पर दमित तेज,
सागर पारे-सा उठे डोल;
उठ जाग, समय अब शेष नही
भारत मा के शार्दूल, बोल!"

सन् १९४२ ई० का "भारत छोडो आन्दोलन" जब दबने लगा था तब "दिनकर" जी ने "आग की भीख" शीर्षक कविता मे लिखा था—

"बेचैन हैं हवाएँ, हर ओर बेकली है,
कोई नही बताता, किश्ती किधर चली है।
मझधार है, भवर है या पास है किनारा,
यह नाश आ रहा या सौभाग्य का सितारा?
तम वेधिनी किरण का सन्धान मागता हूँ,
ध्रुव की कठिन घडी मे पहचान मागता हूँ।"

युद्ध-प्रचार-विभाग मे जब वे कार्य करते थे तब उन्होने ऐसी एक भी पक्ति नही लिखी जिसकी भावधारा उनकी राष्ट्रीय कविताओं की भावधारा के विपरीत हो और तुर्रा यह कि उन्होने पेट की आग बुझाने के लिए जो भी लिखा उस पर अपना नाम नही जाने दिया। उनके साहित्य और फाइलो की कलमे पृथक्-पृथक् ही रही।

"दिनकर" जी भविष्य-द्रष्टा भी सिद्ध हुए हैं। सन् १९३३ ई० मे उन्होने "ताण्डव" नामक कविता लिखी थी और वैद्यनाथ धाम जाकर शकर को सुनायी थी। १५ जनवरी, १९३४ ई० मे बिहार मे एक भयानक भूडोल आया था। लोग कहने लगे थे कि यह भूडोल "दिनकर" की कविता से आहूत है। राहुल जी ने भी इसकी चर्चा अपने एक लेख मे की थी। "विपथगा" शीर्षक कविता मे १९३८ ई० मे 'दिनकर" जी ने लिखा था—

"अब की अगस्त्य की बारी है, पापों के पारावार! सजग!"

जब १९४२ ई० मे अगस्त के महीने मे क्रान्ति ने अपना बिगुल बजाया तब "दिनकर" जी के एक पुलिस सुपरिंटेडेट मित्र ने उन्हे कहा था—"दिनकर, क्या तुमने सपने मे

भविष्य देखा था ?" "विपथगा" शीर्षक कविता मे "अगस्त्य" नामक ऋषि से तात्पर्य था लेकिन उसकी सगति अगस्त महीने से भी बैठ गयी। आचार्य शिवपूजन सहाय जी का मत है कि मैथिल-कोकिल विद्यापति के बाद बिहार मे "दिनकर" जी के समान कोई प्रतिभाशाली कवि उत्पन्न नही हुआ। लेकिन श्री मन्मथनाथ गुप्त की मान्यता है— "दिनकर सचमुच ही हिन्दी ससार के दिनकर हैं।" २६ जनवरी, ५० को उन्होने भारतीय स्वतत्रता-देवी का सोल्लास स्वागत किया था और कहा था—

"आरती लिए तू किसे ढूंढता है मूरख,
मन्दिरो, राज प्रासादो में, तहखानो मे ?
देवता मिलेंगे खेतो मे, खलिहानो मे।
फावडे और हल राजदण्ड बनने को हैं,
धूसरता सोने से शृगार सजाती है,
दो राह, समय के रथ का घर्घर-नाद सुनो,
सिंहासन खाली करो कि जनता आती है।"

१५ अगस्त, १९४८ ई० को स्वतन्त्रता की पहली वर्षगाठ के अवसर पर उन्होने लिखा था—

'टोपी कहती है, मैं थैली बन सकती हूँ,
कुरता कहता है, मुझे बोरिया ही कर लो,
ईमान बचाकर कहता है आँखें सबकी,
बिकने को हूँ तैयार, खुशी हो जो, दे दो।"

इस प्रकार आज जो चारो ओर भ्रष्टाचार है, चाहे समाज मे, या राजनीति मे या साहित्य मे या दफ्तर मे या कोटि मे, उसका सकेत उन्होने १९४८ ई० मे ही दिया था। उनका विश्वास है कि गाधीवाद की विजय तब होगी जब देश मे समाजवाद स्थापित होगा। उनका यह भी विश्वास है कि अगर गाधीवाद ऐसा न कर सका तो देश मे विप्लव की चिन्गारी पुन. फैलेगी।

सन् १९५५ ई० के नवम्बर महीने मे पोलैण्ड के राष्ट्रकवि अदममित्सकेविच के शती समारोह मे "दिनकर" जी ने भारत सरकार की ओर से भारतीय कविता का प्रतिनिधित्व किया। उस अवसर पर उन्होने यूरोप और मिस्र का भी पर्यटन किया। सन् १९५६ ई० मे वे राष्ट्रभाषा-आयोग के सदस्य नियुक्त हुए। वे "कुरुक्षेत्र" "रश्मि-रथी", 'नील कुसुम" आदि पुस्तकों के लिए भारत सरकार, उत्तरप्रदेश सरकार, नागरीप्रचारिणी सभा, काशी, राष्ट्रभाषा परिषद्, पटना और साहित्यकार ससद् प्रयाग द्वारा पुरस्कृत हो चुके हैं। "चक्रवाल" नामक काव्य-सकलन मे उन्होने अपनी सभी कृतियों की श्रेष्ठ कविताओ का चयन किया है। इसीलिए जो पाठक उनके क्रमिक विकास को समझना चाहते हैं, उन्हे "चक्रवाल" का अध्ययन अवश्य करना चाहिए।

१६३३ ई० मे उन्होने "मगल-आह्वान" मे गाया था।—

"ऐसा दो वरदान, कला को
कुछ भी रहे अजेय नहीं,
रजकण से ले पारिजात तक
कोई रूप अगेय नही।
प्रथम लिखी जो मधुर ज्योति
कविता बन तमसा-कूलो मे,
जो हँसती आ रही युगो मे
नभ-दीपो, वन-फूलो मे,
सूर-सूर, तुलसी-शशि जिसकी
विभा यहाँ फैलाते हैं,
जिसके बुझे कणो को पा कवि,
अब खद्योत कहाते हैं,
उसकी विभा प्रदीप्त करे
मेरे उर का कोना-कोना,
छू दे यदि लेखनी, धूल भी
चमक उठे बन कर सोना।"

उनकी यह इच्छा पूर्ण हुई। उन्होने जिस विषय का स्पर्श किया है, उस विषय को अमर कर दिया है और धूल को भी सोना बना दिया है। "रेणुका" मे एक ओर वे किसानो और मजदूरो की दशा पर आँसू बहाते है तो दूसरी ओर राजवाटिका का त्याग कर वनफूलो का भी मर्मान्तिक चित्र अकित करते है—

"चलो, जहा निर्जन कानन मे क्या कुसुम मुसकाते है,
मलयानिल भूलता, भूलकर जिधर नही अलि जाते हैं।
कितने दीप बुझे झाडी-झुरमुट मे ज्योति पसार?
चले शून्य मे सुरभि छोडकर कितने कुसुम कुमार?"

उन्होने इतिहास की पीडाओ को सबल शब्दो मे व्यक्त किया है। इस प्रसग मे "बुद्ध-देव" और "पाटलिपुत्र की गगा से" शीर्षक कविताएँ उल्लेख्य हैं। शैली उनकी अपनी है, ठीक, उसी प्रकार, जिस प्रकार नजरुल इस्लाम या जोश मलीहाबादी की। उनकी भाषा मे ओज-व्यजक शब्दों की भरमार है। एक ओर वे ग्राम्य-गीतो की शब्दावली अपनी कविता मे स्वाभाविक रूप मे फिट करते है—

"भैया! लिख दे एक कलम खत मो बालम के जोग,
चारों कोने खेम-कुसल माझे ठा मोर वियोग।"

तो दूसरी ओर "कस्मै देवाय?' शीर्षक कविता मे सस्कृत का मन्त्र भी—

"हिरण्यगर्भ समवर्तताग्रे भूतस्य जात: पतिरेक आसीत्,
स दाधार पृथिवी द्यामुतेमाम् कस्मै देवाय हविषा विधेम ?'

"जागरण" (वसन्त के प्रति शिशिर की उक्ति), 'राजा-रानी", "निर्झरिणी", "कोयल", "ग्राम-सध्या", "कला-तीर्थ" आदि मे उन्होने प्रकृति के विराट् चित्र अकित किये है। 'परदेशी" शीर्षक कविता मे उन्होने जीवन की क्षणभगुरता का वर्णन किया है। "विधवा" शीर्षक कविता मे उन्होने भारत की विधवा की पीडा व्यक्त की है। इस प्रकार वे सच्चे अर्थों मे भारतीय जनता के कवि हैं और युग-प्रतिनिधि कवि है। वे शतायु हो, यही हमारी मगल कामना है।

डॉ० हजारीप्रसाद द्विवेदी

पण्डित हजारी प्रसाद द्विवेदी के नाम से मैं बहुत दिनो से परिचित था लेकिन उनसे मिलने का सौभाग्य नही मिला था। तुलसी ने ठीक ही लिखा है—

"बिनु हरिकृपा मिलहि नहिं सन्ता।"

मैं यह भी जानता था कि द्विवेदी जी का जन्म स्थान मेरे घर (सिताबदियारा, छपरा) से करीब बारह कोस पश्चिम बलिया जिले का दूबे का छपरा है। लेकिन उनसे मिलने का सर्वप्रथम सौभाग्य प्राप्त हुआ सन् १६४० ई० मे। मुगेर जिला हिन्दी साहित्य सम्मेलन का वार्षिकोत्सव बडी धूमधाम से मनाया गया था। इसके पूर्व वार्षिकोत्सवो मे श्री अज्ञेय जी श्री बच्चन जी, श्री सुदर्शन जी, डॉ० हेमचन्द्र जोशी, डॉ० हजारी प्रसाद द्विवेदी आया करते थे। सन् १६४० ई० मे मुगेर टाउन हॉल मे सभा हो रही थी। बच्चन जी एक कुर्सी पर बैठे हुए थे। उनकी चढती जवानी थी। सुन्दर सुगठित शरीर था। मुखमुद्रा गभीर थी। उनके बगल मे एक सज्जन गये और उनसे पूछा—"आप सुहृद जी को जानते है?" उत्तर मे उन्होने कहा—"उनको कौन नही जानता?" बगल मे बैठे "अज्ञेय" जी यह सुन रहे थे। जब हम द्विवेदी जी से मिले तो हमे ऐसा प्रतीत हुआ कि हम चिर-परिचित हैं। पहली भेट मे ही वे इतने खुल गये कि हमे यह मालूम नही हुआ कि हम लोग प्रथम बार मिल रहे हैं। भोजन के समय सुदर्शन जी ने पूछा—"क्या बहुत दिनो बाद आप लोगो की भेट हुई है?' यह सुनकर द्विवेदी जी हँसे और बोले—"अगर मैं कहूँगा तो आपको कहानी का मसाला मिल जायेगा और हम लोग कहानी के विषय बन जायेगे।" यह सुनकर सुदर्शन जी की उत्सुकता बढ गयी और वे बार बार पूछने लगे। तब द्विवेदी जी ने उन्हे कहा—"साक्षातकार आज ही पहले-पहल हुआ है।" इस पर पण्डित मदनमोहन पाण्डेय, श्री सुरेश्वर पाठक विद्यालकार, श्री कृपाशकर अवस्थी आदि विस्मित हो गये। दो दिनों के साहित्यिक जलसे ने हम लोगो को एक दूसरे से और अधिक निकट ला दिया।

बिहार प्रान्तीय हिन्दी साहित्य सम्मेलन का वार्षिक उत्सव मन्दारहिल (बौंसी) मे हुआ। वहाँ डॉ० राजेन्द्र प्रसाद, डॉ० सुधाशु, काका कालेलकर और द्विवेदी जी के दर्शन हुए। वहाँ द्विवेदी जी ने मेरे विषय मे कहा—"सुहृद जी से मेरा प्रथम परिचय मुगेर जिला साहित्य सम्मेलन के अवसर पर आज से लगभग पाँच वर्ष पहले हुआ था।

डॉ० हजारीप्रसाद द्विवेदी

उनमे एक ऐसी चरित्रगत विशेषता है, जो प्रत्येक व्यक्ति को आकृष्ट करती है। उनका प्रेम बडा मोहक और आकर्षक है। उनका उपनाम उनका बहुत उत्तर परिचय है। वे सबके सुहृद है। कवियो के, राजनीतिज्ञो के, लोक नेताओ के, सब के सुहृद है। सभी उन्हे भली भाँति जानते है। बिहार मे तो शायद ही कोई ऐसा साहित्यिक हो, जिसके साथ उनका सौहार्द न हो। ऐसे सहृदय मित्र का मिलना सबके लिए परम सौभाग्य का विषय है। उनका प्रेमपूर्ण आग्रह बडा शक्तिशाली होता है। मेरी भगवान से हार्दिक विनय है कि वे सुहृद जी को और भी अधिक यशस्वी बनावें और उन्हे लोक-सेवा और लोकरजन का अधिकाधिक सुयोग दे। सुहृद जी कभी आर्थिक चिन्ता के शिकार नही होते, कभी छोटी-छोटी बातो से परेशान नही दीखते— सदा प्रसन्न, सदा सहास, सदा आनन्दित, वे साथ रहने वालो को भी सदा प्रसन्न बनाए रहते हैं। उनके साथ कुछ देर रहकर कोई उदास नही बना रह सकता। परमात्मा उन्हे सदा आनन्दित करने का सदा सुयोग दें।"

भोजन के समय हम लोग राजेन्द्र बाबू के साथ बैठे। इसलिए हम लोगो का वार्तालाप सयमित था। हम लोग राजेन्द्रबाबू का लिहाज करते थे। भोजनोपरान्त राजेन्द्र-बाबू अपने कमरे मे चले गये। हम लोगो ने भी भोजन कर लिया। तब द्विवेदी जी और श्री रामवृक्ष बेनीपुरी मेरी प्रशसा करने लगे। मैंने हँसते हुए उन्हे कहा—"ये सारी बाते आप लोग कही लिखकर भेज दीजिएगा। तब कुछ लोग मेरे विषय मे भी कुछ जान जायेंगे।" यह सुनकर द्विववेदी जी हँसने लगे और बेनीपुरी जी ने कहा—"भइयवा ठीक कह रहे हो। मैं तुम्हारे सबध मे एक स्केच अवश्य लिखूँगा।" इस पर द्विवेदी जी ने कहा—"सुहृद जी, बेनीपुरी जी लिखस चाहे मत लिखस लेकिन हम रउआ ऊपर कुछ करूर लिखब।" तब मैंने कहा—"अच्छा, लिखब तब नू जानब। रास्ते के बात तऽ रास्ते मे रह जाइ।" मेरी बातें सुनकर दो महारथी खूब हँसे—सुधाशु जी और राजेन्द्र बाबू भीतर वाले कमरे मे जो हिन्दुस्तानी के बारे मे बातें कर रहे थे।

इसके बाद जहाँ-तहाँ द्विवेदी जी से भेट होती रहती थी। १९५२ के जून मे मैं बनारस गया था। बेगूसराय के रईस मेरे मित्र श्री विष्णुदेव नारायण जी भी साथ थे। जब कभी मैं बनारस जाता था तब द्विवेदी जी के डेरे पर अवश्य जाता था। उनके साथ कुछ देर बैठने के बाद हम दोनों व्यक्ति साथ चलते थे और सभी मदिरो के देवताओ के दर्शन करते थे। जिस समय मैं श्री विष्णुदेव बाबू के साथ द्विवेदी जी के यहाँ पहुँचा, शाम के पाँच बज रहे थे। उनका परिचय विष्णुदेव बाबू से कराया। तत्पश्चात् शर्बत-जलपान का दौर चला। उन दिनो उनके पिता जी भी घर से आये हुए थे। हम लोग दुमजिले पर बैठकर बातें कर रहे थे। उनके पिता जी नीचे बैठे हुए थे। उन्ही के जवार के कुछ लोग द्विवेदी जी से मिलने आये। उनके पिता जी उन लोगो को अपने

पास बिठा कर बाते करने लगे और मेरे बारे मे उन्हे कहा—"अभी सिताब दियारा के बाबू साहब आइल बाडन। बबुआ से बातचीत करत बाडन। अभी बबुआ उनकरे साथ शहर के तरफ जइहे एही मोटर पर।" यह बात, जब विष्णुदेव बाबू नीचे गये तब सुनी थी और मुझसे कही थी। मैं द्विवेदी के साथ शहर को चलने को तैयार होकर नीचे उतरा। चलते समय मैं उनके पिता जी के पास गया और पैर छूकर प्रणाम किया। उन्होने आशीर्वाद दिया। इसके अनन्तर हम लोग सर्वप्रथम दुर्गाकुण्ड पर गये। वहाँ पचमदिर मे गये। हम लोगो ने पाँच बार मन्दिर की परिक्रमा की और चलते समय मुह मदिर की ओर करके हम लोग चलते चले। जब हम लोग फाटक के पास गये तब मैंने द्विवेदी जी से पूछा—"मुँह मदिर के तरफ करके पीछे के तरफ काहे चलल जाला?" उन्होने बतलाया—"देवता के दर्शन करके जब आदमी जाता है और लौटता है तब पीठ नही दिखानी चाहिए।" इसके पश्चात् हम लोग सकट मोचन गये। वहाँ से अन्नपूर्णा जी के मन्दिर मे गये। फिर विश्वनाथ जी के मन्दिर मे गये। द्विवेदी जी के एक सबधी गुदवलिया पर वैद्यगिरी करते थे। वहाँ हम लोगो ने पाचक आदि खाये। इसके बाद हम लोग द्विवेदी जी को उनके डेरे पर पहुँचा आये।

सन् १९५८ ई० मे जब मैं बनारस गया तब मेरे साथ रामेश्वर बाबू थे। सन् १९२८ ई० मे जिस जमीन को कोई नही पूछता था, दुर्गाकुण्ड से उत्तर वाली जमीन मे द्विवेदी जी ने एक सुन्दर विशाल भवन बनवाया था। अहाता भी बहुत बडा था। वे उन दिनो अपने मकान मे ही रहते थे। विश्वविद्यालय मे परीक्षा चल रही थी। द्विवेदी जी विश्वविद्यालय जाने के लिए उतरे। मुझे देख कर वे कुछ देर रुके। मैंने अनुभव किया कि वे जल्दी मे हैं और मैं आ गया हूँ, इसलिए सकोचवश मुझे छोडना भी नही चाहते। मैंने जब जाना कि परीक्षा है तब मैंने उन्हे जाने को बाध्य किया। जब वे चले गये तब हम लोगो ने विश्वनाथ जी के दर्शन किये और स्टेशन आकर गाडी पकड़ी।

सन् १९६० ई० मे बेगूसराय कालेज के प्रो० श्री आनन्दनारायण शर्मा के साथ कुछ और प्रोफेसर डॉ० द्विवेदी से मिलने उनके डेरे (बनारस) पर गये। इसकी चर्चा प्रो० आनन्द नारायण शर्मा ने ८ मई, १९६१ ई० के साप्ताहिक "उत्तर बिहार" मे यों की थी जिसका शीर्षक था—"कविवर सुहृद जी जैसा उन्हे देखा।" उस लेख मे शर्मा जी ने लिखा है—"गत वर्ष बडे दिन की छुट्टी मे जब वाराणसी मे आचार्य हजारी प्रसाद-द्विवेदी से मिला और मैंने उन्हे बेगूसराय आने का आमत्रण दिया तो सबसे पहले पूज्य द्विवेदी जी ने सुहृद जी के विषय मे जिज्ञासा प्रकट की और विनोदपूर्वक हँसते हुए कहा—"आप केवल कविवर सुहृद को जानते है। मैं राजनेता सुहृद को भी जानता हूँ—वे बड़े प्रतापी और यशस्वी पुरुष हैं। जब मैंने उपर्युक्त लेख पढा तब सोचने लगा कि मेरे जैसे छोटे आदमी पर द्विवेदी जी कितनी कृपा रखते हैं और उनका विचार

कितना ऊँचा है। ब्राह्मणो के प्रति मेरे परिवार के लोगो का विचार-व्यवहार बहुत ही ऊँचा है और बराबर उनका आशीर्वाद प्राप्त होता रहता है। यह उस पुण्य का ही फल है कि मुझे भी द्विवेदी जी का आशीर्वाद प्राप्त होता रहता है—हैं तो वे ब्राह्मण ही। उनके और मेरे परिवार के लोग एक दूसरे से परिचित हैं।

३० मार्च, १९५८ ई० को डॉ० हजारी प्रसाद द्विवेदी बनारस से राष्ट्रभाषा परिषद्, पटना के वार्षिकोत्सव मे भाग लेनेके लिये आये हुए थे। वे डॉ० लक्ष्मीनारायण सुधाशु से मिलने को गये। मैं पहले से वहाँ बैठा था और बाते कर रहा था। इतने मे डॉ० रामधारी सिह 'दिनकर" और श्री रामवृक्ष बेनीपुरी जी भी आ गये। जलपान आदि के बाद डॉ० द्विवेदी जी ने हँसते-हँसते मेरे विषय मे कई श्लोक लिख कर मित्र मण्डली को सुनाये। सभी लोग हँसने लगे। बात की बात मे रास्ता चलते कविता लिखते हुए डॉ० दिनकर को ही देखा था लेकिन उस दिन डॉ० द्विवेदी जी को भी आशुकवि के रूप मे देखा। उन श्लोको को व्यगचित्रकार श्री आत्मा ने अपने साप्ताहिक "आत्मा" मे अर्थ के साथ प्रकाशित किया। श्लोक ये थे—

असुहृद्वा सुहृद्वापि न सुहृत्समतापियात्।
यस्व सर्वस्व हृत्प्रेम मुष्णदप्युपकारम्॥
जयति कपिल सुकपि श्रयतितरु रामवृक्षाख्या।
दिनकरमादाय मुखे हस्ते धृत्वा सुधाशु च॥
सुहृदो भवने यस्य समागच्छन्ति नित्यश।
चित्ते च तस्य सौख्यस्य न किन्चित्प्रतिम सुखम्॥

अर्थात्—कोई मेरे लिए शत्रु या मित्र हो तो सुहृद की बराबरी नही कर सका है, जिनके सर्वस्व हृदय का प्रेम गर्म रहने पर भी उपकारक है। सुन्दर कपि रूपी कपिल की जय हो जो रामवृक्ष नाम का आश्रय करते है और जो दिनकर को मुँह मे लेकर तथा सुधाशु को हाथ मे धारण कर शोभते हैं। जिसके घर मे नित्य ही सुहृद आते हैं उसके चित्त के सुख के बराबर और कोई सुख नही होता।

वार्तालाप मे श्री रामवृक्ष बेनीपुरी ने कहा—"सुहृद के प्रति पहले मेरी कुछ और ही धारणा थी—लेकिन सुहृद तो उज्जवल हीरे के समान हैं।" इस पर मैंने हँसते हुए कहा—"इन्सान गलती से अधिक गलतफहमी से मारा जाता है। यह सुनकर बेनीपुरी जी "वाह-वाह" कहने लगे और बोले—"सही बात तुमने कही है। मै गलतफहमी मे था।" सुधाशु जी ने बडी गभीर मुद्रा मे कहा—"जानते हो बेनीपुरी, सुहृद धर्मज्ञ हैं, कृतज्ञ हैं, सन्तुष्ट प्रकृति है, अनुरागी तथा धैर्य से काम करने वाले है। साथ-ही-साथ जिस काम का सकल्प करते हैं उसे करके ही छोडते हैं। सेवा भाव तो इनमे कूट-कूटकर भरा है। दुख के समय इनको बुलाने की जरूरत नही, बिना बुलाये हाजिर हो जाते हैं। सभा सोसाइटी में या भोजभात मे बिना बुलाये किसी के यहाँ नही जाते। इतने बड़े

स्वाभिमानी है कि कभी-कभी हम लोग कही चलने के लिए कहते है और अगर निमत्रण नही रहता तब ये नही जाते। हम लोग ऐसे मित्र पाकर अपना अहोभाग्य समझते हैं।" इस पर द्विवेदी जी ने कहा—"सुहृद जी बहुत बडे भाग्यशाली हैं, साथ ही धर्मात्मा भी—जब कभी बनारस जाते है तब अपने साथ विश्वनाथ जी, अन्नपूर्णा जी आदि के मन्दिर मे हम को भी दर्शनार्थ ले जाते है। दुर्गा-कुण्ड से शुरू करते है और विश्वनाथ जी के मदिर मे समाप्त।" इस प्रकार सभी लोगो की प्रशसा सुनते सुनते मे कोफ्त हो गया, हालाँकि हर व्यक्ति अपनी प्रशसा सुनना चाहता है। मैने हँसते-हँसते कहा—"ये सारी बातें मेरे पीछे होती तो कितना सुन्दर होता। इस पर दिनकर जी ने कहा कि सुहृद जो कुछ बोल रहा है उससे मै भी सहमत हूँ।

द्विवेदी जी का जन्म श्रावण शुक्ल ११, स० १९६४ मे बलिया जिले के दुबे का छपरा नामक गाँव मे हुआ था। अपनी पारिवारिक परम्परानुसार उन्होने सस्कृत पढना आरम्भ किया। सन् १९३० ई० मे उन्होने काशी हिन्दू विश्वविद्यालय से ज्योतिषाचार्य और इन्टर की परीक्षाएँ पास की। सन् १९३० ई० मे ही वे शान्ति-निकेतन मे प्राध्यापक पद पर नियुक्त हुए। सन् १९४० ई० से सन् १९५० तक वे वहाँ हिंदी भवन के डायरेक्टर के पद पर रहे। रवीन्द्रनाथ ठाकुर के घनिष्ठ सम्पर्क मे आने पर उनके मन मे नवीन मानवतावाद के प्रति आस्था की प्रतिष्ठा हुई जो उनके भावी विकास मे सहायक बनी। वहाँ के शात और अध्ययनपूर्ण वातावरण मे ही उनका जीवन-दर्शन निर्मित हुआ जो उनके साहित्य मे सर्वत्र प्रतिफलित हुआ है।

सन् १९४९ ई० मे लखनऊ विश्वविद्यालय ने उन्हे डि० लिट्० की उपाधि से सम्मानित किया। सन् १९५० ई० मे हिन्दू विश्वविद्यालय मे नियुक्त हुए। सन् १९५५ ई० मे ये प्रथम आफिशियल लेग्वेज कमीशन के मेम्बर हुए। सन् १९५७ मे भारत सरकार ने उन्हे "पद्मभूषण" से विभूषित किया। सन् १९५८ मे वे नेशनल बुक ट्रस्ट के सदस्य बने। वे अनेक वर्षों तक काशी नगरी प्रचारिणी सभा के उप-सभपाति, खोज-विभाग के निदेशक तथा नागरी प्रचारिणी पत्रिका के सम्पादक रहे हैं। सन् १९६० से वे पजाब विश्वविद्यालय मे हिन्दी विभाग के अध्यक्ष हैं और चण्डीगढ मे रहते है। उन्होने काल विशेष के बारे मे चाहे अपनी कलम हो या कवि विशेष के बारे मे, उन्होने यह बात याद रखी है कि आलोच्य काल या कवि ने श्रेयस्कर मानवीय मूल्यो की सृष्टि की है या नही।

"हिन्दी साहित्य की भूमिका" उनके सिद्धातो की बुनियादी पुस्तक है, जिसमे साहित्य को एक अविच्छिन्न परम्परा तथा उनमे प्रतिफलित क्रिया-प्रक्रियाओ के रूप मे देखा गया है। नवीन दिशा निर्देशक की दृष्टि से इस पुस्तक का ऐतिहासिक महत्व है। "कबीर" पुस्तक मे उन्होने जिस सास्कृतिक परम्परा, समसामयिक वातावरण तथा नवीन मूल्यानुचिन्तन का द्वार खोला है वह उनकी उपर्युक्त विचार-धारा के प्रतिकूल

नही है। वे विद्वत्तापूर्ण अनुसन्धानात्मक निबध लिखते है और श्रेष्ठ निर्बन्ध-निबघो की रचना करते हैं। वे विद्वान हैं, सरल भा, गभीर हैं, विदग्ध भी, प्राचीनता समर्थक है और नवीनता प्रेमी भी। उन्होने "सूर साहित्य", "प्राचीन भारत मे कलात्मक विनोद", "वाणभट्ट की आत्म-कथा", "अशोक के फूल", "विचार-प्रवाह", "मेघदूत एक पुरानी कहानी", "सदेश-रासक", "विचार-विमर्श", "पृथ्वीराज रासो" आदि पुस्तको का प्रणयन किया है। वे हिन्दी के जहाँ श्रेष्ठ आलोचक है और श्रेष्ठ निबन्धकार भी। हम उनके जीवन की दीर्घायुकामना करते है।

डॉ० राम सुभग सिंह

डॉ राम सुभग सिह के सौहार्द बन्धन मे मै कब घनिष्ट रूप मे बँधा और उनसे प्रथम बार कब मिला, ये बाते याद नही है। लेकिन यह सचाई है कि उनसे मेरी भेट बराबर होती रही है, कभी डॉक्टर अनुग्रह नारायण सिंह के डेरे मे, कभी किसी काँग्रेस अधिवेशन मे, कभी दिल्ली मे श्री सत्येन्द्र नारायण सिंह, एम०पी० (अब शिक्षा-कृषि-मंत्री, बिहार सरकार) के डेरे पर, कभी, किसी सार्वजनिक सभा मे, कभी ट्रेन मे और कभी राह चलते। जब भी हम मिलते, मेरा दिल खुशी से नाच उठता।

उनकी वैचारिक दृढ़ता अपना सानी नही रखती। वे जिस कार्य को पूरा करने का दृढ निश्चय करते हैं, उसे अधूरा नही छोडते, चाहे उनके मार्ग मे कितनी भी बाधाएँ क्यो न आयें। इस अर्थ मे मैं कहूँगा, उनमे भावुकता की अतिशयता नही है। वे भावना के सहारे वही तक जाते हैं जहाँ तक विचार उनका सहचर होता है।

जब से उन्होने होश सभाले हैं, देश सेवा के क्षेत्र मे सक्रिय रहे है। इस अर्थ-युग मे भी वे अर्थ-सग्रह की ओर से उदासीन रहे हैं। वे आर्थिक दृष्टि से बड़े व्यक्ति नही है और न थे। लेकिन जब वे अधिकाधिक अर्थ सचय कर सकते थे तब भी इसकी ओर उन्होने ध्यान नही दिया।

प्रथम दृष्टि मे कोई उन्हे रूखा-सूखा समझ सकता है। लेकिन उनके हृदय मे स्नेह और सौहार्द की लहरे प्रवाहित होती रहती है। वे बाह्य रूप से जितने रुक्ष प्रतीत होगे, आन्तरिक रूप में वे उतने ही सरस हैं। प्रसन्नता उन की चिर-सहचरी है। जीवन की किसी भी स्थिति मे वे निराश नहीं होते।

वे राष्ट्र की विभूति हैं, निडर योद्धा हैं, आदर्श और कर्मठ कार्यकर्त्ता हैं, नीति-निपुण राजनीतिज्ञ हैं, और अजेय नेता हैं सत्य के प्रति उनमें असीम श्रद्धा है। यही कारण है, वे सृष्टि-शक्ति से सम्पन्न हैं।

जहाँ तक मुझे याद है, सन् १९५८ ई० की बात है। मै दिल्ली गया हुआ था। देशरत्न डॉ० राजेन्द्रप्रसाद के दर्शन कर मैं डॉक्टर "दिनकर" के डेरे मे गया। वहाँ चाय-जलपान का दौर चला। उसके बाद हम लोग राष्ट्रकवि श्री मैथिलीशरण गुप्त के डेरे मे गये। उनके डेरे मे पुराने साहित्यिक नेता रायकृष्णदास जी ठहरे हुए थे। रास्ते मे डॉ० राम सुभग सिंह मिल गये। उनका डेरा भी गुप्त जी के डेरे के बगल मे (नार्थ

डॉ० राम सुभग सिंह

एवेन्यू में) था। उनके चेहरे पर ओज था, दीप्ति थी, कान्ति थी और थी कर्मठता। उनकी एक ही झलक से उनकी महत्ता का परिचय मिल जाता है। उनका चेहरा उनकी महत्ता का परिचायक है। वे कर्म से सन्यासी हैं। वे भारतीय नौजवानो की स्वस्थ राजनीतिज्ञता के प्रतीक है। वे आपादमस्तक कर्त्तव्यशील हैं। उन दिनो वे कांग्रेस पार्टी के सचिव थे। उनका कार्यालय लोक सभा भवन मे था। वे कुछ फाइले लिए हुए डेरा आ रहे थे। जब भेंट हुई तब बहुत देर तक वार्तालाप होता रहा। इसके उपरान्त वे डेरा चले गये।

भारत के आधुनिक कर्णधारो मे उनका विशिष्ट स्थान है। वे मधुरभाषी हैं। वे ओजस्वी वक्ता है। उनका हृदय निर्मल है। उनकी विद्वत्ता अतलस्पर्शी है। उनकी वाणी लोग आदर-भाव से सुनते है। वे तर्कों के सहारे अपने मन्तव्यो का प्रतिपादन करते है। उनकी साहसिकता बेमिसाल है। वे सार्वजनिक जीवन मे वही बोलते है जिसे वे पूरा कर सकते है। अभिप्रेत अर्थ यह है कि उनकी वाणी और कार्यो मे सामजस्य होता है। वे जिसे ठीक समझते हैं, उससे तनिक भी नही डिगते। इस स्थिति मे उन्हे अपना अकेलापन भी नही खलता। वे मेहनत और अपनी योग्यता के अनुसार ईमानदारी से रहते हैं और ईमानदारी से ही धनोपार्जन करते है। किसी को वे न डांटते है न डपटते हैं। वे औरों की भूलो पर क्रुद्ध नही होते। कहीं दावत-तवाजे मे जाने पर वे अपने से अधिक अपने सहगामियो के लिए अधिक चिन्तित रहते हैं। वे ऊपर से चट्टान हैं और अन्दर से कोमल हैं। ज्ञान और यश उनकी सम्पत्ति है। वे भौतिक सम्पत्ति के आकाक्षी नही हैं।

वे समय के सख्त पाबन्द हैं। जो समय का पाबन्द नही होता, वे उसे अच्छा नही समझते। उन्हे कपडो का खास शौक नही है। वे दूसरो की सुख-सुविधा के लिए स्वयं कष्ट उठा सकते हैं। वे न आत्म-प्रशसी हैं न आत्म-प्रचारक। वे अतीतकाल पर पछताते नही। वे स्वर्णिम भविष्य के प्रति आशावान् और आस्थावान् हैं। वे सरलता की प्रतिमूर्ति है। जब वे कोई गलती करते हैं तब उसे स्वीकार कर लेते हैं। यही वे आदर्श मानव है।

वे सर्वदा सघर्षो से लड़ते रहे हैं। उनके पथ पर जितने भी विघ्न आये हैं, वे उन्हे कुचलते गये हैं। उन्होने सघर्षों से कभी हार नही मानी है। वे दुख मे भी मुस्कुराते रहे है। वेदना-ज्वाल मे भी उनके लिए स्वर्ग-सुख-सार बरसता रहा है। वे कर्म की लौह-कसौटी पर स्वर्ण-से चमकते रहे हैं। वे विकलता से नही डरते। वे अपनी सफलता पर अभिमान नही करते। वे जयाजय मे एक समान रहते हैं। उनका जीवन-लक्ष्य है बढना और वे अपने लक्ष्य की प्राप्ति के लिए सर्वदा बढते रहे हैं। यदि उनका हृदय पत्थर-सा कठोर है तो उसमे प्रेम का स्वच्छ प्रवाह है, निर्बलो के लिए उसमे

दर्द है और निर्धनों के प्रति उसमे आह है। वे विश्व का विष पीते गये है और शभु सी सुधा उगलते रहे है। वे निष्काम कर्मयोगी है। लोग उन्हे भले ही छले लेकिन वे किसी को नही छलते। उनमे जिन्दादिली है, मस्ती है और बेफिक्री है। उनकी रजानीति कर्मठ पुरुष की राजनीति है जिसका ग्रहण और विकास प्रयोग और अनुभूतियो के क्षेत्र मे होता है। उनकी राजनीति-सम्बधी मान्यताएँ विद्या के अभ्यास से नही आयी है। अतएव उनके विश्वास प्रस्तकीय नही है वरन् क्रिया-जन्य है। उनमे ऐसी चरित्रगत विशेषता है जो प्रत्येक व्यक्ति को आकृष्ट करती है। उनका प्रेम बड़ा मोहक और आकर्षक है।

उन्होने अनेक देशो की यात्राएँ की है, जैसे, सयुक्त राज्य अमेरिका, कनाडा, रूस, मिस्र, लेबनान, सीरिया, जिबोटी, लका, जापान, थाईलैड, बर्मा, मलयेशिया और सिंगापुर। इन देशो की यात्राओ मे उन्होने जो ज्ञान प्राप्त किया है उसे उन्होने सामाजिक रूप दिया है। वे लेखक भी है। अनेक अमरीकी और भारतीय पत्र-पत्रिकाओं मे उनके लेख प्रकाशित होते रहे है। लद्दाख, सिक्किम और भूतान पर उन्होने जो निबध लिखा है वह ऐतिहासिक महत्त्व का अधिकारी है।

डॉ० राम सुभग सिंह उस आरा जिले के निवासी है, जहा उसने शेरशाह जैसे कुशल प्रशासक, विश्वामित्र जैसे नीतिज्ञ, बाबू कुंअर सिंह जैसे योद्धा और डॉ० सच्चिदानन्द सिंह जैसे विद्वान् साहित्य सर्जक को उत्पन्न किया है और यदि सच कहा जाय तो डॉ० राम सुभग सिह को इन नर-रत्नों के गुण पैतृक सपत्ति के रूप मे प्राप्त है।

वे किसान के पुत्र है। इसलिए कृषि के प्रति उनके हृदय मे झुकाव है। वे बागवानी और घुडसवारी से मनोरजन करते है। वे पत्रकार है। यही कारण है, उनके स्नातकोत्तर शोध-प्रबन्ध का विषय था—"भारतीय प्रेस और भारत के स्वतत्रता-सग्राम पर इसका प्रभाव"। डाक्टरेट के लिए उनके शोध-प्रबध का विपय—"भारतीय परिस्थितियो को अनुकूल बनाने के उद्देश्य से अमरीकी कृषि-पत्रकारिता का अध्ययन।"

डॉ० राम सुभग सिंह राजा जनक और डॉ० राजेन्द्र प्रसाद की परम्परा की आधुनिक कड़ी है। जिस प्रकार डा० राजेन्द्र प्रसाद किसान के पुत्र थे, उसी प्रकार डॉ० राम सुभग सिंह भी। जिस प्रकार डॉ० राजेन्द्र प्रसाद सिंहासन पर बैठकर भी यह नही भूलते थे कि वे एक किसान के पुत्र है उसी प्रकार डॉ० राम सुभग सिंह भारत के रेलवे विभाग के राज्य मत्री के पद पर प्रतिष्ठित होकर सर्वदा स्मृत रखते हैं कि वे किसान के पुत्र हैं। आप चाहे उनकी वेशभूषा देखे, या उनका वार्तालाप सुने, या उनका आचार-विचार देखे, किसी भी स्थिति मे आप उनमे पद का अहकार नही पायेंगे। वे उन सीढ़ियो की उपेक्षा नही करते जिनके द्वारा महत्ता के आसमान तक पहुँचे है। मत्रिपद के पूर्व उनमे जैसी निरहकारिता थी वैसी ही निरंहकारिता अब भी है। मन्त्रिपद के कार्याधिक्य ने उनके स्वभाव की मिठास कम नही की है। वे सब की बातें

धैर्य-पूर्वक सुनते है। जिनकी मागो को पूरा करने मे वे असमर्थ होते हैं वे भी उनके औचित्यपूर्ण तर्क से सहमत हो जाते हैं। यही कारण है, उनके मित्रो की सख्या कम नही है और कहना चाहिये कि उनका कोई विरोधी नही है। इस अर्थ मे हम उन्हे अजातशत्रु कहेगे।

विगत २४ अप्रैल, १९६५ ई० को बाबू कुवर सिंह की जयती के अवसर पर मैने यह अनुभव किया कि वे किसी की बातो को टालते नही। उनमे औरो की बातें सुनने की अपार धैर्यशीलता है। जब मैंने भी उनसे कुछ कहा तो वे बोले—"राउर बात तऽ हमार बात हऽ।" यह आत्मीयतापूर्ण वाणी सुनकर मैं गद्‌गद् हो गया।

बाबू साहब (डॉ० अनुग्रह नारायण सिंह) के साथ कभी-कभी दिल्ली जाने के सुअवसर मुझे प्राप्त होते थे। छोटे साहब (श्री सत्येन्द्र नारायण सिह) के डेरे पर डॉ० राम सुभग सिह से भेंट हो जाती थी। उनके विषय मे जब कभी बाबू साहब से बात-चीत होती थी, वे उनकी कर्मठता के पुल बाँध देते थे। कभी-कभी पटने मे भी बाबू साहब के डेरे मे राम सुभग सिंह से भेंट होती थी। हर जगह मै उनकी प्रकृतिगत सरलता का कायल हो जाता था।

शायद १९५० ई० की बात है। श्री राजबहादुर बिहार आये थे। वे शाहाबाद का कार्यक्रम समाप्त कर पटना आये। उनके साथ मे डाक्टर साहब भी थे। दोनो व्यक्तियों को दिल्ली जाना था। गाडी जब आरा स्टेशन पर रुकी तब डा० साहब गाडी से उतर गये। मैं भी गाडी से उतरा और उनसे मिला तथा अपनी 'जग जीवन' नामक खण्ड काव्य पुस्तक उन्हे भेट की। उन्होने बडे ही उल्लास के साथ पुस्तक ग्रहण की और इसके बाद उन्होने मेरा परिचय श्री राजबहादुर से कराया। उन्होने श्री राजबहादुर की ओर सकेत करते हुए मुझे कहा—"एक ठो इहो के किताब दी।" मैंने कहा—"अच्छा। दिल्ली तक त जाए के बा। जहाँ मौका मिली किताब इहाँ के दे देबा।" गाडी खुली। डाक्टर साहब से पारस्परिक अभिवादन हुआ। दूसरे दिन श्री राजबहादुर आगरे में ही उतर गये। उनको मैंने पुस्तक दी। उन्होने पुस्तक लेते हुए कहा—" 'अच्छा' अब दिल्ली मे भेंट होगी।"

मैंने यह अनुभव किया कि डा० साहब अपने मित्रो के परिचय की परिधि का सर्वदा विस्तार चाहते हैं और उन्हे हर प्रकार से मदद देने की चेष्टा करते है। अध्य-वसाय की दृष्टि से शायद डॉ० साहब अपनी अवस्था वाले साथियो मे लासानी है। वे प्रतिदिन सोलह घण्टो से अठारह घण्टो तक काम करते है। अध्यवसाय की यह मात्रा मिनिस्ट्री के दिनो मे ही नही रहती, साधारण समय मे भी वे इतना ही परिश्रम करते है। काम चाहे कितना भी हो किन्तु ऐसा दीखता है कि वह डॉ० साहब की कार्यक्षमता के लिए पर्याप्त नही होता। वे एक हाथ से मिनिस्ट्री की फाइले लिखते हैं और दूसरे हाथ से काग्रेस के सगठन की योजना। उनका अध्यवसाय और उनकी बुद्धि इतने

विशाल हैं कि वे अनेक गुरुतम कार्यों का बोझा एक साथ ही उठा सकते हैं, कहते हैं, कुछ दिन पहले तक हिन्दुस्तान मे शतावधानियों की सख्या आज जैसी थोडी नही थी। शतावधानी उस पुरुष को कहते हैं जो एक साथ सौ कार्यों पर निगरानी रख सके। ऐसे व्यक्तियो मे डॉ० साहब का अन्यतम स्थान है और यही कारण है कि जो लोग उनके गुणो को भली-भाँति जानते हैं वे उनकी प्रशसा उस प्रकार से करते हैं जैसा किसी अन्य के बारे मे नही कहा जा सकता।

यह ससार अपूर्व प्रतिभाशाली लोगों के चलते कायम नही है बल्कि उसके जीवन और उत्थान के प्रधान कारण वे लोग है जिनका बुद्धि मण्डल साफ और अध्यवसाय की क्षमता अपरिमित और अनन्त है। स्वच्छ-साधारण बुद्धि और घोर परिश्रम यही दो गुण हैं जिनसे कर्मठ नायकों का निर्माण होता है और इसमें कोई सन्देह नही कि इस दृष्टि से डाक्टर साहब उन थोडों मे से हैं जो देश के विभिन्न भागो मे सार्वजनिक जीवन को प्रतिष्ठा के साथ कायम रखे हुए हैं।

विनयशीलता से सम्बद्ध एक और गुण है उनमे जिसका विकास पूरी मात्रा मे हुआ है। यह है दभ का अभाव तथा जो कुछ वे नहीं हैं उसे नही दिखलाने की प्रवृत्ति। वे गाधीवाद मे पूरे बल के साथ विश्वास करने वाले जीव हैं।

डाक्टर साहब की सारी बातें व्यावहारिक और क्रिया प्रेरक होती है। वे कविता अथवा अतिरजन को प्रश्रय नही देते। उनका समग्र दृष्टिकोण ही कर्मठ पुरुष का दृष्टिकोण है और जरूरत से अधिक ब्यौरा न तो वे खुद देते है और न दूसरो से ही सुनना चाहते हैं।

सर्किट हाउस मे श्री बलराम भगत ठहरे हुए थे। मैं उनसे मिलने के बाद सरकारी अतिथि भवन मे गया (जो डॉ० लक्ष्मीनारायण सुधाशु के निवासस्थान से सटे दक्षिण मे—राज्यपाल के मकान के पूरब की तरफ है।) वहाँ बहुत भीड थी। जगजीवन बाबू और डॉ० राम सुभग सिह वही ठहरे हुए थे। मै ज्यो ही ऊपर गया, श्री वीरचन्द पटेल भी आ गये। कुछ देर उनसे बातें हुईं। पटेल साहब के जाने के बाद मैं श्री विष्णुदेव नारायण के साथ श्री जगजीवन बाबू के कमरे मे गया। हम लोग बहुत देर तक बतियाते रहे। जब वहाँ कुछ लोग आ गये तब हम दोनों वहाँ से नीचे आये।

नीचे के कमरे मे डॉ० राम सुभग सिह एक कुर्सी पर बैठे हुए थे। उन्हे घेर कर बहुत लोग बैठे हुए थे। मैं भी चुपचाप सबसे पीछेवाली कुर्सी पर बैठ गया। डॉ० साहब आरा जिले वालो से बातें कर रहे थे। मैं उनकी बातें चुपचाप सुन रहा था। वहाँ बहुत एम० एल० ए०, एम० पी० और भूतपूर्व एम० एल० ए० भी बैठे हुए थे। उनकी बातचीत में व्यावहारिकता का अतल-स्पर्शी पुट था। उनके आननमण्डल पर थी सौम्यता, उनकी प्रकृति मे थी सरलता और व्यवहार में थी विनम्रता। मैंने अनुभव किया कि वे प्रत्येक सचाई के मित्र हैं और प्रत्येक बुराई के घोर दुश्मन। जिसे उन्होने सत्य समझा

उसका उन्होंने जी-जान से समर्थन किया और जो उन्हे असत्य लगा उसकी धज्जियाँ उन्होने निर्भय होकर उडा दी। असत्य से समझौता करना उन्होने सीखा ही नहीं। अपने जिलावालो के प्रश्न का उत्तर देते हुए उन्होने कहा—"एम० एल० ए० और एम० पी० मिल कर सलाह कर लें।" इसके बाद उनकी नजर कुछ भूतपूर्व एम० एल० ए० पर पडी। उन्होने फौरन अपनी बात मे उनका भी जिक्र किया ताकि वे यह महसूस न करे वे हमे भूल गये। इस प्रकार मैंने अनुभव किया कि वे यह नही चाहते कि उनके किसी व्यवहार या बात से किसी के दिल पर चोट पहुँचे। उनमे वस्तुत एक कोमल हृदय छिपा हुआ है। वे जहाँ रहेगे, मनोविज्ञान से अपना नाता अवश्य कायम रखेगे। इस प्रकार वे घटो बाते करते रहे और मैं चुपचाप श्रोता बना रहा। लेकिन ज्यो ही उनकी नजर पीछे की ओर गई, वे उठ गये और अपने जिला वालो को कहा—"पाँच मिनट आप लोग बैठे।" वे मेरे पास आये। मैं उठ गया। मेरे प्रणाम करने के पूर्व ही उन्होने मुझे प्रणाम किया। इस बात मे वे जीत गये, क्योकि इस तरह का मौका मैं जल्दी लोगो को नही देता। हम दोनो एक कोने मे खडे होकर बातें करने लगे। महीनो पूर्व मैंने उन्हे एक पत्र लिखा था। उसकी भी उन्होने चर्चा की। जो दिनरात सरकारी फाइलो से घिरा रहने पर भी बराबर कांग्रेस के सगठन मे लगा रहता है और मेरे जैसे छोटे-छोटे लोगो के पत्र की बाते भी नही भूलता उसके विषय मे यही कहा जा सकता है कि वे महापुरुष है। यह विशेषता मैंने बाबूसाहब, राजेन्द्रबाबू, और नेहरू जी मे पाई थी। और आज यह विशेषता डॉ० राम सुभग सिंह मे देखकर मन हर्षोत्फुल्ल हो उठा। इतिहास का कथन है कि महापुरुषो के देहान्त के बाद पचास वर्षों के उपरान्त उनकी जगह उनकी तरह ही प्रतिभाशाली व्यक्ति आता है लेकिन मैं इतिहास की यह बात सच मानूँ या अपनी आँखो देखी बात। अभी उन महापुरुषो को गये दस वर्ष भी नही बीते। यह हमारा सौभाग्य है कि महापुरुष के रिक्त स्थान को डॉ० साहब सभी अर्थों मे भरते हैं। वे जब उठकर मेरे पास आये तब सभी की नजरे मेरी ओर पड गयी। सभी व्यक्ति मेरे घर (सिताबदियारा) से केवल दस-पाँच कोस की दूरी के निवासी थे और जो दूर के थे वे भी मुझे अच्छी तरह जानते और पहचानते थे। मैं बाहर घूमता ही रहता हूँ। जहाँ कही भारत मे मैं जाता हूँ, डॉ० साहब की प्रशसा ही सुनता हूँ। लेकिन विगत १८ जून, १९६६ ई० को मैं उनसे जितना प्रभावित हुआ उतना उससे पहले कभी नही हुआ था। उनसे बतियाने के बाद मैं बाहर आया। जब मैं मोटर पर बैठा, तब विष्णुदेव बाबू से सारी बातें कही।

विगत १९ जून, १९६६ को मध्याह्न काल मे मैं डॉ० सुधांशु जी के पास गया। वे कई दिनो के बाद अपने घर (रूपसपुर-पूर्णियाँ) से आये थे। वे अपनी डाक देख रहे थे। वे अपने कार्यों का सम्पादन करते जाते थे और मुझसे बाते भी। उनसे जब कल-वाली सारी बातें कहीं तब उन्होंने कहा—"डॉ० साहब बड़े ही व्यवहार-कुशल आदमी

हैं।" मैंने उन्हें कहा—"नम्रता के भी वे अवतार मालूम होते है।" इस पर सुधाशु जी बोले—'तुम्हारा अनुभव, दूरदर्शिता, मनोविज्ञान, विद्वत्ता, आदमी को पहचानने की अक्ल और लोगो की अपेक्षा कही अधिक है।" मैं अपनी तारीफ सुनकर मन-ही-मन प्रसन्न हो रहा था लेकिन उससे भी अधिक प्रसन्न था डॉ० राम सुभग सिह के व्यवहार और नम्रता से। मैंने महसूस किया कि मेरी प्रसन्नता ने मेरी औसत आयु से कम-से-कम दस वर्षों की वृद्धि की है।

पद-मर्यादा उन्हे अभिमानी नही बना सकती और न कर्तव्य-परायणता उन्हे विषण्ण ही कर सकती है। अपने समय का एक-एक क्षण वे देश के लिए व्यय करते हैं और इस महान् व्रत मे अपने को पूरी तरह से खपा देने मे उन्हे सच्चा आनन्द मिलता है। धनी के जीवन का आनन्दाधार धन और विद्वान के जीवन का आनन्दाधार विद्या होती है किन्तु देश सेवा के व्रत को धारण करने वाले तपस्वी के जीवन का आनन्द जनता की सेवा मे बसता है। डॉ० साहब इस सेवा का आनन्द लेते हुए जीते रहे और इसी मार्ग से अपना चरम विकास करें—यही कामना है। भगवान ऐसे कर्मठ जनसेवक देश के कोने-कोने मे पैदा करे।

आपका जन्म ७ जुलाई, १९१७ ई० को बिहार प्रान्त के आरा जिले के खजुरिया नामक गाव मे हुआ था। टाउन स्कूल आरा की शिक्षा उन्होने १९३४ ई० मे समाप्त की। काशी विद्यापीठ से वे शास्त्री परीक्षा पास हुए। सन् १९४६ ई० से १९४९ ई० तक उन्होने मिसूरी विश्वविद्यालय मे अध्ययन किया। १९४८ ई० मे वे एम० ए० हुए और १९४९ ई० मे पी० एच-डी०। दिसम्बर, १९४९ ई० मे मिसूरी (कोलम्बिया, सयुक्त राज्य अमेरिका) से स्वदेश लौटे। अप्रैल, १९५२ ई० मे वे शाहाबाद जिला नहर किसान काग्रेस के प्रधान हुए। इसके पूर्व वे अस्थायी ससद् (१९५०–१९५२) के सदस्य थे। तब से आजतक वे लोक सभा के सदस्य हैं। जनवरी, १९६१ ई० से वे काग्रेस कार्यकारिणी समिति के सदस्य हैं। १९५५ ई० से १९६२ ई० तक वे ससदीय काग्रेस दल के सचिव रहे। १९५३ से १९५४ ई० और १९६३ ले १९६५ ई० तक वे संसदीय काग्रेस दल कार्यकारिणी के सदस्य हुए। ८ मई, १९६२ ई० से ८ जून, १९६४ ई० तक वे भारत सरकार कृषि के मन्त्री थे, ९ जून से १३ जून, १९६४ तक वे समाजिक सुरक्षा मन्त्री थे और १३ जून, १९६४ ई० से वे रेलवे राज्य मन्त्री हैं। उनकी पत्नी का नाम श्रीमती धनवती सिंह है। डॉ० राम सुभग सिंह के चार पुत्र और एक पुत्री हैं। सितम्बर, १९६२ ई० मे कुआला लम्पुर मे अन्तरराष्ट्रीय चावल आयोग के आठवे सत्र और खाद्य एव कृषि सगठन के छठे सम्मेलन मे वे भारतीय शिष्टमण्डल के नेता थे। वे फरवरी मार्च, १९६४ ई० मे कुआला लम्पुर मे अफ्रीकी एशियाई ग्राम्य पुनर्निर्माण सम्मेलन के प्रथम सामान्य सत्र मे भारतीय शिष्टमण्डल के नेता थे। वे शतायु हों यही कामना है।

डॉ० हरिवंश राय "बच्चन"

स्यात् सन् १९३२–३३ ई० की बात है। उन दिनो मैं बनारस मे अधिकतर रहता था। मैं प्रतिदिन सायकाल मे कविवर "प्रसाद" जी की दुकान पर उनके साथ बैठता था। अनेक साहित्यकारो का जमघट होता था। एक दिन लोगो ने "बच्चन" जी को काशी विश्वविद्यालय में बुलाया। चन्द व्यक्तियों ने मुझे भी कविता सुनने को आमन्त्रित किया लेकिन किसी कार्यवशात् मैं नही जा सका। दूसरे दिन जब मैं सध्या मे श्री हनुमान प्रसाद वैद्य शास्त्री के यहाँ से आचार्य शिवपूजन सहाय जी के साथ "प्रसाद" जी के यहाँ पहुँचा तब देखा कि "निराला" जी बैठे हुए थे और कुछ और लोग भी थे। वार्तालाप के मध्य मे "प्रसाद" जी ने मुझे पूछा—"मधुशाला सुनने के लिए क्या आप विश्वविद्यालय मे गये थे?" मैने मजाक करते हुए कहा—"मधुशाला मे लोग पीने को जाते हैं या सुनने को?" उसी समय श्री लक्ष्मीनारायण सुधाशु भी वहाँ पहुँचे और कहा—"जिस समय लोग "मधुशाला" सुन रहे थे, सुहृदजी मेरे साथ डॉ० भगवानदास जी के यहाँ बैठे हुए थे और "द्विज" जी भी।" मेरी बात पर एक सज्जन ने मजाक करते हुऐ मुझे कहा—"अरे यार, पक्के बिहारी हो।" मैंने उत्तर दिया—"इसमे भी कोई सन्देह है?"

उसके बाद से "बच्चन" जी की कविताएँ जहाँ-तहाँ पढने को मिलती रही। उन्हे सर्वप्रथम देखा मुँगेर जिला हिन्दी साहित्य सम्मेलन के अवसर पर मुगेर मे। मझौला कद, दुबला-पतला शरीर, आँखो मे मस्ती, सुन्दर चेहरा, ललाट पर दिव्य ज्योति, वाणी मे अपना-पन और मिलनसारिता की प्रतिमूर्ति। जब उन्होंने मुँगेर टाउनहाल मे हजारो श्रोताओ को "मधुशाला" सुनायी तब लोग झूमने लगे। लोग कविता सुनाने का आग्रह करते रहे। अन्यान्य कवियो को लोग मच पर देखना ही नही चाहते थे। अन्त मे निश्चय हुआ कि "बच्चन" जी को एक दिन और ठहराया जाय तथा श्री कृष्ण मिश्र जी ने घोषित किया—"बच्चन" जी को हम आप लोगों की ओर से तथा अपनी ओर से एक दिन और रुक जाने के लिए आग्रह करेंगे। आप लोग अब अन्य आगत कवियो को कविताएँ पढने का अवसर दें और शान्तिपूर्वक सुनें।" दूसरे दिन बच्चन जी की कविताएँ सुनने के लिए बड़ी भीड़ उमडी। आशका थी कि कोलाहल कविताओ के सुनने मे बाधक होगा। लेकिन वह ज्यो ही कविता पढ़ने लगे, ऐसा प्रतीत होने लगा कि उनके सिवा वहाँ कोई

डॉ० हरिवंश राय 'बच्चन'

व्यक्ति नही है। मैंने प्रथम बार "मधुशाला" सुनी। कवि का कंठ बडा सुरीला था और पढने का ढग निराला। इसके अनन्तर अनेक बार उनकी कविताओ को सुनने के अवसर प्राप्त हुए। उन्हें निकट से देखने और पहचानने के अनेक अवसर प्राप्त हुए मुझे। उनका व्यक्तित्व निश्छल और निष्कपट है। चेहरा हृदय के भावो का दर्पण होता है—यह उक्ति उनके चेहरे के सबध मे अक्षरश सत्य है। वह क्या सोचते हैं, उनकी भावना क्या है, यह उनके चेहरे पर प्रतिबिम्बित रहता है। उनमे न बनावटीपन है न दिखावटीपन। उनमे शिष्टता कूट-कूट कर भरी है जो बहुत कम लोगो मे देखने को मिलती है।

सन् १९३५-३६ ई० की बात है। श्री नीतीश्वर प्रसाद सिंह (अब एम० एल०-ए० उपकुलपति, बिहार विश्वविद्यालय) ने सुहृद सघ का उत्सव मुजफ्फरपुर मे बडी धूमधाम के साथ किया था। श्री जैनेन्द्रकुमार, श्री भगवतीचरण वर्मा, श्री बच्चन, श्री दिनकर, श्री गोपाल सिंह नेपाली, श्री सुधाशु आदि मच पर आसीन थे। जलसा दो दिनों का था। "दिनकर" जी कवि-सम्मेलन के पूर्व ही चले गये थे। कवि-सम्मेलन का सभापतित्व किया श्री वर्मा जी ने। उन दिनो कवि-सम्मेलन मे आज की अपेक्षा अधिक लोग आते थे। एक-दो कवियो की कविताएँ सुनने के बाद जनता शोरगुल करने लगी। श्री चन्द्रेश्वर बाबू ने (अब राज्यपाल, पजाब) ने मुझे कहा—"आप कह दें कि लोग शोरगुल न करे।" मैंने अपने व्यक्तित्व का स्मरण किया और सोचा कि मुजफ्फरपुर के महान् पुरुष को मुझ पर इतना विश्वास है कि वह सोचते है कि मेरे कहने से शोरगुल बन्द हो जायेगा और वातावरण शान्त हो जायेगा। मैं मच पर गया, जनता की आँखे मुझ पर पडी और मैंने शोरगुल करने वालो की ओर सकेत करते हुए कहा—"अगर आप लोग शान्त न रहेगे तो हम लोग कविता पढना बन्द कर देगे और साथ-साथ कवि-सम्मेलन भी।" लोग शान्त हो गये। मेरा प्रभाव देखकर श्री वर्मा जी ने एलान किया कि अब सुहृद जी कविता-पाठ करेगे। मैं ज्यो ही कविता पढने को मच पर खडा हुआ, तालियो की गड़गडाहट ने मेरा स्वागत किया। मैंने "कुवरसिंह" शीर्षक कविता सस्वर सुनायी जिसे लोगो के आग्रह पर कई बार पढा। वर्मा जी, बच्चन जी आदि के कठ इतने सुरीले थे कि हमारा कठ उनकी तुलना मे सुनने लायक भी नही थे। लेकिन उनका रग फीका रहा और मेरा जम गया—इसका यह कारण नही था कि मैं उनकी अपेक्षा अधिक अच्छी कविताएँ लिखता था या अधिक अच्छे ढग से पढता था वरन् हमारी कविता मे राष्ट्रीय भावना थी और लोग राष्ट्रीय भावना में बहने के आदी हो गये थे। तब तक "कुवरसिंह" पर एक या दो कविताए ही लिखी गयी थीं। मैं जिस सम्मेलन मे जाता था यही कविता पढता था। वर्मा जी ने जो कविता पढी थी उसकी चन्द पंक्तियाँ मुझे याद हैं—

> "हम दीवानों की क्या हस्ती है आज यहाँ कल वहाँ चले।
> मस्ती का आलम साथ चला, हम धूल उड़ाते जहाँ चले।

आये बनकर उल्लास अभी आँसू बनकर बह चल अभी।
सब कहते ही रह गये—अरे, तुम कैसे आए, कहाँ चले,"

रात्रि मे "बच्चन" जी की "मधुशाला" पाठ से एक गोष्ठी का श्री गणेश हुआ। लोगो ने एक बजे रात तक उनसे कविताएँ पढवायी। न वक्ता की मस्ती मे कमी हुई न श्रोता की मस्ती मे ही।

सन् १९५२–५३ ई० की बात है। छपरे मे राजेन्द्र पुस्तकालय का वार्षिकोत्सव था। प्रान्त के और प्रान्त के बाहर से अनेक साहित्यकार आये थे। उन दिनो आचार्य शिवपूजन सहाय जी राजेन्द्र कालेज, छपरा मे हिन्दी के प्राध्यापक थे। उन्होने आने के लिये मुझे भी दो-तीन पत्र लिखे थे। जिस जगह राजेन्द्र पुस्तकालय स्थापित है वह विख्यात स्थान है। वहाँ धर्मनाथ जी का मन्दिर है। राजेन्द्र पुस्तकालय जिस जमीन पर अवस्थित है उसे धर्मनाथ जी के महत ने ही दान दिया है। महत जी मेरे परिवार के सदस्यो के गुरु हैं। दूर-दूर से लोग मदिर मे पूजा करने को जाते है। मन्दिर सरयू-तट पर अवस्थित है। पुस्तकालय के वार्षिकोत्सव का उद्घाटन किया बिहार के तत्कालीन अर्थ मत्री डॉ० अनुग्रहनारायण सिह ने। बाबूसाहब से खिच कर अनेक राजनीतिज्ञ भी आये थे और जिला भर के अफसर भी। वस्तुत यह एक बहाना था। लोग आये थे "बच्चन" जी की कविता सुनने को प्रधान रूप मे। जब "बच्चन" जी कविताएँ पढने लगे, लोग मस्ती के सागर मे डूबने लगे। "नारायण" जी, रुद्र जी आदि अपनी कविताएँ पढना भूल गये। लेकिन छपरा की जनता अपने अतिथियो को नही भूलती। उसने इन कवियों से भी कई कविताएँ पढवायी। सभा-विसर्जन के उपरान्त मै बाबू साहब (डॉ० अनुग्रह नारायण सिह) के साथ सर्किट हाउस मे ठहर गया। उन्होने मुझे कहा—"बच्चन" जी की सब किताब खरीद के हमरा के दे जाईं। बहुत अच्छा कविता सब उनकर बा। गीत तऽ उनकर इतना अच्छा रहल हा जैसे मालूम होता कि मीरा के होखे।" इस पर मैंने उन्हे कहा—"ई सब गीत "बच्चन" जी बेगूसराय मे ही लिखले रहलन उहाँ एक महीना रहलन।' प्रभात में बाबू साहब हवाई जहाज से पटना चले गये और मै अपने गाँव सिताबदियारा। दो-तीन दिनो के बाद जब मैं गॉव से सुहृदनगर पहुँचा तब बाबू साहब का पटने से आया पत्र देखा जिसमे "बच्चन' जी की लिखी पुस्तकें भेजने का तकाजा था। जब मैं पटना पहुँचा तब "बच्चन" जी की जो पुस्तके मुझे उपलब्ध हुईं, मैं बाबू साहब को दे आया।

"बच्चन" जी दूसरो के दुख से द्रवीभूत हो जाते है। वह अपने मित्रों की ही सहायता नही करते वरन् अपने अनिष्टकर्त्ता को भी क्षमा कर देते हैं। उनका ज्ञानार्जन उनकी सचय-वृत्ति का फल है। वह आडम्बरहीन हैं। वह निरभिमानी है। वह मिलने वालों के तांतो से अपना धैर्य नही खोते। वह किसी के साथ भूलकर भी अप्रिय व्यवहार नहीं करते। वह अतिथि को देवता मानते हैं। उनके पास जो पहुँचता है वह

उसे समभाव से अपनाते है और अपने स्वाभाविक स्नेह से उसे मुग्ध कर लेते है। वह हमारे साहित्य की जीवन ज्योति जगाने वालो मे विशिष्ट स्थान के अधिकारी है।

सन् १९६४ ई० के जुलाई-अगस्त की बात है। गणेशदत्त कालेज बेगूसराय मे कोई साहित्यिक उत्सव था। मुझे यह ज्ञात न था कि "बच्चन" जी और "नारायण" जी उत्सव मे पधारने वाले हैं। उन दिनो मैं मथुरा मे एक सभा मे भाग लेने गया था। और वहाँ से दूसरी बैठक मे सम्मिलित होने को लखनऊ गया। वहाँ साहित्यिको के चगुल से निकल न सका। दूसरी बात यह थी कि श्री नारायण जी चतुर्वेदी से मिलने का लोभ-सवरण मैं नही कर पा रहा था और वह लखनऊ से बाहर गये हुए थे। पुराने क्रान्ति-कारियो की एक बैठक भी थी। मैं मिलने को चला गया। अत समय पर बेगूसराय न पहुँचा। दो बजे रात्रि मे बेगूसराय पहुँचा। सुबह मे फोन आया कि कविवर 'बच्चन' जी और कविवर "नारायण" जी श्री रवीन्द्र नारायण के यहाँ ठहरे हुए हैं। जब मेरे पहुँचने मे देर हुई, चूकि बाहर से मिलने को कुछ लोग आ गये थे तब श्री अरविन्द अपनी गाडी लेकर सुहृदनगर आ गये। जब मै श्री अरविन्द के साथ चला और उनके घर पहुचा तब ज्ञात हुआ कि वे लोग प्राध्यापक श्री आनन्द नारायण शर्मा के यहाँ गए हैं। उनका घर विष्णुदेव बाबू के घर के आमने-सामने है। मैं उनके यहाँ ज्यों ही गया, बच्चन जी कुर्सी से खडे हो गये और मेरे चरणो को छू कर प्रणाम किया। मैंने उन्हे गले से लगा लिया। मैं जब तक वहाँ रहा सोचता रहा कि इतना महान् पुरुष मेरे चरणो को छूकर जो प्रणाम करता है वह उनकी महत्ता और नम्रता का परिचायक हैं। वह देवता है या मनुष्य या उससे भी कोई श्रेष्ठ प्राणी हैं? मैं चिन्तन की जिस दिशा में उड़ा उसने मेरी आँखो मे आँसू भर दिये। मैंने "बच्चन' जी से आग्रह किया कि आप लोग कुछ देर के लिए मेरे यहाँ चलें और वहाँ जलपान आदि करें। लेकिन उन्होने यह कहते हुए विवशता प्रकट की कि प्रथम बात तो यह है कि मुझे मुजफ्फरपुर जाना है और दूसरी बात यह है कि आज मेरा मगल व्रत है। वह बोले—मुजफ्फरपुर मे सर्वप्रथम हनुमान जी के दर्शन करूँगा—तत्पश्चात् अन्न-जल ग्रहण करूँगा।" उनकी विवशता और भक्ति भाव देख-कर मैंने विशेष आग्रह नहीं किया। गाडी आई और वे लोग मुजफ्फरपुर के लिए प्रस्थान कर गए। मुझे यह जानकर हार्दिक प्रसन्नता हुई कि वह हनुमान जी के उपासक है। मैं भी हनुमान जी की शक्ति पर बहुत भरोसा रखता हूँ और प्रभात से पूर्व स्नान आदि के पश्चात् हनुमान चालीसा का पाठ करता हूँ। वस्तुतः शक्तिशाली व्यक्ति ही सबके सामने झुकता है, ठीक, उसी प्रकार, जिस प्रकार फला हुआ आम।

उनकी कविताओ मे मोहक सगीत है। उनकी कविताओं मे गेयता प्रचुरमात्रा मे है। वह अपने युग के सर्वाधिक सफल और सर्वाधिक प्रभावशाली गीतकार हैं। उन्होने अभी तक जो भी साहित्य सरजा है उसके बल पर ही वह अमर रहेगे और युग-युग तक युग के लिए अविस्मरणीय रहेगे। हिन्दी में उनका जितना विरोध हुआ अन्य किसी कवि

का नहीं हुआ। लेकिन वह निन्दा और स्तुति से निरपेक्ष रहे और गाते रहे—

"करे कोई निन्दा दिनरात,
सुयश का पीटे कोई ढोल।
किये अपने कानो को बन्द,
रही बुलबुल डालो पर बोल।"

उनकी प्रथम पुस्तक "मधुशाला" है जिसमे उन्होने अपना अभीष्ट इस रूप मे व्यक्त किया है—

"भावुकता अंगूर लता से
खीच कल्पना की हाला,
कवि बनकर है साकी आया
लेकर कविता का प्याला।
यह न कभी भी खाली होगा,
लाख पिये, दो लाख पिये,
पाठक गण हैं पीने वाले,
कविता मेरी मधुशाला।"

लोगो ने उन पर आक्षेप किया कि वह ईरानी कवि उमर खैयाम की पुरानी शराब नयी बोतल मे ढाल रहे है लेकिन समय ने सिद्ध कर दिया कि वह हिन्दी के सबसे बडे मौलिक-विद्रोही कवि है।

कर्म-क्षेत्र के व्यवहार-विद् "बच्चन" से पृथक् उन्होने एक पूर्णत. भिन्न व्यक्तित्व सजो रक्खा है। दूसरे शब्दो मे यदि उनके व्यक्तित्व मे कर्म कठोरता है, विचार-शुष्कता है तो दूसरे व्यक्तित्व मे स्वप्नो की सजलता भी और कल्पनाओ की सरसता भी, क्योकि

"कर्म से जब शिथिल होता,
शक्ति देती भावना है।'

वास्तव मे हमारी आशाओं, अभिलाषाओ, उच्चाकाक्षाओ, अभिरुचियो, उत्साहिता आदि को हमारे स्वप्नो के अमृत कुण्ड से ही सजीवनी शक्ति का अक्षय स्रोत मिलता रहता है। इसीलिए शकराचार्य ने कहा है कि कर्म जड़ है और स्वप्न चेतना। मैं कहूँगा, 'बच्चन" जी ने जर्मनी के महान् कलाकार गेटे के इस विचार को पूर्णत हृदयगम कर लिया है कि हम अपनी यथार्थता पर नही, स्वप्न पर जीते हैं—यदि स्वप्न की ज्योति बुझ जाये तो हम भी वैसे ही जड हो जायें, जैसे ये शिलाखण्ड एव पर्वत-श्रेणियाँ है। आन्द्रेमोरा की विश्वविख्यात पुस्तक "दी आर्ट ऑफ लिविंग" के इस विचार से भी वह सहमत हैं—"जब बुद्धि के असयत बोझ और विवेक के हठीले अकुश से सन्तप्त जीवन की कविता के पख थक जायें और आपको कर्म के मरुस्थल से परे ले जाने के लिए जीवन की तृष्णाएँ आपके आग्रह के बावजूद इन्कार कर दें—भले ही, वे

आपको किसी मृग मरीचिका की ओर ले जाये—तो या तो जीते जी मृत्यु का वरण कीजिए या फिर मेरी इन पक्तियो पर अमल कीजिए और जीवन प्राप्त कविता के पखो पर बैठकर—चाहे क्षणभर के लिए क्यो नही—इस ब्रह्माण्ड के सारे वैभव को अपनी हस्ती मे समेट लीजिए। लीजिए ये है वे पक्तियाँ, जिनका एक-एक अक्षर अनुभूति की विद्युत् से लिखा गया है—"जब मन का वायु आपकी जीवन-सरिता मे तरगें, उत्पन्न करने मे असमर्थ हो जाये तो उस पर कल्पना का अमृत छिडकिये, तन के द्वार को बन्द कर मन को सीमाहीन छोड दीजिए और शिशु की भाँति अपने को दिवा-स्वप्नो मे लय कर दीजिए। बस, इतना ही काफी है, आपके रन्ध्र-रन्ध्र से अमृत का सचार होने लगेगा और तब आप जीवन और आनन्द मे किसी प्रकार का अन्तर नही पा सकेगे।" यही कारण है, "बच्चन" जी प्रकृति की शरण मे पहुँचते है क्योकि—

"जहाँ इन्द्रधनुषी रगो से
चित्र खीचती हैं आशाएँ,
जिनकी रेखाओ मे अकित,
नव जीवन की परिभाषाएँ,
जहाँ शक्ति चरणो को मिलती,
नयी चेतना से भर कर मैं गा लेता हू।
राह जिन्दगी, मैं चलता हूँ।
छाँह स्वप्न है जहाँ तनिक सुस्ता लेता हूँ।"

"बच्चन" जी सामाजिक समता के प्रबल पक्षपाती है। वह वर्तमान सामाजिक व्यवस्था मे आमूलचूल परिवर्तन लाना चाहते हैं। वह जहाँ गांधीवाद से प्रभावित हैं वहाँ मार्क्सवाद से भी। उन्होने एक नयी शैली निकाली जिसमे लहरें भी है, सरसता भी है, प्रवाह भी है, सन्तुलन भी है और गहराई भी। सक्षेप मे ज्ञान उपनिषद् का और अभिव्यक्ति लोरियो की-सी—यही उनकी शैलीगत विशेषता है। इस विशेषता की प्राप्ति के लिए उन्होने बहुत प्रयोग आरभ किये। उनकी शैली के दो रूप हैं—(क) सूत्रात्मक और (ख) भाष्यात्मक। उनकी पहली शैली जहाँ गागर मे सागर भरती है वहाँ उनकी दूसरी शैली गागर में सागर नही उडेलती, अपनी सीमा का अतिक्रमण नही करती। उनकी पहली शैली मे जहाँ उनके विचार पुजीभूत प्रकाश की तरह जाज्ज्वल्यमान रूप से जडे होते है वहाँ उनकी दूसरी शैली मे सूर्य की किरणो की भाँति चतुर्दिक् बिखरे होते हैं। यही कारण है कि वह जहाँ प्रौढ पाठको की ज्ञान-वृद्धि करते हैं वहाँ साधारण पाठको का मनोरजन भी। उनकी शैली पर उर्दू और सस्कृत कवियों का भी प्रभाव है।

वह अतिशय उदार है। उनकी कविताओ मे शरीर-तत्त्व की अपेक्षा आत्म-तत्त्व की अधिकता है। वह तन से ही मृदु नही हैं, वरन् मन से भी। उनकी विनम्रता

की कोई सीमा नही है। वह इतने कोमल हैं कि किसी के आगे तनकर खडे नही हो सकते। वह सर्वदा झुके हुए और अपने को सब तरह से अर्पित कर देने को प्रस्तुत दिखते है। वह सुरुचि सम्पन्न हैं और कला-प्रेमी भी। उन्होने जीवन के दैन्य का गरल-पान किया है जिसकी तीव्रानुभूतियो का उच्छल प्रवाह उनके गीतो से फूटता है। करुणा और स्नेह के रस से अभिसिक्त उनकी भाव-भूमि है। यही कारण है, उनकी अनुभूतिलता की हरीतिमा सदा अक्षुण्ण रहती है। उनके काव्य पुष्पो की सुरभि मादकता ने हमारे साहित्यिक वातावरण में एक अद्भुत मोहिनी माया का इन्द्रजाल रचा है। उनकी वेदनाओ के अन्तराल मे स्वानुभूतियो की फुहारे है। यही कारण है, जब हम उनके करुण गीत पढते है या सुनते है तब हम करुण रस की सरिता मे डूब जाते है। वस्तुतः उन्होने आँसुओ के देश मे जो कुछ सीखा है उसे ही गीतो की रागिनी के द्वारा हमे सिखाने की चेष्टा की है। यही कारण है, हम उनकी प्रशसा और पूजा करने को विवश हो उठते हैं।

वह मैत्री धर्म की सौन्दर्य रक्षा मे सदा तत्पर रहते है। उनका प्रेमपूर्ण हृदय यह नही चाहता कि उनके मन, वचन या कर्म को शत्रु स्रष्टा की सज्ञा प्राप्त हो। वह अपने चारों ओर सद्भाव, सौजन्य, शान्ति और सहिष्णुता का वातावरण बनाये रखने मे सदा सक्षम होते है और सफल भी। वह छोटे-बडे सबके साथ हिल-मिलकर सहयोग और सहानुभूति का ताना-बाना बुनते है। यही कारण है, उनकी मित्र मण्डली की सीमा उतनी बड़ी है जितनी बडी स्वय मैत्री की सीमा न होगी।

उनका वास्तविक नाम हरिवशराय है। उनका जन्म १९०७ ई० मे प्रयाग मे हुआ था। वह प्रयाग विश्वविद्यालय मे अग्रेजी के अध्यापक रहे है और भारत सरकार के विदेश मत्रालय के वरिष्ठ अधिकारी भी। उन्होने कैम्ब्रिज विश्वविद्यालय से डाक्टरेट की उपाधि प्राप्त की। सम्प्रति वह राज्यसभा के मनोनीत सदस्य है। उनकी पुस्तको के नाम यह हैं—

"मधुशाला," "निशा निमंत्रण," "सतरंगिनी," "बगाल का अकाल," "खादी के फूल" आदि।

श्री राहुल सांकृत्यायन

सन् १९२१-२२ ई० की बात है। महात्मा गाधी का असहयोग आन्दोलन शुरू हो चुका था। भारतवर्ष की राजनीतिक जिन्दगी मे अजीब तूफान उठ खडा हुआ था। मुल्क ने व्यापक रूप से प्रथम बार अग्रेजी शासन के विरुद्ध खुलेग्राम लडाई छेडी थी। हिंदू हो या मुसलमान, चाहे स्त्री हो या पुरुष, बूढा हो या जवान, गरीब हो या अमीर, सब कन्धे से कन्धा भिडाकर हिन्दुस्तान से ब्रिटिश सल्तनत को उखाड फेकने को तैयार हो गये थे। प्राणो मे पीडा, जीवन मे उन्माद, आँखो मे उत्सर्ग का तेज, हृदय मे विश्वास तथा मुख मण्डल पर आशा-नैराश्य की धूप-छाँह लिए राष्ट्र का शरीर एक अभिनव चेतना से कम्पित हो रहा था। महात्मा जी के असहयोग का बिगुल फूँकने की देर थी कि विद्यार्थियो ने स्कूल-कालेज छोडे, वकीलो ने चलती वकालत पर लात मारी और अनेक सरकारी अफसरो ने गुलामी की पोशाक उतार फेकी। त्याग और सेवा की सार्वजनिक भावना ने सम्पूर्ण राष्ट्र को एक बार उद्वेलित कर दिया। मैं उन दिनो राजपूत स्कूल (छपरा) का छात्र था। मुझ पर भी देश सेवा की धुन सवार हुई और पढना-लिखना छोड असहयोग-आन्दोलन मे कूद पडा। मेरे स्कूल से सटे हुए उत्तर वाले विशाल भवन मे जिला काग्रेस का दफ्तर खुला। रात के जाडे मे चन्द मित्रो को अपनी तुकबन्दिया सुना रहा था। उस समय एक लम्बा जवान मेरी बगल मे बैठकर चुपचाप मेरी कविताएँ सुनता रहा—दिव्य ललाट, भव्य चेहरा, आँखो मे मिलनसारी, ठेहुने तक काले कम्बल का कुरता और सिर पर कम्बल की ही टोपी। वह मेरी कविताओ को सुनकर भाव-मग्न हो जाता और बडी गम्भीरता से अपना सिर हिलाने लगता था। जब मैंने कविताएँ पढना बन्द किया तब उसने कहा—"ई कविता पूरा हम ना सुननी हँ। एक बार और ओकरा के पढी।" उनकी इच्छा पूर्ति के लिए मैंने अन्तिम कविता फिर पढी। बाद मे बाबू प्रभुनाथ सिंह, उपाध्यक्ष, बिहार विधान-सभा (सभापति, प्राक्कलन समिति, बिहार विधान-सभा) ने परिचय कराया—'आप है राम उदार दास जी और अपने ही जिले मे 'महत' है!' वे भी असहयोग-आन्दोलन मे काम कर रहे थे। धीरे-धीरे परिचय प्रगाढ मैत्री मे परिणत हो गया। जब कभी आवश्यकता होती थी, हम दोनो छपरे के देहातो मे जाते थे। एक रोज रात में घूमते हुए हम हथुआ पहुँचे और काग्रेस-भवन मे जाकर ठहरे।
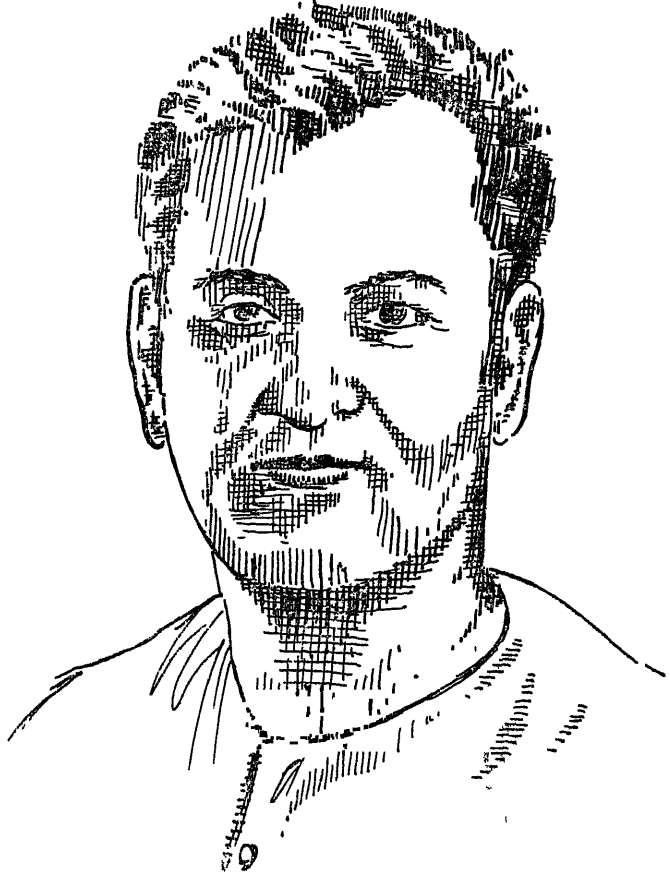
श्री राहुल सांकृत्यायन

दूसरे दिन राजेन्द्र बाबू आने वाले थे। उनके साथ कटया, भोरे आदि थानो में जाना था। राम उदार दास जब देहातो मे जाते थे तब वे झोले मे अंग्रेजी की मोटी-मोटी किताबें ले जाते थे और जहाँ ठहरते थे, वहाँ पढने लगते थे। उस समय हथुआ काग्रेस-भवन मे, जहा हम लोग ठहरे हुए थे, साठ साल के वयोवृद्ध सज्जन पधारे और राम उदार दास जी की बगल मे बैठ गये। कुछ देर बाद वे राम उदार दास जी से पूछ बैठे—"ए बाबा, रउवा सभनी अंग्रेज के भगावे खातिर गाँव गाँव घूमत बानी, अतना तकलीफ करत बानी और फोर ओकरे किताब वा पढता बानी ?" यह सुनकर राम उदार-दास जी मुस्कुराये और वयोवृद्ध सज्जन को समझाना शुरू किया—"किताब सब भाषा के पढे के चाही। ओकरा पढब तभीए न ओकरा बारे मे कुछ जानब।" जब राजेन्द्र-बाबू आये तब हम लोग इक्के पर कटया थाने की ओर चले। जब कटया पहुँचे तब वे वयोवृद्ध सज्जन भी साथ थे। सभा प्रारभ होने से पूर्व सभी व्यक्ति बातें कर रहे थे। राजेन्द्र बाबू का घरेलू नाम राजा बाबू था। वयोवृद्ध सज्जन राजेन्द्र बाबू के जवार के ही रहने वाले थे और राजेन्द्र बाबू की अवस्था से अधिक अवस्था के थे। वे उनसे बोले—"ए राजा बाबू, इ जे साधु बाबा साथ मे बाडन इ तऽ भर मोटा किताब अंग्रेजी के पढत रह गइलन रात भर। इनकरा ओजह से तऽ हमरा रात भर नीद न आइल। ई अंग्रेजिआ काहे पढ तबाडन ?" राजेन्द्र बाबू जैसे गम्भीर व्यक्ति को भी इन बातो से हंसी आ गयी। हम लोग भी हँसने लगे। तब राजेन्द्र बाबू ने कहा—"अपने देश के सब साधु पहले सब भाषा के किताब पढत रहलन और ज्ञान लेके दोसरा देश मे जा के अपना देश के विषय मे भाषण देत रहल लोग। इहो का साधु न हई—जब सब किताब पढब तभीए न ज्ञान मिली।" इन बातों से वयोवृद्ध सज्जन प्रभावित हो गये और यह बात उनकी समझ मे आ गई कि सभी भाषाएँ सीखनी चाहिए। जब हम लोग वहा से लौटे तब राम उदार दास जी ने कहा—"ए सुहृद, ऊ बुढऊ त खूब हमरा पीछे पड गइल रहलन। जब राजेन्द्र बाबू समझवलन ह तब जाके ऊ चुप भइलन।" इस निश्छल निष्कपट भावपूर्ण वाणी से मैं बहुत प्रभावित हुआ।

महापुरुष भविष्य वक्ता होते है। राजेन्द्र बाबू ने १९२२ ई० मे जो कुछ कहा था, राम उदार दास जी ने कालान्तर मे चरितार्थ किया। छत्तीस भाषाओ के विद्वान् होते हुए देश-विदेश-भ्रमण कर अपनी सस्कृति का प्रसार किया और तुलसी ने सही लिखा है—

"बृथा न होहि देव ऋषि वाणी।"

राम उदार दास जी ने राहुल साकृत्यायन के रूप मे ससार मे ख्याति प्राप्त की। वे अन्तरराष्ट्रीय ख्याति प्राप्त कर हिन्दी के स्तम्भ हुए। उनके निधन से हिन्दी मन्दिर सूना लग रहा है।

१९२० ई० मे वे गिरफ्तार हो गये और छपरा जेल से बक्सर जेल भेजे जा

रहे थे। रात्रि की बेला थी। हाथो मे हथकडी और कमर मे रस्सा। मुझे किसी तरह मालूम हो गया कि घोड़ागाडी मे बिठाकर नारायण बाबू और राहुल जी को सिपाही स्टेशन ले गये हैं। मैं भगवान बाजार स्टेशन (छपरा) पहुँचा। वे लोग स्टेशन के पूरब तरफ बिठाये गये थे। पता लगाते-लगाते मैं उनके पास पहुँच गया। गाडी खुलते समय उन्होने कहा—"सुहृद, हमारे किताब सब ठीक से अपना घरे रखवा दीह। ओ मे बहुत नया-नया किताब बामे। ओ मे एको पन्ना नइखी पढले।"

गाड़ी खुली। भरी हुई आँखो से दोनो महापुरुषो से विदाई ली। आन्दोलन शान्त हो गया। जेल से छूटने के बाद मैं भी बेगूसराय मे आकर रहने लगा जहाँ मेरे चाचा और भाई पहले से रहते थे।

१९२७ ई० मे राजेन्द्र बाबू और राहुल जी पटने से बेगूसराय आये। दो बजे दिन मे वे मेरे डेरे पर आये और आराम करने के बाद मीटिंग मे गये। रात मे जब वे भोजन करने लगे तब राजेन्द्र बाबू ने कहा—"आज सुबह से रात कत सिताबदियारा के ही अन्न खात हो गईल। सुबह पटना मे शभु बाबू (देश गौरव श्री जयप्रकाश नारायण के भतीजे) के यहाँ खइली हैं और अभी तोहरा हिआँ।" राहुल बाबा ने हँसते हुए कहा—"सिताब दियारा के अन्न बडा स्वादिष्ट होला। देखत नइखी, खाए मे कितना स्वादिष्ट लागत बा।" भोजनोपरान्त दोनो महापुरुषो से मैं बहुत देर तक बातें करता रहा।

१९२२ ई०। जाड़े का मौसम। सुबह की गाड़ी से राहुल बाबा और मैंने छपरे से परसा थाना जाने के लिए प्रस्थान किया। हम लोग शीतलपुर स्टेशन पर उतरे। राहुल जी के स्वागतार्थ अपार भीड़ उमड़ आयी थी। स्टेशन पर दोनो ओर आदमी खचाखच भरे थे। सजो-सजायी बैलगाड़ी पर हम लोग सवार हुए। परसा डाक बगला के मैदान मे सभा हुई। राहुल जी ने मुझे एक कविता पढने की आज्ञा दी। मेरी कविता से सभा की कार्यवाही प्रारम्भ हुई। कविता के बाद मेरा सक्षिप्त भाषण हुआ। तब राहुल जी ने दो-तीन घण्टों तक भोजपुरी मे भाषण किया। जब हम लोग छपरा लौटे तब राहुल जी ने कहा—"तोहरो ई कविता भोजपुरी मे बा। एह से देहात के सभी लोग के समझ मे आजात बा। लोग पर प्रभाव भी पड़त बा।" इस पर मैंने कहा—"कविता के बाद त रउआ दो-तीन घण्टा भोजपुरी मे ही बोल जात बानी। एहसे अधिक लोग पर भाषण के प्रभाव पडत बा।" यही सब बातें करते-करते हम छपरा कचहरी पहुँच गये। गाड़ी से उतर कर काग्रेस दफ्तर मे गये। दूसरे मैं दिन राहुल जी के साथ बैठकर बातें कर रहा था। उसी समय चार-पाँच आदमी आये। राहुल जी ने उनसे आने का कारण पूछा। तब पण्डित कपिलदेव शर्मा ने कहा—"ये लोग सुहृद जी की शादी के लिए आये हैं। ये लोग इनकी शादी अपने यहाँ करना चाहते हैं।" राहुल जी ने पूछा कि आप लोगों ने क्या इनके घर वालों से बातें की हैं। तब उन लोगों ने

कहा—"इनके घर पर से (सिताबदियारा) अभी हम लोग आ रहे है। घरवालों ने स्वीकृति दे दी है।" तब मैंने कहा कि दो-चार दिनो के बाद मैं अपनी राय कपिलदेव जी को दे दूँगा। वे लोग चले गये। राहुल जी ने शादी करने की राय दी। दो-चार दिनों के बाद मैंने कपिलदेव जी को अपनी स्वीकृति दे दी। उस साल शादी करने की मेरी राय बिल्कुल नही थी लेकिन राहुल जी बराबर इस सम्बन्ध मे जोर देते रहे। १९२२ ई० के जून मे मेरी शादी हुई।

१९३७ ई० की बात है। राहुल जी किसान-सभा मे काम करने लगे। कांग्रेस को उन्होने छोड़ दिया। पटना जिले के अन्तर्गत हिलसा गाँव मे लोगो ने पुस्तकालय का उत्सव मनाया जिसमे राहुल जी को मुख्य अतिथि के रूप मे बुलाया। पटने के बहुत साहित्यिक भी गये थे। लाल बाबू और बाबू कृष्णचन्द्र (काली कोठी, मुजफ्फरपुर) के तार और पत्र मुझे भी आने के लिए मिले। उन लोगो की आज्ञा का पालन कर मैं भी गया। राहुल जी के साथ नागार्जुन जी भी थे। उन दिनो नागार्जुन जी राहुल जी के साथ बराबर रहते थे। रात्रि मे सभा के बाद भोजन हुआ। हम लोग लाला बाबू और बाबू कृष्णचन्द्र के साथ ही ठहरे हुए थे। राहुल जी ने रात मे मुझे कविता पढने का आग्रह किया। रात बहुत बीत चुकी थी। सोने की इच्छा थी। फिर पुराना स्नेह था। उनकी आज्ञा का पालन करते हुए चार-पाँच कविताए मैंने सुनायी। इसके बाद नागार्जुन जी ने भी अपनी एक कविता सुनायी जिसका शीर्षक था—"तुझको प्रणाम।" दूसरे दिन सध्या मे लाला बाबू की गाड़ी से हम लोगों ने प्रस्थान किया। राहुल जी को छपरा जाना था और मुझे भी। जब हम लोग महेन्द्रूघाट आये तब एक सज्जन से भेंट हुई। उन्होने चुपचाप कहा—"राहुल जी ने किसान सभा मे जो भाषण किया है उसके लिए सरकार उन पर मुकदमा चला रही है। उन पर वारन्ट हो गया है।" इन बातो को सुनकर मेरी चिन्ता कुछ बढ गयी। अपनी सरकार, अपनी हुकूमत और राहुल जी कुछ देर के बाद गिरफ्तार होगें। मैं चिन्ता में पड गया। राहुल जी जेटी पर बैठे हुए थे। मैं ऊपर स्टेशन पर टहल रहा था। उसी समय पण्डित मोहनलाल महतो 'वियोगी' से भेंट हुई। उन्होने मुझसे दो-चार सवाल पूछे लेकिन मैं इतना चिन्तित था कि उनको पहचान तक नहीं सका। मैं नीचे जहाज की जेटी पर आया। 'वियोगी' जी भी आये और राहुल जी से बातें करने लगे। मैं अलग हटकर टहलने लगा। राहुल जी ने मुझे अपने पास आने को पुकारा। मैं ज्यो ही उनके पास पहुँचा त्यो ही राहुल जी ने मुझे पूछा—"वियोगी जी के नईखी पहचानत ?" मेरी आँखें खुली। मैं तो शर्मा गया। चट उत्तर दिया—"अगर मैं नही पहचानता तो यहाँ तक बातचीत करते कैसे आता ?" सभी लोग हँस पडे।

छपरा जाने के लिए जहाज खुला। वियोगी जी भी उसी जहाज से किसी सभा मे भाग लेने के लिए गोरखपुर जा रहे थे। जाड़े का दिन था। मैंने राहुल जी को कहा—

"आपसे कुछ खास बातें करनी है।" हम दोनों व्यक्ति नीचे चले गये। वहाँ मैंने उनसे कहा—"आप पर वारन्ट है। आप कल सुबह को गिरफ्तार हो जायेंगे।" तब उन्होने कहा कि जब मैं गिरफ्तार हो जाऊँगा तब तुम जेल मे मिलने आना। मैं सुबह को सिता-बदियारा पहुँच गया। तीसरे दिन राहुल जी गिरफ्तार हो गये। उन्हे छपरा जेल मे रखा गया। दो-चार दिनो के बाद मैं छपरा जेल मे उनसे मिलने गया। उस समय उन्होने एक उपन्यास लिखना आरम्भ किया था। उन्होने मुझसे कहा—"अब उपन्यास लिखे के कोशिश करत बानी। देख कैसन होला।" उन्होने उपन्यास की पृष्ठ भूमि भी मुझे बतायी और जो कुछ लिख रहे थे उसकी पाण्डुलिपि पढकर घण्टो मुझे सुनाते रहे। मै वहाँ से बेगूसराय आया और उसके बाद जब मैं पटना पहुँचा तब तरह-तरह की बाते राहुल जी के सम्बन्ध मे लोगो ने सुनायी। उन्होने रूस मे शादी करली थी। लड़का पैदा हुआ था। उस लडके का फोटो रूस से आया था। फोटो को सरकार ने जेल मे नही जाने दिया। यहाँ वालो कें लिए शादी करना एक रहस्य की बात हो गयी थी।

भारत साधुओ, महात्माओ और फकीरों का देश है। इस देश मे यदि कोई भी व्यक्ति फकीरो की वेशभूषा या कपडा-लत्ता पहनकर चलता है तो उसकी प्रतिष्ठा बढ जाती है, चाहे वह चोर ही क्यो न हो। यदि वह फकीरो की वेश-भूषा मे देहातों मे जाता है तो उसके सामने लोगो का मस्तक झुकने लगता है क्योकि उस वेश-भूषा मे वैराग्य और त्याग की भावना छिपी हुई। हमारे देश मे जितने पथ-प्रदर्शक हुए हैं, उनमें अधिक फकीर ही हुए; जैसे, महात्मा महावीर, बुद्ध, गाँधी आदि। इन्होने अन्त मे घर-द्वार, राजपाट आदि छोड़कर फकीरी ली और जन-जन के हृदय के सम्राट् बन गये। राहुल जी इन्ही फकीरो मे एक थे। सन् १९२२ ई० की बात है। छपरा शहर से छह मील पश्चिम रिभीलगज रेलवे स्टेशन के पश्चिम वाले मैदान मे बाबू महेन्द्रनाथ सिह (एम० पी०) आदि ने सभा करने का प्रबन्ध किया। बाबा का जय-जयकार होने लगा। हम लोग मालाओ से लद गये। मेरे भाषण के बाद राहुल जी भाषण करने खडे हुए। अपने भाषण मे उन्होने जनता को समझाया—"स्वराज्य हो जायेगा तो हम लोग सब आदमी मिलकर एक राजा चुनेंगे, मन्त्री चुनेंगे और वही जनता की ओर से राज्य चलायेंगे। यदि वह राजा आप लोगों के काम को ठीक तरह से नही चलायेंगे तब जब चाहे आप लोग राजा को हटाकर दूसरा राजा बना देंगे।" उन दिनो राहुल जी की यह बात मेरी समझ मे नही आयी। उन दिनों की उनकी कही बात अब काम के रूप में आने लगी है। उस दिन की कही हुई बात बराबर याद आ जाती है, जब वोट होता है। उन दिनो मेरी समझ मे नही आया कि इस तरह का प्रजातन्त्र महात्मा महावीर ने कभी चलाया था और यह महात्मा मेरे घर से केवल सोलह कोस पूर्व के रहने वाले थे तथा यहाँ गौतम ऋषि की कुटिया मे भी आकर तपस्या की थी और प्रवचन भी

किया था।

स्यात् १९५८ ई० की बात है। मैं दिल्ली गया हुआ था। शाम मे डाक्टर दिनकर के साथ श्री मैथिलीशरण गुप्त जी के यहाँ चला। उन्ही के यहाँ रायकृष्णदास जी ठहरे हुए थे। रास्ते मे डॉ० राम सुभग सिंह मिले। वे भी नार्थ एवेन्यू मे श्री गुप्त जी के डेरे के बगल मे निवास करते थे। कुछ कागजातो के साथ वे आफिस से डेरा जा रहे थे। जब भेंट हुई तब बहुत देर तक वार्त्तालाप हुआ। उनसे मिलने के बाद हम लोगो ने विचारा कि कल राहुल जी से मिलने चला जाय। उसी समय उनकी लिखी पुस्तक "मध्य एशिया का इतिहास" पर भारत सरकार द्वारा पुरस्कार मिला था। वह पुरस्कार प्रधान मन्त्री पण्डित जवाहरलाल नेहरू के हाथो से उन्हे मिला था। राहुलजी डॉ० प्रभाकर माचवे के यहाँ टहरे हुए थे। मैं दूसरे दिन डॉ० दिनकर के साथ राहुल जी से मिलने गया। एक-दो दिन के बाद डॉ० माचवे, रूस जाने वाले थे। वे बहुत अस्त-व्यस्त थे। हम लोगो के पहुँचने के कुछ देर बाद डॉ० माचवे काफी लाये। हम लोगो ने काफी पी। राहुल जी से बातें होती रही। बातचीत के सिलसिले मे उन्होने मुझसे पूछा—"तोहार सब दाँत टूट गइल?" उस समय मैंने दाँत नही बनवाये थे। मैंने कहा—"दाँत खराब हो गइल रहे। एही से उखड़वा देली।" इस पर डॉ० दिनकर ने राहुल जी से कहा—"मैंने बार-बार इसको दाँत उखडवाने के लिए कहा, तब तैयार हुआ। डॉक्टर के यहाँ ले गया। कई दाँत तो मैंने अपने सामने उखडवाये।" सब लोगो की बाते सुनने के बाद राहुल जी ने हमसे अपना मुँह और दाँत दिखाते हुए कहा—"देख हमार खाली ऊपर के बीच वाला एक दाँत टूटल बा और सब दाँत बहुत मजबूत बा।" उसके बाद घटो इधर-उधर की बातें डॉ० दिनकर, डॉक्टर माचवे और राहुल जी से मैं करता रहा। कुछ देश विदेश की बातें भी चली। जब हम लोग राहुल जी से विदाई लेकर चलने लगे तब राहुल जी ने मुझे पुछा—"कब जइब घरे?" मैंने कहा—"आजे रात मे।" मैंने पूछा—"यहाँ से रउआ कहाँ जाइब?" उन्होंने उत्तर दिया—"मसूरी।" चलते समय मैंने और डॉ० दिनकर ने उन्हे प्रणाम किया। डॉ० माचवे ऊपर कोठे से नीचे सीढी तक साथ आये। हम लोग मोटर मे बैठे। ११, केनिंग लेन डॉ० दिनकर के डेरे पर गये। दिनकर अपने डेरे पर चले गये। मैं जगजीवन बाबू एव सत्यनारायण बाबू के यहाँ से होते हुए राजेन्द्र बाबू के यहाँ चला गया तथा दिनभर रहकर रात की गाडी से पटने के लिये प्रस्थान किया। चलते समय यह स्वप्न मे भी नहा सोचा था कि राहुल जी के साथ यह मेरी अन्तिम भेंट है। विगत १४ अप्रैल, १९६३ ई० को उनका देहावसान हो गया। लेकिन क्या उनके जैसे लोग कभी मर सकते हैं? उनका यश शरीर और भी प्रोज्ज्वल रूप मे हमे प्रेरणा देता रहेगा। उनकी कृतियाँ चिरकाल तक नश्वरता को चुनौती देती रहेगी। उनका जन्म आजमगढ जिले के पन्द्रहा नामक गाँव मे ९ अप्रैल, १८९३ ई० को हुआ था।

श्री काका कालेलकर

बिहार प्रान्तीय हिन्दी साहित्य सम्मेलन का वार्षिक अधिवेशन ३ फरवरी १९४६ ई० को भागलपुर जिला अन्तर्गत मन्दारहिल मे होने वाला था। मैं पटने से श्री सत्येन्द्र-नारायण अग्रवाल (अब उपाध्यक्ष, बिहार विधान-सभा) के साथ चला। हम लोगों के साथ डॉ० लक्ष्मीनारायण सुधाशु भी थे। हम लोग श्री सत्येन्द्र बाबू के निवास स्थान पर पर ठहरे। वहीं आचार्य काका कालेलकर भी ठहरे थे। उनसे मेरा परिचय डॉ० सुधाशु ने कराया था। जलपान के उपरान्त काका साहब से बहुत देर तक बातें हुई थीं। वे मुझसे कविता सुनाने का जोरदार आग्रह कर रहे थे। मैंने उनसे कहा—"यह सब भी तो कविता ही है न?" वे बडे जोर से हँसे। इसके बाद मैंने ये पक्तियाँ सुनायी—

"मैं गायन गाता जाता हूँ,
सबको हृदय लगाता हूँ,
पहचान नही पाता कोई,
मैं किसको फूल चढाता हूँ।
रुक गया जहाँ दिल का प्रवाह,
बस वही मुझे भगवान् मिले,
मन्दिर मस्जिद दिल ही मेरा,
जिसमे जीवन के गान मिले।
जग रोक नही सकता मुझको
मैं हृदय लगाता जाऊँगा,
जिसकी आँखो मे प्रेम मिले,
मैं उसको फूल चढ़ाऊँगा।

काका साहब के साथ उनकी निजी सचिव एक महाराष्ट्री युवती थी। वह दौड़ कर अपने कमरे मे गई और उपर्युक्त पक्तियों को मुझसे एक कागज पर लिखवा लिया। काका साहब ने पूरी कविता सुनाने का आग्रह किया और कहा—"यह तो बहुत अच्छी कविता है।" मुझे पूरी कविता याद न थी। इसलिए मैंने दूसरी कविता की कुछ पंक्तियाँ सुनायी—

श्री काका कालेलकर

"मैं अपने मन का गायक हूँ,
निज मस्ती मे रहता हूँ,
लगे बुरी या भली तुम्हे
पर बात सत्य ही कहता हूँ,
तुम्हे अगर परवाह नही तो
मुझे हर्ष या खेद नही,
मैं ऐसा मानव कि देखता
सुधा—गरल मे भेद नहीं।
मैंने जीवन उसे चढाया
जिसने मुझको प्यार किया,
शूल गडाने वालो का भी
फूलो से शृगार किया।
मेरी प्रगति रोकने वाले
सकुचाते पछताते हैं,
मैं उतना आगे हूँ जितने
विघ्न सामने आते है।
नयी-नयी नग्मों मे बजता
है मेरी तन्त्री का साज,
धरती की क्या बात, सितारे
सुनते हैं मेरी आवाज।"

काका साहब और उनकी सचिव मेरी अधूरी कविताओं को सुन कर बहुत प्रसन्न हुए। हम लोग घुल-मिल गये। सुबह को हम लोग मन्दार हिल को चले मोटर से। मन्दार हिल मे देशरत्न डॉ० राजेन्द्र साद, डॉ० हजारी प्रसाद द्विवेदी जो उन दिनो शान्ति निकेतन मे रहते थे, आदि भी पधारे थे। मन्दार हिल पहुँचने पर मैं राजेन्द्र बाबू से मिलने गया। उन्होने अपने साथ ठहरने को कहा। मैंने उन्हे बतलाया कि मैं सुधाशु जी के साथ ठहर गया हूँ। इस पर वह बोले—"अच्छा, ठीक बा, लेकिन हमरे साथ खाइल करिह।" मैंने कहा—"जी अच्छा।" काका साहब मन्दार हिल मे राजेन्द्र बाबू के साथ ठहर गये। सत्येन्द्र बाबू के यहाँ काका साहब के साथ मैं केवल चौबीस घण्टे तक ठहरा था। इतनी देर मे उनसे मेरी जो बातें हुईं उनके ही अधार पर वे मेरी तारीफ राजेन्द्र बाबू से करने लगे। राजेन्द्र बाबू ने उन्हे कहा—"मैं १९१७ ई० से ही इन्हे जानता हूं। उन दिनो जब कभी मैं छपरा जाता था, ये चन्द विद्यार्थियो के साथ मुझसे मिलने जरूर आते थे। ये उस समय भी जन-कार्य करते थे।" राजेन्द्र बाबू की बातो से काका साहब बहुत प्रभावित हुए और इसके उपरान्त मैं काका साहब के और निकट

आगया—ऐसा मैंने अनुभव किया है।

विगत ४ फरवरी, १९४५ ई० को राजेन्द्र बाबू ने कुछ लोगों को अपने साथ भोजन करने को बुलाया था। सभी के थाल आ गये। मेरे जाने मे कुछ विलम्ब हो गया। राजेन्द्र बाबू बार-बार मेरे बारे मे लोगो से पूछने लगे। श्री सहदेवसिंह, भूतपूर्व चेयरमैन, लोकलबोर्ड, बेगूसराय और मत्री जिला काग्रेस कमेटी, मुगेर आसन छोड कर मुझे बुला ले गये। जब तक मैं नही गया राजेन्द्र बाबू बैठे बतियाते रहे और जब मैं पहुँचा, उन्होने कहा—"तोहरे खातिर बैठल बानी। जा, आ जल्दी हाथ गोड़ धोके।" मैंने हाथ-पैर धोया और राजेन्द्र बाबू के बगल मे आसन पर बैठ गया। सब लोग भोजन करने लगे। राजेन्द्र बाबू के व्यवहार से मेरी प्रतिष्ठा औरो की दृष्टि मे बढ गयी। सुप्रसिद्ध कहानीकार श्री सुदर्शन जी ने भोजनोपरान्त मुझसे कहा—"भाई सुहृद, तुम तो वह नगीना हो जो राजाओ-महाराजाओ की अगूठी मे रहता है। यह सुनकर काका साहब ने उनसे कहा—'सुहृद जी से पहले-पहल कब भेट हुई। लेकिन ऐसा मालूम होता है कि मेरा इनसे वर्षों पुराना घनिष्ठ परिचय है।' भोजन मे डॉ० हजारीप्रसाद द्विवेदी भी सम्मिलित हुए थे। उन्होने कहा—"सुहृद जी से मेरा प्रथम परिचय मुगेर जिला साहित्य-सम्मेलन के अवसर पर आज से लगभग पाँच वर्ष पहले हुआ था। उनमे एक ऐसी चरित्रगत विशेषता है जो प्रत्येक व्यक्ति को आकृष्ट करती है। उनका प्रेम बडा मोहक और आकर्षक है। उनका उपनाम उनका बहुत उत्तम परिचय है। वे सबके सुहृद हैं। कवियो के, राजनीतिज्ञो के, लोक-नेताओ के, सबके सुहृद हैं। सभी उन्हे भली भाँति जानते हैं। बिहार मे तो शायद ही कोई ऐसा साहित्यिक हो जिसके साथ उनका सौहार्द न हो। ऐसे सहृदय मित्र का मिलना सबके लिए परम सौभाग्य का विषय है। उनका प्रेमपूर्ण आग्रह बडा शक्तिशाली होता है। मेरी भगवान से हार्दिक विनय है कि वे सुहृद जी को और भी अधिक यशस्वी बनावें और उन्हे लोक-सेवा और लोक-रजन का अधिकाधिक सुयोग दे। सहृद जी कभी आर्थिक चिन्ता के शिकार नही होते, कभी छोटी-छोटी बातो से परेशान नही दीखते—सदा प्रसन्न, सदा सहास, सदा आनन्दित। वे साथ रहने वालो को भी सदा प्रसन्न बनाये रहते हैं। उनके साथ कुछ देर रहकर कोई उदास नही बना रह सकता। परमात्मा उन्हे सबको आनन्दित करने का सदा सुयोग दें।" मैंने अनुभव किया कि काका साहब दूसरो की प्रशसा से प्रसन्न होते हैं?

हिन्दी और हिन्दुस्तानी के प्रश्न पर सम्पूर्ण देश आन्दोलित हो उठा था। गाधी जी हिन्दुस्तानी के समर्थक थे और काका साहब उनके अनुयायी। हिन्दुस्तानी के प्रचारार्थ बिहार मे भी उनके कार्यक्रम बने। राजेन्द्र बाबू ने बिहार मे डॉ० सुधाशु और काका साहब के दौरे का कार्यक्रम बनाया लेकिन सुधाशु जी की आँखो का दर्द कार्यक्रम के दो-चार दिनो पूर्व ही उभर आया। राजेन्द्र बाबू सुधाशु जी को देखने गये।

वहीं तय हुआ कि मैं काका साहब के साथ प्रान्त का दौरा करूँ। राजेन्द्र बाबू और सुधाशुजी के पत्र आये। मैं २० मार्च, १९४६ ई० को पटना पहुँचा और सदाकत आश्रम मे राजेन्द्र बाबू के साथ रहने लगा। मैं दिन भर सुधाशु जी के पास रहता था और रात मे सदाकत आश्रम मे। काका साहब वर्धा से पटना पहुँचे। उन्हे जहाँ-जहाँ जाना था वहाँ-वहाँ राजेन्द्र बाबू और सुधाशु जी के पत्र भेज दिये गये। आज ही के दिन (१ अप्रैल, १९४६) काग्रेस मन्त्रिमण्डल बना था इसलिए भीतर से कुछ उमग और जोश भी था। हम लोग १ अप्रैल, १९४६ ई० की सुबह को दिल्ली एक्सप्रेस से आरा चले। जब हम लोग आरा स्टेशन पर उतरे तब हमे लेने कोई नही आया। जिनके साथ हम लोगो के ठहरने-ठहराने की बात निश्चित थी, मैं उनके डेरे तक पहुँचा। ज्ञात हुआ कि वे पूजा कर रहे हैं। मैंने उन्हे खबर करने को उनके नौकरो से कहा लेकिन किसी ने उन तक खबर न पहुँचायी। मैं स्टेशन लौटा और आरा शहर के सबसे धनी-मानी व्यक्ति, जिन्होने जैन कालेज, आरा स्थापित किया है, श्री निर्मलकुमार जैन को फोन से सारी बातें बतलायी। वे अपनी गाडी लेकर स्टेशन आ गये। हम लोग उनके यहाँ ठहर गये। कुछ देर के बाद सभी को खबर मिल गयी कि काका साहब आ गये हैं। मिलने वाले लोग आ गये। सध्या-समय सभा हुई। काका साहब का भाषण श्रवण करने को हजारो लोग जुट गये। काका साहब जिसे हिन्दुस्तानी कहते थे, वह मेरे विचार से सहज हिन्दी थी। उनके भाषण मे तत्सम शब्दो का बहिष्कार-सा था। लेकिन वे अरबी-फ़ारसी के अपरिचित शब्दो का भी प्रयोग नही करते थे। दस बजे सभा समाप्त हुई। पटना लौटने के लिये दूसरी कोई गाडी नही थी। दूसरे दिन सुबह को पाच बजे की गाडी से गया जाने का कार्य-क्रम बना पर रात मे कोइलवर पुल से जाने-आने का हुक्म नहीं था। श्री जैन साहब ने कहा कि मैं अपनी गाडी दे दूंगा—आप लोग मोटर से ही पटना चले जाइए। पुल पार करने के लिए कलक्टर साहब का हुक्म लेना जरूरी था। बारह बज चुके थे। १९४२ से ही कोइलवर पुल पर टामी लोगो का पहरा था। ज्ञात हुआ कि कलक्टर का नाम आर्चर है। मैंने हिम्मत से काम लिया। गाडी से उनके बगले पर पहुँचा। वे सो गए थे। चपरासी ने उन्हे जगाने से इन्कार कर दिया। उसी दिन श्री बाबू, अनुग्रह बाबू और डाक्टर-महमूद मन्त्रि-पद की शपथ ग्रहण कर चुके थे। श्री जगलाल चौधरी जेल से मुक्त हो मन्त्रि-पद की शपथ ग्रहण कर सदाकत आश्रम मे ठहरे हुए थे। मेरे भीतर उत्साह और जोश की कमी नही थी। मैं कलक्टर साहब की कोठी से वापस आया और काका साहब को कहा—चलिए। काका साहब मुलाकातियो से घिरे थे। निर्मल बाबू से मैंने कहा—"गाड़ी मे तेल भरवा दीजिए।" उन्होने कहा—"तेल भरवा देता हूँ लेकिन वहाँ से तेल का कूपन भेज दीजिएगा। कूपन आसानी से नही मिलता।" मैंने कहा—"अच्छा।" काका साहब गाड़ी मे बैठे। हम लोग पटने की ओर चले। काका साहब समझते थे कि मैंने कलक्टर का आज्ञा-पत्र ले लिया है लेकिन मैं सोच रहा था कि पुल

कैसे पार करूँगा। गाडी पुल के पास पहुँची। मैं गाडी से उतरा और टामी लोगो के पास गया और रोब से मैंने कहा—"सैल्यूट।" उन्होने मुझे देखकर क्या समझा, मैं समझ नही सका लेकिन उन्होने सलामी दागी। सभी बन्दूकधारियो ने सलामी दागी। रास्ते मे मैंने काका साहब को वस्तुस्थिति बतलायी और कहा—"मुझे आत्म-विश्वास था कि अब टामी मेरा क्या करेंगे। वे तो हमी लोगो की आज्ञा के अनुचर हैं। यह सुनकर काका साहब मेरे आत्म-विश्वास की तारीफ करने लगे। हम लोग दो बजे रात मे सदाकत आश्रम गये। सुबह को ड्राइवर को कूपन दिलवा दिया। वह आरा चला गया। इसके बाद राजेन्द्र बाबू से मिला और सभा के सम्बन्ध मे बाते बतलायी। जब काका साहब ने कोइलवर पुल पार करने की बात उन्हे बतलायी तब वे बोले—"कइसे हिम्मत कइल ह।" इसके बाद मैं जगलाल जी से मिला और उसके बाद काका साहब के साथ अनुग्रह बाबू के यहाँ गया और उनसे मिलकर श्री बाबू के यहाँ गया। श्री बाबू उन दिनो नवशक्ति प्रेस के ऊपर वाले कमरे मे रहते थे। श्री बाबू से मिलने के बाद हम लोगो ने (२ अप्रैल, ४६) आठ बजे की गाडी से गया के लिए प्रस्थान किया। गया में घूमते-फिरते हम लोग पण्डित मोहनलाल महतो "वियोगी" के निवास स्थान पर गये। कुछ देर हम वहाँ ठहरे। शाम को सभा हुई।

३ अप्रैल, १९४६ को हम लोग मुजफ्फरपुर चले। सोनपुर में मालूम हुआ कि मुजफ्फरपुर जाने वाली गाड़ी चली गयी। सोनपुर स्टेशन पर रायसाहब रामशरण-लाल जी के होटल के मैनेजर श्री जगदीश बाबू थे—बडे ही व्यवहार-कुशल, हरदिल अजीज और मिष्टभाषी। उनसे मैंने सारी बाते कही। काका साहब के लिए एक कमरे मे खस की टट्टी लगवायी। चारपाई और भोजन की सारी व्यवस्था हुई। काका साहब भोजनोपरान्त अपने काम मे लग गये। मैंने मुजफ्फरपुर को तार भेज दिया कि चूँकि काका साहब की गाडी छूट गयी, इसलिए वे अब मुजफ्फरपुर नही जा सकेंगे। सोनपुर से हम लोग दरभगा चले। जब लहेरिया सराय स्टेशन पर हम लोग पहुँचे तब वहाँ भी आरा वाली स्थिति थी। हम लोगो ने घोडागाडी पकड़ी और जिनके यहाँ ठहरना था उसके पास पहुँचे। हमने अनुभव किया कि अतिथेय के मन मे उत्साह नही है। इसलिए उनके यहाँ से ही मैंने दरभगे के रईस पद्मनाभ जी को फोन से कहा कि अपनी गाड़ी भेज दीजिए और विनय बाबू को भी (उनके सुपुत्र)। विनय बाबू गाडी लेकर तुरन्त पहुँच गये। लेकिन जहाँ पहले ठहरे थे वहाँ वाले ने हम लोगों को जाने नही दिया। फिर मैं विनय बाबू के साथ शहर की ओर गया। टाउन हाल मे सभा आयोजित हुई। चार बजे हम लोग सभा के बाद काका साहब विनय के साथ बाबू के घर गये। मैंने उन्हे पद्मनाभ जी से मिलाया। तब हम लोग डेरे पर आये।

४ अप्रैल, १९४६ ई० को सुबह की गाडी से हम लोगों ने बेगूसराय के लिए प्रस्थान किया। हम लोग श्री विष्णुदेव नारायण के यहाँ गये। काका साहब

का नाम सुनते ही बेगूसराय के इर्द-गिर्द के लोग झुण्ड के झुण्ड भाषण सुनने को सोत्सुक आने लगे और बात की बात मे कचहरी के मैदान मे एक विशाल भीड़ इकट्ठी हो गयी। बेगूसराय मे काका साहब ने मेरे विषय मे जो कुछ कहा वह समाचार-पत्रों में छपा। उसे यहाँ उद्धृत करना अप्रसागिक न होगा: "बेगूसराय का और भी एक बात के लिए अभिनन्दन करना चाहिए। आपके शहर मे आपके सुहृद जी रहते है। वे अच्छे भावुक कवि तो हैं ही, साथ-साथ सेवा-परायण कर्मठ भी है। व्यवहार की बातो पर ध्यान देने का स्वभाव कवियो का अक्सर नही होता है। सुहृद जी मे यह कहाँ से आया? अपवाद-स्वरूप यह कवि व्यवहार-चतुर है या बेगूसराय की जनता के सम्पर्क से वे व्यवहार-कुशल बने हैं, सो मैं नही जानता। हमारी मुसाफिरी में उनका सहवास सब तरफ लाभदायी हुआ। ऐसे एक राष्ट्र-सेवक कवि को पाने के लिए बेगूसराय का अभिनदन करता हूँ।

"हर प्रसग मे इनकी सूझ प्रकट होती है। अगर हमारे प्रात के सभी कार्यकर्त्ता इसी तरह की सूझ बढाये तो सारा प्रात देखते-देखते अग्रगण्य बन जाय।" रात में काका साहब ने विष्णुदेव बाबू के यहाँ भोजन किया और विश्राम भी।

५ अप्रैल, १९४६ ई० प्रभात मे स्नानादि से निवृत होकर मैं विष्णुदेव बाबू के यहाँ पहुँचा। काका साहब को विष्णुदेव बाबू की गाडी से स्टेशन लाया और छह बजे वाली गाडी से मुगेर के लिए प्रस्थान किया। हम लोग ग्यारह बजे मुगेर पहुँचे। जहाज घाट पर काका साहब के स्वागतार्थ हजारो लोग खडे थे। काका साहब की जय से आकाश गूजने लगा। वे फूल मालाओ से लद गये। उन्हे जलूस के साथ बाजार मे घुमाया गया। फिर वे श्री सत्येन्द्रनारायण अग्रवाल के मकान पर ठहरे, शाम को टाउन हाल मे सभा हुई। इतनी भीड की कल्पना मैंने स्वप्न मे भी नही की थी।

६ अप्रैल, १९४६ ई० की सुबह को हम लोग जहाज से चले। जहाज पर मुगेर की सभा की तारीफ करते हुए उन्होने कहा—"फिनिशिंग टच बहुत ही सुन्दर रहा।" साहबपुर कमाल से काका साहब आसाम चले गये और मैं बेगूसराय लौट आया। जब उन्होने आसाम को प्रस्थान किया तब उन्होने डॉ० सुधाशु और राजेन्द्र बाबू को एक-एक पत्र लिखा था जिनका जिक्र 'सुधाशु' जी ने 'सुहृद' नामक पुस्तक मे किया है। सुधांशु जी के नाम काका साहब का पत्र यो था—

मुंगेर
६–४–४६

प्रिय सुधांशु जी,

बिहार-भ्रमण मे हमे सब जगह हर तरह का आराम रहा। हमारे साथ घूमने के लिए आपने श्री सुहृद जी को पसन्द किया। मैं नही मानता हूँ कि इनसे बढ़कर सुयोग्य व्यक्ति आपको मिलते। छोटी-मोटी सब बातो की तरफ ध्यान रखना, हर जगह स्वय दौडकर काम हुआ या नही देखना, यह सब उन्हीं का काम था। सुहृद जी

का सहवास हमे सब तरह आनन्ददायी हुआ ।

स्नेहाधीन—काका कालेलकर

सन् १९५० ई० मे काग्रेस का अधिवेशन नासिक मे हुआ था। जिस स्थान पर अधिवेशन होने वाला था उससे कुछ ही दूरी पर गोदावरी नदी की धारा है और वही वह स्थान भी है जहाँ से रावण सीता को ले भागा था। बिहार प्रान्तीय काग्रेस के अध्यक्ष थे डॉ० सुधाशु जी। हम लोग पटने से साथ ही गये थे। डॉ० सुधाशु जी सर्वदा फर्स्ट क्लास के डब्बे मे चलते थे, सभी लोगो के साथ थर्ड क्लास मे ही चले। थर्ड क्लास की हालत देखकर मैंने अपने मित्र श्री दारोगा-प्रसाद राय (अब भू० पू० बिहार के राज्यमन्त्री) से कहा—"मैं तो फर्स्ट क्लास मे जाता हूँ।" इस पर दारोगा बाबू ने कहा—'सुधाशु' जी को छोडकर कैसे जाइएगा ?' हम लोग नासिक पहुँचे। मैने अपना सामान सुधाशु जी के डेरे मे रख दिया और श्री प्रभुदयाल खेतान के साथ गोदावरी नदी मे स्नान करने चला गया। हम लोगो ने पचवटी का प्राकृतिक सौन्दर्य देखा। जब सबजेक्ट कमेटी की बैठक आरम्भ हुई तब मैं भी बैठक मे पहुँचा। काका साहब नेताओ के बीच मचपर बैठे हुए थे। मै जगजीवन बाबू से बातें करने लगा। काका साहब ने जब मुझे देखा तब मेरे पास आये और बुलाकर अपनी बगल मे बिठाया तथा कुशल-समाचार पूछे। बातचीत के सिलसिले मे मैंने उनसे कहा—"कल सुबह की गाडी से मै बम्बई जाऊँगा और सबसे मिल-जुलकर रात की गाड़ी से वापस आ जाऊँगा।' उन्होने कहा—"अधिवेशन समाप्त होने पर चलियेगा। मैं भी चलूँगा और दो-चार दिन ठहरूँगा।" मैंने कहा—"समय कहाँ ? सुधांशु जी आदि के साथ बिहार लौट जाना है।" मैं सुबह की गाडी से बम्बई चला गया और सभी मित्रो से मिल जुलकर रात मे वापस आ गया। श्री प्रभुदयाल जी वही रह गये। दूसरे दिन खुले अधिवेशन मे काका साहब नेताओ के बीच बैठे थे और श्री राजगोपाला-चारी से बाते कर रहे थे। मेरी ओर उनकी नजर पहुँची। उन्होने अपने पास आने का सकेत किया मैं उनके पास चला गया। मैं बहुत देर तक दोनो महापुरुषो का वार्तालाप सुनता रहा। कभी-कभी मैं भी बातचीत मे दखल देता था। राजा जी से बाते करने के बाद काका साहब ने बम्बई की यात्रा का हाल पूछा। उसी बीच पण्डित जवाहरलाल-नेहरू बोलने के लिए मंच पर गये और जनता से पूछा—"अग्रेजी मे बोलूँ या हिन्दी मे ?" आवाज गूँजी—हिन्दी-हिन्दी। इस पर काका साहब ने मुझे कहा—"इसमे पूछने की क्या जरूरत थी ? वे हिन्दी मे बोलते।" अधिवेशन समाप्ति के बाद काका साहब मुझे अपने डेरे पर ले गये और जलपान भी कराया। मैंने अनुभव किया कि उनमे आतिथ्य-भावना कूट-कूटकर भरी हुई है।

२२ मार्च, १९६१ ई० को बिहार राष्ट्रभाषा परिषद्, पटना के दसवें वार्षिकोत्सव के अध्यक्ष होकर काका साहब पटना पधारे थे। मैं "योगी" के सम्पादक श्री ब्रजशकर वर्मा के साथ उनसे मिलने को नाला रोड पर गया, जहाँ वे ठहरे हुए थे। मैंने देखा, वे अब दाढी रखने लगे हैं। वे कान से अब कम सुनते है। वर्मा जी ने उन्हे डॉ० शारदा प्रसाद सिह से राय लेने को कहा। हम लोग साहित्य-सम्मेलन-भवन साथ-साथ गये। वे जब तक पटने मे रहे, मैं भी पटने मे रहा। काका साहब के बिहार भ्रमण के सम्बन्ध मे राजेन्द्र बाबू ने मुझे जो रुपये दिये थे उनमे ग्यारह रुपये पौने बारह आने बच गये थे जिन्हे मैंने राजेन्द्र बाबू को भेज दिया। इसके उपरान्त राजेन्द्र बाबू ने मुझे यों लिखा—

सदाकत आश्रम
पटना
१५–४–४६

प्रिय कपिलदेव बाबू,
प्रणाम !

आपका भेजा हुआ रुपया और पत्र मिले—काका साहब का भी पत्र मिला है। आपके विषय मे उन्होने काफी तारीफ की है—आप यहाँ आ जाइए तब सारी बाते होंगी।

आपका
राजेन्द्र प्रसाद

जब मैं पटना पहुँचा तब राजेन्द्र बाबू को काका साहब की बिहार-यात्रा की सारी बातें बतलायी। वे बोले—"का अतना जल्दी रहतह जे रुपया मनिआडर से भेजलह ? अईत तब लेत अईत।" मैंने कहा—"एही तरी भेज देली हैं।" उन्हें काका साहब ने जो पत्र लिखा था उसे उन्होने अपने निजी सचिव श्री वाल्मीकि चौधरी से मँगवाकर मुझे पढने को दिया था। पढकर मैं मन-ही-मन काफी प्रसन्न हुआ कि काका साहब जहाँ जहाँ भी गये, भाषण, वार्ता और पत्र में मेरी तारीफ की।

उनकी मातृभाषा मराठी है। वे गुजराती के भी पण्डित हैं। वे शान्तिनिकेतन मे रह चुके है और रवीन्द्र साहित्य मे उनकी गहरी पैठ है। काका साहब सभी मायनो में घुमक्कड है। प्रकृति से उन्हें अनन्य प्रेम है। सतत् प्रवाहमयी सरिताओ से ही उन्होंने यात्राओ की दीक्षा ली है। नक्षत्रो के सौन्दर्य मे उन्होने दिक्षा ही नहीं पाई, गरिमा भी खोजी है। अपने देश मे वे जितना घूमे हैं उससे कम विदेशों मे भी नही घूमे। वे जहाँ जाते हैं भारतीय सस्कृति की दृष्टि लेकर जाते है। इसमें सन्देह नही हैं कि भारतीय

संस्कृति के सच्चे अर्थो मे प्रतिनिधि है।

काका साहब का जन्म १ दिसम्बर, १८८५ ई० मे महाराष्ट्र के सतारा नगर मे हुआ था। उनकी लिखी हुई पुस्तकें ये है—

'स्मरणयात्रा,' 'धर्मोदय,' हिमालयनो-प्रवास, 'लोकमाता, ''जीवननो आनन्द,' अवरनावर आदि।

डॉ० शिवपूजन सहाय

श्री शिवपूजन सहाय जी का जन्म आरा जिला के उनवास गाँव मे सन् १८९३ ई० मे हुआ था। हिंदी ससार के आप जाने-माने विद्वान तथा सपादक थे। आप हास्यरस की चीजो को गुप्त नाम से लिखा करते थे। "देहाती दुनियाँ, विभूति, अर्जुन" आदि पुस्तकें आपकी है। राष्ट्रभाषा परिषद् पटना की ओर से उनकी ग्रथावली चार खण्डो मे प्रकाशित हुई है।

१९३०-३१ ई० की बात है कि मैं किसी राजनीतिक सभा मे मानवेन्द्र राजेन्द्र बाबू के साथ दरभगा गया हुआ था। दरभगे से लहेरियासराय दो मील पूर्व है। वही पुस्तक भण्डार मे श्री शिवपूजन सहाय जी रहते थे। इच्छा हुई उनसे जाकर मिलने की। मैंने राजेन्द्र बाबू से कहा—"बाबू जी जरा जातबानी शिवपूजन बाबू से मिले।" उन्होने तुरत कहा—जा मिल आव, खाए के बेरा तक आ जईह।" वहाँ से सवार हुआ इक्के पर। पुस्तक-भण्डार के सामने इक्के से उतरा। पता लगाया तो किसी ने मुझे कहा—चलिए मैं उनके पास पहुँचा आता हूँ। एक दुमजिला भवन, शिव जी उसी मकान के कोठे पर रहते थे। उनके डेरे के पास जाकर उन्होने कहा—"इसी मकान मे ऊपर वे रहते है।" मैं दनदनाता हुआ सीडी पर चढ गया और ऊपर जाकर पुकारा—"कोई है?" शिव जी बाहर निकले। इसके पहले मैंने उन्हे नही देखा था। उनकी तारीफ बहुत बार सुन चुका था। उन्हे देखते ही मैं समझ गया कि यही नम्रता के अवतार शिव जी हैं। मैंने प्रणाम किया और कहा—मेरा नाम है सुहृद।" अब तो वे गले से मिले और कहने लगे—"आज हमार बडा भाग्य बा कि रउआ हमरा इहाँ तक आ गईली।" इस पर मैंने उत्तर देते हुए कहा—"ई हमार भाग्य बा कि रउआ निग्रर महर्षि के आज दर्शन भईल। ई सब ईश्वर के कृपा है कि रउआ इहाँ तक हमरा के पहुँचा देलन। बिनु हरि कृपा मिलहि नही सता।" बारह बजे तक मैं उनके साथ बैठा रहा। जब मैने चलने की इच्छा प्रकट की तब उन्होने कहा—रउरो भोजन हम बनवली हाँ, खाली तब जाईब" अब उनकी बात को आज्ञा की भाँति मानना पडा। शिव जी ने अपने हाथों वह भोजन बनाया था। यदि मैं कहूँ कि इतना पवित्र और स्वादिष्ट भोजन अपनी इस बड़ी अवस्था मैंने बहुत कम ही किया है तो अतिशयोक्ति न होगी। भात और दाल जीरे के साथ कड़कता हुआ घी और कई तरह की तरकारियाँ। शिव जी के हाथ का

डॉ० शिव पूजन सहाय

परोसा वह भोजन मुझे बार-बार याद आता है। उसके बाद जब कभी शिव जी से भेंट होती थी उनके उस स्वादिष्ट भोजन की चर्चा मैं अवश्य करता था। जिस तरह वे साहित्य जगत के महारथी थे उसी तरह वे पाक विज्ञान के भी आचार्य थे। भोजन के बाद मैं वहाँ से दरभगा चला आया।

१९३० ई० का तूफानी जमाना था। सत्याग्रह-आदोलन मे भाग लेने के फल-स्वरूप मैं भी कुछ महीनो के लिए सरकारी मेहमान बनाकर भागलपुर सेन्ट्रलजेल भेज दिया गया था। ५ फरवरी को जेल से छूटने के बाद मैं गोरखपुर चला गया और वहाँ एक महीने तक रह गया। प्रतिदिन सध्या समय मे "कल्याण" के सम्पादक श्री हनुमान-प्रसाद पोद्दार के यहाँ जाया करता था। वहाँ कुछ धर्म चर्चा होती थी। एक महीने के बाद मैं बनारस चला गया और वहाँ रहने लगा। उन दिनो शिव जी वही रहते थे और "जागरण" का सम्पादन भी करते थे। शिव जी पण्डित विनोदशकर व्यास, प० वाचस्पति पाठक, और मैं प्रसाद जी के साथ सध्या समय उनकी छोटी सी दुकान पर बैठकर दस बजे रात तक बातचीत करते थे। निराला जी जब बनारस आ जाते थे तो वे भी विनय पूर्वक मित्रमडली मे सम्मिलित हो जाते थे। बनारस का बुढवा मगल नामी है। एक रोज बुढवा मगल के दिन प्रसाद जी निराला जी, शिव जी, व्यास जी, पाठक जी तथा मैं दशाश्वमेध घाट पर सजे-सजाये बजरे पर चले। ग्यारह बजे रात तक हम लोग उस बजरे पर बुढवा मगल का आनन्द लेते रहे। शिव जी समय समय पर सबको बनारसी पान खिलाते रहते थे। एक रात मे ही इतना अधिक पान खाना भी जीवन मे दुबारा नसीब नही हुआ। दूसरे दिन सध्या मे बेनियाबाग मे प्रेमचन्द जी से भेंट हुई। दोनो आदमी एक बेंच पर बैठ कर बाते करने लगे। उसी सिलसिले मे श्री प्रेमचद जी ने कहा—"बुढवा मगल पर आप लोगो के साथ शिवपूजन जी ने "जागरण" मे काफी छीटाकशी की है। आज अक निकल गया है।" दूसरे दिन मै हिन्दू विश्वविद्यालय गया, श्री सुधाशु जी के यहाँ। वही "द्विज" जी बैठे हुए "जागरण" का वही अक पढ रहे थे जिस अक मे शिव जी ने अपनी लेखनी से हास्यरस की निर्झरिणी बहाई थी, जिसका जिक्र प्रेमचन्द जी कर चुके थे। उत्सुकता हुई पढने की और सुनने की। अधिकतर मनुष्य मे एक कमजोरी होती है कि अपने विषय में जो छपी हुई चीज होती है उसे देखने का वह लोभ सवरण नही कर पाता। द्विज जी से मैंने "जागरण" क्षण भर के सिए लिया और अपने विपय में क्या छपा था, देखा। कई दिनो के बाद प्रसादजी से भेंट हुई। उन्होंने पूछा—"शिव जी का बुढवा मगल पढा था ?" मैंने कहा—पूरा नही पढा देखा है सुधाशु जी के पास।"

कई दिनो के बाद मैं श्री हनुमान प्रसाद शर्मा वैद्य शास्त्री के यहाँ बैठा हुआ था। शिव जी के उस अक का मैंने जिक्र किय।। शिव जी शर्मा जी के बगल वाले मकान

मे रहते थे। दो मिनट मे "जागरण" का वह अक उन्होने ला दिया। शिव जी की शैली इतनी चुटीली थी कि पढते-पढने दम आ जाता था। उसी समय शर्मा जी के सहयोगी श्री भारती जी को मजाक सूझा। भारती जी ने मुझे लक्ष्य करके कहा—"असली बिहारी है।" उत्तर प्रदेश, दिल्ली आदि स्थानो मे "बिहारी" शब्द "बुद्धू" का पर्याय समझा जाता था। भारती जी को मैंने हँसते-हँसते कहा—"भारती जी इतने सज्जन है कि उनमे दुर्जनता कूट-कूट कर भरी है।" मेरी बातो को सुनकर सभी व्यक्ति हँसने लगे। मेरी इस पक्ति को सुनकर फिर क्या बात, शिव जी को एक मसाला मिल गया और दूसरे अक मे दोनो व्यक्तियो की एक ही लाठी से खबर ली गई।

१९३५ ई० का जमाना। जवानी के ऐय्याम मे आदमी को केवल जोश ही जोश रहता है, होश नही। उन दिनो मेरी कविताए भारत वर्ष की सभी पत्र-पत्रिकाओ मे सम्मान सहित प्रकाशित होती थी। प्रकाशक मेरी पुस्तक छापने को लालायित रहते थे। राजेन्द्र बाबू मेरी पुस्तको पर आशीर्वादरूप मे दो शब्द लिख देते थे। इससे मेरी पुस्तको की प्रतिष्ठा बढ जाती थी और पुस्तके जल्द बिक जाती थी।

आज तक मैंने किसी प्रकाशक से रुपये नही लिए, क्योकि मैं अपने मनोरजन के लिए लिखता हूँ, पैसो के लिए नही। बि० प्रा० सा० स० का वार्षिकोत्सव बेगूसराय मे होने वाला था। सभापति का चुनाव नही हुआ। मै बनारस गया था। अपने एक साहित्यिक मित्र के पास बैठा था। वे बनारस के ही रहने वाले थे। उन्होने कहा कि—'पुस्तक-भण्डार के मालिक श्री रामलोचनशरण को मैं एक पत्र लिखता हू। इस पत्र को आप अपने नाम से उनके पास लहेरियासराय भेज दीजिये। उनका अपना प्रेस भी था। खूब धनीमानी और बनारस के प्रतिष्ठित व्यक्ति थे। उन्होने एक लेटर पैड मेरे नाम से छपवाया और अपनी लिखी हुई चिट्ठी मुझे दी। उस पत्र को मैंने अपने नाम से लिखकर भेज दिया। उस पत्र की एक पक्ति मुझे याद है। वह पक्ति थी—"अगर आप मेरी पुस्तक ,'पुस्तक भण्डार" से प्रकाशित कर दे तो मैं आपको बेगूसराय मे होने वाले उत्सव का सभापति बनवा दूँगा।" बिना सोचे-समझे पत्र मैंने लिख कर रायबहादुर के पास भेजा था। उसके बाद शिव जी ने मेरे पास एक पत्र लिखा जो यो था—

"आदरणीय सुहृद, प्रणाम। इस तरह का जो पत्र आपने मास्टर साहब को लिखा है, आप जैसे बड़े लोगो से मुझे ऐसी आशा नही थी। अभी भी विश्वास नहीं हो रहा है कि यह आपका लिखा हुआ पत्र है।"

यह पत्र पाने के बाद मैंने समझा कि मैंने जीवन मे एक बहुत बड़ी भूल की है। अब जब कभी मुझे वह पत्र वाली बात याद आती है, मन ही मन सकोच मे गड़ जाता हूं और मुझे बड़ी ग्लानि होती है, पश्चाताप होता है कि मैंने इस तरह की भूल दूसरों के कहने पर कर क्यो दी। बाद मे शिव जी से अपनी भूल के लिए मैंने माफी माँगी और सारी बाते मैंने उनको कह दी।

रायबहादुर के यहाँ अब भी मुझे जाने मे शर्म मालूम होती है। अपने ही कर्म से व्यक्ति ऊपर उठता है और नीचे भी गिरता है, जैसे महल बनाने वाला उपर जाता है और कुँआ खोदने वाला नीचे। मैने इस तरह का कार्य किया जिसका पश्चाताप जीवन भर होता है।

शिव जी जब तक बनारस मे रहे, प्रकाशकों ने मेरी जितनी पुस्तके छापी, सबका अन्तिम प्रूफ शिव जी ही कृपा कर देख लेते थे। जब से परिचय हुआ, उनकी असीम कृपा मुझ पर रहती थी। मेरे विषय मे एक बार उन्होने लिखा था—"बिहार के बड़े-से-बड़े लोग भी इनके सौजन्य और लोकोपकारवृत्ति से प्रभावित है। युक्त प्रान्त (अब उत्तर प्रदेश) मे रहते समय भी देखा था कि राष्ट्रीय और साहित्यिक दोनों क्षेत्रों के प्रमुख सज्जनो से इनका वही सद्भाव है जो बिहार मे है।" वे कभी-कभी अपने निजी काम के लिए बडी ही नम्रता से पत्र द्वारा आज्ञा देते थे। यथाशक्ति उनकी आज्ञा का मैं सदा पालन करता आया। "चाँद" के सम्पादक मुशी नवजादिकलाल श्रीवास्तव के विषय में सदा मुझे पत्र लिखा करते थे। शिव जी की आज्ञा पाकर मै मुँशी जी से इलाहाबाद जाकर "चाँद" कार्यालय में मिला और दूसरी गाडी से सुहृदनगर लौट आया।

जब कभी अपने लोगो के बारे मे सुनता हू या पढता हू कि अमुक व्यक्ति इस असार ससार को छोड कर हम लोगो को "टूअर" बनाकर चला गया तो मै कातर सा हो जाता हू और ईश्वर से प्रार्थना करता हूँ कि हे परमात्मा, मुझे क्यो ने उठा ले गए जो यह दुख देखने को छोड दिया। अभी १९६२ के ११ अगस्त को शिव जी बेगूसराय आये थे। उनका भाषण सुनने का मौका मिला था।

शिव जी का भौतिक शरीर हमारे बीच नही है पर उनका शानदार व्यक्तित्व और उज्ज्वल कृतित्व हमारा पथ प्रशस्त करता रहेगा। वे अमर है और युग-युग तक जन-मन की आत्मा के शृगार बने रहेगे।

श्री ब्रजकिशोर "नारायण"

२५ जून, १६४६ ई० को मैं बेगूसराय के श्री विष्णुदेव नारायण के अनुज श्री कृष्णदेव नारायण की बारात मे रात की गाडी से सम्मिलित हुआ। प्रभात मे नरकटियागज स्टेशन पर बहुत लोग स्वगतार्थ खड़े थे। वहाँ चाय-जलपान की व्यवस्था थी। वही एक व्यक्ति मुझसे हँसकर मिला—पतला-दुबला, साँवला रग, आँखो मे मिलनसारी, बोलचाल मे आकर्षण। वह थे आधुनिक युग के समर्थ साहित्यकार श्री ब्रजकिशोर-नारायण। उन दिनो कौन जानता था कि वह युवक कुछ वर्षो मे ही साहित्य ससार को अपनी सर्जनात्मक प्रतिभा से चमत्कृत करेगा। इसके पूर्व मैंने उन्हे कही देखा था, यह याद नही है। लेकिन २६ जून, १६४६ की स्मृति आज भी ताजा है। हरिनगर शुगर मिल के अहाते मे बडी चहलपहल थी। जब गाड़ी खुली तब मुझे याद आया—होनहार बिरवान के होत चीकने पात। "नारायण" जी की तेजस्विता उनकी युवावस्था मे ही परिलक्षित होती थी। जब मैं अपने डब्बे मे बैठा तब डॉ० श्रीरजन जी (अब कुलपति, आगरा विश्वविद्यालय) ने मुझसे पूछा—"वह कौन युवक था जो तुमसे मिल रहा था ?" मैंने उन्हे उत्तर दिया—'वह इस जिले के ही निवासी है और कवि हैं तथा लडकी की ओर से आये हुए हैं।" डॉ० श्रीरजन जी बोले—"बहुत ही होनहार मालूम पडता है। उसकी चाल ढाल और रहन सहन से मालूम होता है कि वह आगे नाम करेगा।" अब जब नारायण जी से भेंट होती है तब रजन जी की बात मेरी स्मृति में कौंध जाती है। उनकी विनम्रता का क्या कहना ? उनके "भैया-भैया" सम्बोधन मे अपनेपन की मिठास है। उनसे जब भेट होती है, मैं आत्म-विस्मृत हो जाता हूँ। मुझे प्रतीत होता है जैसे मैं किसी आत्मीय व्यक्ति से मिल रहा हूँ। उपर्युक्त बारात मे बडे से बड़े लक्ष्मी-पुत्र और सरस्वती पुत्र सम्मिलित हुए थे लेकिन मेरी जिज्ञासा "नारायण" जी के विषय मे बलवती हो उठी थी क्योकि उन्होने बात की बात मे मुझे अपनी ओर खीच लिया था। श्री विपिन बिहारी वर्मा से जिन्होने गाँधी जी के समय मे अपनी चलती बैरिस्टरी पर लात मारी थी और असहयोग-आन्दोलन मे सम्मिलित हो गये थे, प्रान्त के बहुत धनी-मानी और प्रतिष्ठित व्यक्ति थे, नारायण जी के बारे मे अपनी जिज्ञासा व्यक्त की। उन्होने मुझे बतलाया 'नारायण" जी का परिवार बहुत बडा जमीदार और तिजारती था। उनकी जमींदारी बेगूसराय के इलाके मे भी थी। लेकिन रोजगार
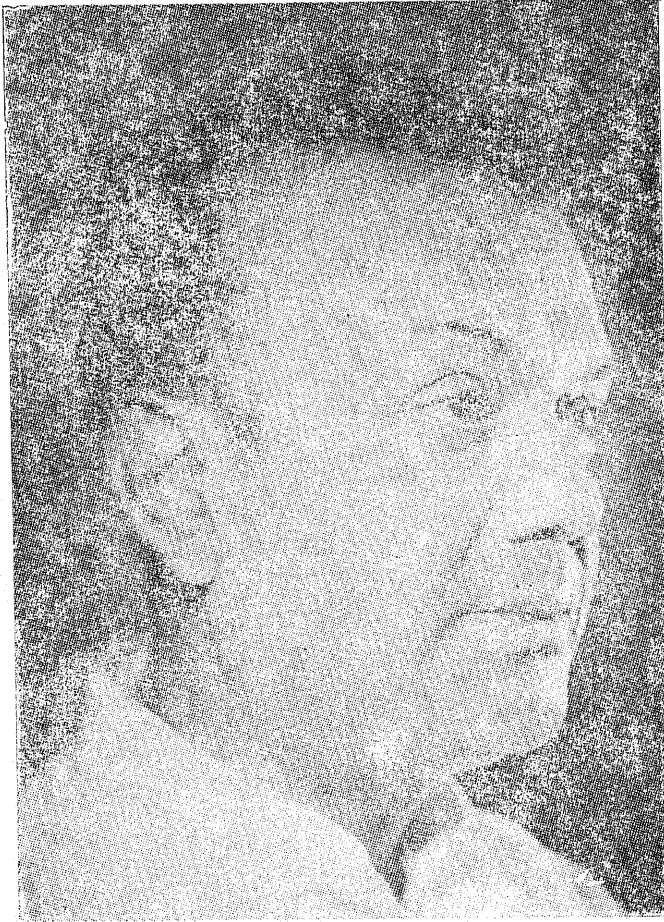
श्री ब्रजकिशोर "नारायण"

मे एक बार बहुत घाटा हुआ जिससे पहले की अपेक्षा अब स्थिति कुछ कमजोर हो गयी है। तिजारती होते हुए भी वे लोग बहुत बडे जमीदार भी थे। एक युग था, जब उनलोगों के दरवाजे पर दस-दस हाथी और अगणित घोडे झूमते थे। बारात के सामान जितने उनके पास थे, मेरे जिले मे बहुत कम लोगो के पास थे। उनके परिवार के सभी व्यक्ति असहयोग आन्दोलन मे शामिल हो गये। रोजगार देखनेवाला कोई न रहा। घाटा-ही-घाटा हाथ लगा। वे सभी लोग अँग्रेजो की आँखो पर चढ गये। सभी व्यक्ति जेल मे थे या पक्के फकीर बन कर गाँधी जी के इशारे पर देहातो की धूल फाँकते फिरते थे और अलख जगाते थे। एक युग था जब उनके परिवार के व्यक्ति और वे चाँदी के कटोरे और चाँदी के ग्लास मे खाते और पीते थे और एक वह युग था जब उनके परिवार के व्यक्ति जेल मे लोहे की बाटी और लोहे के तसले मे खाते और पीते थे। गाँधी जी की राजनीतिक आँधी मे कितने घर बर्बाद हो गये और कितने ही व्यक्ति दर-दर के भिखारी हो गये। लेकिन नारायण जी के मन मे सन्तोष है कि जो कुछ हुआ है या जो कुछ बडे बुजुर्गो ने किया है, देश के लिए किया है।" यह सुनते हुए मैं नारायण जी के प्रति श्रद्धावनत हो गया। उनके जीवन की धाराएँ बहुमुखी रही है। वे सम्पूर्ण भारतवर्ष मे घूमते रहे हैं, पढते रहे हैं, पढाते रहे है, शिक्षक रहे हैं, सम्पादक रहे हैं और पर्यटक रहे है। अब वे अनेक वर्षों से पटने मे जम गये हैं। वे बौद्धिक क्षेत्र मे साहित्य की सेवा करते हैं और जीवन मे बडो की सेवा करते हैं। वे छोटों को सम्मान देते है, उन्हे आगे बढाते है उन्हे रास्ता दिखलाते है। वे जन्मजात भ्रमणशील हैं। देश मे जहाँ-तहाँ वे सभा-सोसाइटी मे जाते रहते हैं लेकिन गर्मी मे वे पहाड पर जाना नहीं भूलते। जब भी उन्हे अवकाश मिलता है, वे दो चार साथियो के साथ कभी दार्जिलिंग, कभी नैनीताल, कभी कश्मीर और शिमला की हवा खा आते है। जब इन यात्राओ से उन्हे सन्तोष नही होता तब वे कभी इगलैण्ड, कभी पेरिस और कभी जर्मनी का चक्कर लगा आते है तथा लाजवाब शैली मे देश-विदेश की अपनी सरस अनुभूतियो को सैकडो पृष्ठो मे लिपि-बद्ध कर डालते है। उनमे असीम आत्म-बल है। वे अपने मन के मालिक हैं। जिस प्रकार उनकी प्रकृति राजसी है उसी प्रकार उनका ठाट-बाट और काम भी। उनकी बातों से दीनता नही टपकती, वे शान से जीवन जोते हैं और अपने अधीन की सस्थाओ को शानदार बनाये रखते है। जिस प्रकार उनका व्यक्तित्व शानदार और रोबीला है उसी प्रकार उनकी वाणी भी कड़कती हुई है, उनके नाम का प्रभाव साधारण जनता पर भी है। वे आत्म-सम्मानी है, निर्भीक है और स्पष्ट वक्ता भी। वे अपने सभी कार्यो को व्यवस्थित ढग से करते है। वे जिन व्यक्तियो मे कार्य-सम्पादन की योग्यता देखते है, उन्हे वे अवश्य अपना लेते है, कर्त्तव्य क्षेत्र मे वे अपने दायित्वज्ञान को कभी कुँठित नही होने देते। वे आडम्बर-शून्य हैं। वे मिलने-जुलने वालो से उकताते नहीं। वे उनसे भूलकर भी कभी अप्रिय व्यवहार नही करते। वे अतिथियो को देवतुल्य

मानते है। वे जहाँ बडो के प्रति श्रद्धा व्यक्त करते हैं वहाँ समवयस्को के प्रति प्रेम तथा छोटो के प्रति स्नेह भी। जो उनसे प्रथम बार मिलता है, वह यह अनुभव करता है कि प्रेम ही उनकी प्राणशक्ति है। वे साहित्य और जगत दोनो मे जीवन ज्योति जगाते है।

उनकी प्रकृति, भाव, भाषा और वेश मे सादगी है जो उस सामजस्य की अभिव्यक्ति है जो मन, वचन और कर्म की एकरूपता से प्राप्त होता है। वे जिन बातो को पूरी सचाई के साथ अनुभव करते है, वही कहते है और उनके अनुसार ही चलते भी है। यही कारण है, उनके कहने का बडा असर होता है और कार्यों का भी। उनकी रचनाओ और वक्तृताओ से लोग प्रभावान्वित होते हैं। उनकी मिलनसारी उनसे बराबर मिलने को हमे बाध्य करती है और उनसे मिलने के चाव को मधुर भावो से भरती है। उनमे जिस मात्रा मे प्रतिभा है उसी मात्रा मे परिश्रमशीलता भी। उनमे कल्पनागत वैभव है तो कर्मगत वैभव भी। वे क्लान्ति और विश्राम को तब तक कोई महत्त्व नही देते जब तक स्वय अपने आपको कर्म-विरत न करना चाहे। यही कारण है, उन्होने उपन्यास, नाटक और कहानियो की पुस्तको का भी अम्बार लगा दिया है। उनका प्रत्येक व्यवहार उनके नि स्वार्थ और निस्पृह प्रेम का व्यजक है। वे औरो से कुछ लेना नही चाहते। वे कुछ न कुछ दूसरो को देना ही चाहते है।

उनके जीवन मे जिस सत्यता, सुन्दरता और शिवत्व की त्रिवेणी प्रवाहित होती है वही उनके जीवन के प्रतिविम्ब मे—उनकी रचनाओ मे भी। जिस प्रकार उनका जीवन आडम्बर-शून्य है उसी प्रकार उनका साहित्य भी। जीवन की प्रतिकूल परिस्थितियो मे साहस, सहिष्णुता और सन्तोष ही उनकी कर्त्तव्य-भावना के पोषक तत्त्व हैं।

सन् १९६२ ई० मे बेगूसराय मे जी० डी० कालेज में एक कवि-सम्मेलन हुआ था जिसमें 'नारायण' जी और 'बच्चन' जी आदि आये थे। मैं सम्मेलन के दूसरे दिन दिल्ली से सुहृदनगर आया था। सुबह को बैठा था कि लल्लू (रवीन्द्रनारायण) का फोन आया—"नारायण जी आये हैं और आपको खोज रहे हैं। आप जल्दी आइये।" लल्लू ने अपनी गाडी भेज दी। मैं उसके यहाँ गया। उसने कहा—"अभी बच्चन जी और नारायण जी जलपान कर प्रो० आनन्द नारायण शर्मा के यहाँ गये हैं।" प्रो० आनन्द नारायण शर्मा का डेरा लल्लू के घर के आमने-सामने है। मैं शर्मा जी के डेरे पर गया। 'बच्चन' जी ने मुझे ज्यो ही देखा, कुर्सी से उठ गये और मेरे पैरो को छूकर प्रणाम किया। मैं उनकी नम्रता पर मुग्ध हो गया और शर्म से गड भी गया। मैंने बच्चन जी को गले से लगा लिया और मेरी आँखो भर आई। इसके बाद मैंने ऐसा अनुभव किया जैसे मेरी आयु दस वर्ष और अधिक बढ गयी हो। मैंने उन्हे बडे प्रेम से विदा किया था इसकी चर्चा करते हुए श्री नारायण जी ने दिसम्बर, १९६५ ई० के मासिक 'नवनीत' (बम्बई) मे लिखा था—'सूफो के सम्राट—बिहार मे बेगूसराय एक जगह

है। छपरा के सुहृद जी वही बस ही नहीं गये हैं बल्कि अपने नाम पर उन्होने एक पोस्ट-आफिस भी खुलवा लिया है। जिसका नाम सुहृदनगर है। उनकी जान-पहचान, राजनीतिक और साहित्यिक कर्मठता के कारण डॉ० राजेन्द्रप्रसाद, नेहरू जी और लालबहादुर शास्त्री जैसे व्यक्तियो से इस अन्दाज पर थी कि वे जो चाहे कर लेते, जहाँ चाहे उन्हे बुला लेते थे। उन्हे यह सिद्धि उनके नि स्वार्थ, निष्काम और निडर सेवाभाव ने प्रदान की है। वे धुन के पक्के और लगन के उदाहरणीय उपमान है, जिन्हे पाकर मित्रो की बाँछे खिल जाँय और शत्रु सुबह के सितारे हो जायें।

एक बार बेगूसराय मे कवि-सम्मेलन था। समारोह के बाद हम लोग जरा देर से स्टेशन रवाना हुए। आगे बढे तो रेलवे गुमटी बन्द। पूछने पर मालूम हुआ कि स्टेशन पर वही गाडी रुकी है, जिससे हमे जाना है। सुहृद जी ने तडाक से कार का द्वार खोला और मेरे सिर पर अपनी उजली गाधी टोपी पहना दी। गुमटीवालो को उन्होने डाटकर कहा—'देखो जल्दी फाटक खोलो, मिनिस्टर साहब को यही गाडी पकडनी है। जल्दी खोलो। बेचारा गुमटी वाला डरकर आगे बढा और फाटक खोलकर कार को उस पार चले जाने की सहूलियत दे दी। चलते वक्त उसने एक सलामी भी दागी। जब हम लोग स्टेशन के पुल पर (बरौनी जक्शन मे) चढ ही रहे थे कि इजिन ने सीटी दे दी। सुहृद जी वहाँ से दौडे और सीधे गार्ड के डब्बे की ओर लपके परिणाम स्वरूप चलती गाडी रुक गई और जो बिल्कुल अनहोना था, वह हो गया।

मैं जब उन्हे दोनों सूझो पर साधुवाद देने लगा, तो बच्चन जी बोले—"नारायण अरे, तुम सुहृद को नही जानते। इसने बेगूसराय मे (बरौनी) अपना कमाल दिखाया, तो क्या दिखाया, इसका लोहा तो हमने लखनऊ मे मान लिया था। अगर यह नही, होता, तो हमें आई० जी० पुलिस की चलती हुई कार को सडक पर रोककर शहर मे कौन माई का लाल पहुँचाता। पाँच-छ मील तो पैदल चलना ही पडता। "मैंने चलती गाडी से ही जोर से पुकार कर कहा—"दण्डौत भाई सुहृद जी, सूझो के सम्राट।"

सन् १९६४ ई० में तेल शोधक कार्यालय के लोगो ने प्रतिवर्ष की भाँति तुलसी जयन्ती मनाने का आयोजन किया था बडी धूमधाम के साथ। सभा का सभापतित्व कौन करे, इसके बारे मे लोग नारायण जी से बातें कर रहे थे। नारायण जी ने स्वागताध्यक्ष को क्या कहा, मैंने नही सुना क्योकि मै अपनी बगल मे बैठे हुए कुछ प्रोफेसरो से बाते कर रहा था। इतने मे स्वागताध्यक्ष माइक्रोफोन के सामने आये और मेरे विषय मे कुछ बोलते हुए मेरा नाम प्रस्तावित कर दिया जिसका अनुमोदन मन्त्री महोदय ने कर दिया। मेरे बीच मेरे बहुत अजीज लोग वर्तमान थे। नारायण जी को सभापति नही बनाकर मुझे सभापति बनाया गया, यह मुझे अच्छा नही लगा क्योकि यहाँ कुछ लोगो मे एक आदत पड़ गयी है—स्वय ही गद्दी पर बैठने की, चाहे वह गद्दी साहित्य की हो

या राजनीति की या मिनिस्ट्री की या राष्ट्रपति की। मैंने अनुभव किया कि हम लोगों की जवानी के सूर्य पश्चिम की ओर जा ढले है। इसलिए हमे अपने से कम उम्र के योग्य व्यक्ति को सब जगह बिठाये जहाँ से वह देश, समाज और साहित्य की सेवा कर सके। इस विचारधारा से ही प्रेरित होकर मैंने अपने नाम का विरोध किया और माइक्रोफोन के सामने कविवर श्री ब्रजकिशोर नारायण जी का नाम प्रस्तावित किया। नारायण जी पाँच मिनटों तक मेरे पक्ष मे भाषण करते रहे और मैं उनके पक्ष मे भाषण करता रहा। दोनो मे खूब वाग्युद्ध हुआ। लेकिन वह वाग्युद्ध प्रेम का था, आदर का था, सम्मान का था और श्रद्धा का था। अन्त मे उनसे मैं हार गया और उनकी बातें मुझे माननी पडी और सभापतित्व मुझे ही करना पडा। दो जिलो की सरहद पर (पटना और मुगेर) गगा नदी के तटपर तुलसी जयन्ती मनायी गयी जिसमे साधु-सन्त आये थे और गृहस्थ भी। उसके बाद नारायण जी के सभापतित्व मे कवि-सम्मेलन हुआ। उन्होने अपनी कविताओ और वक्तृताओं से जनता को मोह लिया। उनकी वाणी मे गजब की आकर्षण शक्ति है।

उनका जन्म आषाढ पूर्णिमा, मगलवार, १९७५ विक्रम (सन् १९१८ ई०) को बिहार राज्य के चम्पारन जिले के बडहरवा नामक गाँव मे हुआ था। उनकी माता का नाम श्रीमती पार्वती देवी है जो चम्पारन की वयोवृद्धा राष्ट्रनेता हैं। दस वर्षों तक बिहार विधान-सभा की सदस्यता तथा जिला बोर्ड और अनेक समितियों की सम्मानित पदाधिकारिणी रही हैं, जेलयात्री रही है और अब एम० एल० सी० हैं। नारायण जी के पिता का नाम श्री मथुराप्रसाद गुप्त है जो कांग्रेस और आर्य समाज के विख्यात नायक रहे है तथा विशाल वैभव को तिलाजलि देकर जनसेवा मे रत रहे हैं। इस प्रकार उनके पिता और माता दोनो महान हैं तथा नारायण जी महान् पिता के महान् पुत्र हैं, ठीक, उसी प्रकार जिस प्रकार पण्डित जवाहरलाल नेहरू या श्री सत्येन्द्रनारायण सिह महान पिता के महान पुत्र हैं। श्री नारायण जी की प्रारम्भिक शिक्षा दीक्षा मलाही की पाठशाला मे हुई। इसके बाद वे पजाब के गुजराँवाला स्कूल मे प्रविष्ट हुए। इसके अनन्तर वे खालसा कालेज और ओरियन्टल कालेज (लाहौर) मे प्रविष्ट हुए। वे पजाब विश्वविद्यालय की हिन्दीरत्न, हिन्दी भूषण तथा हिन्दी प्रभाकर की परीक्षा मे ससम्मान उत्तीर्ण हुए।

उनकी कविताओ का प्रथम सकलन 'सिहनाद' १९४० ई० मे लाहौर से प्रकाशित हुआ। १९४१ ई० मे उन्होने लाहौर से प्रकाशित होनेवाली 'शान्ति' नामक पत्रिका का सम्पादन किया। इसके बाद वे लाहौर के दैनिक पत्र हिन्दी 'मिलाप' के सम्पादकीय मण्डल में शामिल हुए। सन् १९४४ ई० मे वे बम्बई के दैनिक 'हिन्दुस्तान' मे नियुक्त हुए और उसके साप्ताहिक संस्करण के प्रभारी तथा नित्य के व्यग्य लेखक भी (श्री त्रिनेत्र के नाम से)। वे कलकत्ते के दैनिक 'लोकमान्य' के भी सम्पादक हुए और नित्य

के स्तम्भ 'हजामत' के नियमित सशक्त व्यग्यकार भी। उन्होने' चाणक्य' नामक व्यग्य पत्र (पटना) को अपनी कृतियो से अलकृत किया। उनकी काव्य पुस्तको मे 'यशस्विनी', 'नारायणी', 'मधुमय', 'वक्र चन्द्रमा' और 'चतुर्मुखी' प्रमुख है। उनके उपन्यासो मे 'राष्ट्र के लिए', 'रीता', 'स्वस्तिका', 'नाना की नजर मे', 'मरने के बाद', 'खब्तुलहवास', काफी प्रसिद्ध है। यात्रा की पुस्तको मे 'नन्दन से लन्दन', 'यूरोप कुछ ऐसे कुछ वैसे', 'सात समुन्दर पार', प्यारा पडोसी', जहँ जहँ पाँव पडे', इतनी पुस्तकें पाठको के हाथ जा चुकी है। नाटक और कहानी के सग्रह अभी तक इतने प्रकाशित हो चुके हैं – 'वर्धमान महावीर', 'सपना टूट गया', 'वर्ष गाठ', । यह है कहानी— सग्रह 'आज का प्रेम, 'पत्नी का प्रेम', 'देखने मे छोटे लगे', 'अजीबोगरीब'। इतना ही नही निबन्ध भी है 'लघु गुरु'। साथ ही साथ यह है जीवन स्केच—'अपनी तरह के अकेले' अभी अप्रकाशित अनेक पुस्तके प्रेस मे है जो शीघ्र ही प्रकाशित होने जा रही हैं। जैसे 'अनारकली' (महाकाव्य) 'क्या ये मूर्ख है' (हास्य उपन्यास) इत्यादि।

इन दिनो बिहार सरकार के समाज शिक्षा परिषद् (बुद्धमार्ग) पटना–२ द्वारा प्रकाशित साप्ताहिक पत्र 'जनजीवन' के प्रधान सम्पादक है।

श्री नलिन बिलोचन शर्मा

चालीस-पचास वर्षों के अन्दर छपरा जिले ने बडे-से-बड़ा विद्वान और नेता पैदा किया है। उसी छपरा शहर के नवीगंज मुहल्ले मे प० नलिन बिलोचन शर्मा का जन्म ता० १८ फरवरी, १९१६ ई० (शुक्रवार, माघ पूर्णिमा, को सरयूपारीण ब्राह्मण कुल मे हुआ था। आपके पिता का नाम प० रामावतार शर्मा था। पण्डित जी अन्तरराष्ट्रीय ख्याति लब्ध विद्वान थे।

नलिन जी मितभाषी थे। वह धारा प्रवाह, हिंदी-अँगरेजी और सम्कृत मे भाषण देते थे। दृष्टिकोण और साहित्य का 'इतिहास-दर्शन' नामक ग्रथ आलोचना साहित्य को उनकी देन है। उनके चाचा वगरह सभी लोग नवीगंज मे ही रहते है। नलिन जी तथा और परिवार के कई लोग जिले मे रहते हैं जैसा कि छपरा के लोग रहा करते है। लेकिन अपने घर छपरा को नही छोडते न कभी भूलते।

नलिन जी को मैंने पहले पहल कब देखा, कब हम लोग एक दूसरे के साथ सौहार्द बन्धन मे बँधे, इसकी मुझे याद नही है। एक सुदूर अतीत मे न समय का बन्धन है और न स्थान का। उसी अतीत मे शायद हम दोनो एक दूसरे से मिले थे और ऐसे मिले थे कि प्रतीत होता था, मानो हम दोनों कब के परिचित हो और कब की घनिष्टता हम दोनो मे रही हो। तब से बराबर नलिन जी से भेट होती रही। कभी कवि-सम्मेलन मे, तो कभी किसी सार्वजनिक सभा मे, कभी रास्ते मे तो कभी घर पर। जब कभी भी हम मिले मेरा दिल खुशी से खिल उठा।

सन् १९३६-३७ की बात है। नलिन जी (अपने विद्यार्थी जीवन में) जब कभी पटना कालेज से आते अपने सहपाठी जनार्दन के साथ ही रास्ते मे मिल जाते। जनार्दन मुरली बाबू के दामाद होने के नाते मेरी बहुत इज्जत करते थे। ये दोनो आदमी एक रोज कालेज से आ रहे थे करीब चार बजे होगे। मैं मुरादपुर मे मिल गया। दोनो पकड कर मुझे जनार्दन के घर पर ले गये और मेरा काफी सम्मान किया। घटो कविता हुई। जनार्दन बडे उदार और हँसमुख छात्र थे। दोनो में खूब पटती थी। लेकिन आज दोनों जीवन-सागर के पार जा चुके है। केवल एक स्मृति रह गई है दोनो की।

१९४३ ई० की बात है जब नलिन जी ने प्राध्यापक के लिए आरा जैन कालेज में आवेदन-पत्र दिया तो मुझे अपने साथ आरा ले गये—और जब उनकी वहाँ बहाली हो

श्री नलिन विलोचन शर्मा

गई तब वहाँ से उन्होंने मुझे एक पत्र बेगूसराय लिखा—"कभी-कभी आप यहाँ भी आते-जाते रहिए। आपके आने से मेरा बहुत काम होगा। १६४२ ई० मे ही उन्होने हिंदी मे एम० ए० किया और १६४६ मे पटना कालेज मे हिंदी के प्राध्यापक हो गये। कुछ दिनो के लिए वे राँची कालेज मे भी प्राध्यापक हुए थे। जिस प्रकार इनके पिता प० रामवतार शर्मा विश्व विख्यात विद्वान थे उसी प्रकार नलिन जी भी अपने को आगे बढाने मे काफी प्रयत्न करते रहे। इन दिनो उनकी स्त्री श्रीमती कुमुद शर्मा आकाशवाणी पटना मे काम कर रही है।

एक दिन की बात है श्री राधेश्याम ओझा (आई० सी० एस०) नलिन जी के बहनोई और नलिन जी पटना लॉन मे प्रदर्शनी मे घूमते हुए मिल गये। नलिन जी वहाँ से अपने डेरा पर ले गये। ये दोनो व्यक्ति ग्यारह बजे रात तक बाते करते रहे। ग्यारह बजे के बाद उन लोगो ने मुझे छोडा। तब मैं डेरा आया। जब-जब मै नलिन जी के यहाँ गया बिना चाय पानी के उन्होने लौटने नही दिया।

१६४२ का जमाना था। राधेश्याम जी की पोस्टिग मुँगेर मे हुई। मुँगेर किले मे उनका डेरा था। नलिन जी भी पटने से मुँगेर आये थे। श्री सरयू प्र० सिंह (बाद मे एम० ल० ए०) स्व० बाबू मिट्ठन चौधरी (बाद मे एम० एल० सी०) और बाबू राम किसुन सिंह (अब एडवोकेट) और मै उनके डेरे पर करीब आठ बजे रात मे गये। नलिन जी और राधेश्याम जी बैठकर बाते कर रहे थे। अपने साथियो से उन दोनो का परिचय कराया। मेरे साथ तो घरवाला बर्ताव था। बारह बजे रात तक हम लोग वही बैठकर बाते करते रहे। सभी लोगो का वही भोजन हुआ। उसके कुछ दिनो के बाद १६४२ का ६ अगस्त आया। राधेश्याम जी अक्सर मुँगेर से बेगूसराय आते थे। वहाँ आने पर मैं कही भी रहता था, वे जरूर मिलते थे। नलिन जी के विषय मे कुछ-न-कुछ बातें अवश्य हो जाया करती थी। दुर्भाग्य है आज हमारे बीच न राधेश्याम जी हैं और न नलिन जी। केवल दोनो की मार्मिक याद शेष रह गई है। इधर कुछ वर्ष हुए मित्रवर बाबू मिट्ठन चौधरी जी भी हम लोगो के बीच से चले गये।

नलिन जी अवकाश पाकर कभी-कभी मेरे यहाँ आया करते थे। एक बार अपने एक मित्र को साथ लेकर वे मेरे डेरे पर (पटने मे) आये। श्री अरविन्द कुमार "अरविन्द" ने उन लोगो को जलपान कराया। नलिन जी ने मुझे एक काम सौप दिया। उनको मैंने कह दिया कि मैं अमुक तिथि को सात बजे सुबह आपके डेरे पर पहुँच जाऊँगा। ज्योहो मैंने उनके मकान के अहाते मे मोटर घुमाई कि मैंने देखा कि नलिन जी तैयार होकर मेरे यहाँ ही आ रहे थे। फिर हम लोग मोटर से उतरे। मेरे साथ श्री रवीन्द्र नारायण और श्री अरविन्द कुमार "अरविन्द" भी थे। हम लोगो को वे यह कहते अपने ड्राइग रूम मे ले गये और अपने साथी पर इशारा करते हुए कहने लगे "ई अगुता गईलन कि रऊआ आईब कि ना आईब एही से हमनी का रऊआ डेरा पर

जात रहली हाँ।"

नलिन जी को जो कुछ भी मैंने कहा उन्होने भरसक मेरी बात को कभी उठाया नही। नलिन जी से श्री नवल किशोर सिह (अब बिहार-राज्य-मत्री) को एक काम था। उन्होने डॉ० सुधाशु से जाकर कहा। डॉ० सुधाशु ने मुझे पत्र लिखकर पटना बुलाया। मै पटना गया। सुधाशु जी ने मुझे नवल बाबू से मिलने को कहा। सुधांशु जी और नवलबाबू का डेरा आर० ब्लाक मे अगल-बगल मे ही था। नवल बाबू से जाकर मै मिला। उन्होने एक छोटा सा काम फरमाया, जो नलिन जी के द्वारा होना था। नलिन जी के यहाँ दूसरे दिन मै सुबह पहुचा। उनसे सारी बातें कही। काम हो जाने के बहुत दिनो के बाद नलिन जी ने सम्मेलन-भवन मे हमसे पूछा—"काम हो गईल रहे न ?"

एक रोज सम्मेलन-भवन मे बैठे-बैठे बाते हो रही थी कि चट उन्होने मेरे ऊपर दो लाइन का श्लोक बनाकर हम दोस्तो को सुनाया। साथ ही साथ उस श्लोक का अर्थ भी बाद मे कहा—वह श्लोक मेरी तारीफ मे था। वे आज हमारे बीच नही है, पर अपने महान कार्यों के रूप मे जो कुछ भी वे दे गये हैं उससे आने वाली पीढियाँ उन्हे कभी न भूल सकेंगी। अपने बुजुर्गो और मित्रो के स्नेहभाजन तो वे थे ही।

उपर्युक्त बाते मैंने २ अक्तूबर, १६६१ को लिपिबद्ध की थी। श्री उदयराज सिह (उपन्यासकार) की आज्ञा से नई धारा के सम्पादक ने नलिन स्मृति अक के लिये लेख माँगा। गत रात्रि से ही बेगूसराय मे इतने जोरो से वर्षा हो रही थी कि सारा शहर पानी से जलमग्नथा। पानी के साथ साथ तूफान भी था। घर से निकलना कठिन हो रहा था। लिखने का तभी समय मिल गया। बाद मे दस बजे शहर की ओर चले। शहर की हालत देखकर दुख हो रहा था कि "पानी निकलने की जगह पर लोगो ने मिट्टी भर-भर कर घर बना लिए थे।

श्री कपिलदेव सिंह 'सुहृद'

मेरे पूर्वज राजपूताना के बैसवाड़ा नामक स्थान से मुस्लिम राज्य के पूर्व ही सिताबदियारा आये थे और श्री सिताबराय मुसलमानो के काल मे बिहार के सूबेदार थे। अत. उन्ही के नाम पर यह सिताबदियारा बसा हुआ है।

मेरे पिता का नाम श्री राजकिशुन सिंह तथा माता का नाम श्रीमती महारानी-देवी था। बाबू जी के मरने के दस दिन के बाद फसली सन् १३०८ साल मे आश्विन शुक्ल-पक्ष तिथि द्वितीया, सोमवार को छपरा जिलान्तर्गत सिताबदियारा गाँव मे मेरा जन्म हुआ था।

आरा रेलवे स्टेशन से पाँच कोस उत्तर गगा नदी पार। बकुल्हा स्टेशन से चार कोस पूरब। रिविलगज स्टेशन तथा छपरा रेलवे स्टेशन से दो कोस दक्षिण-सरयू नदी पार। यही है सिताबदियारा गाँव, जहाँ सरयू तथा गगा जी ने बिहार मे प्रवेश किया है। इसके अन्दर एक खास जमीन है जो दियारा कहलाती है। यह भूमि नदियो के गर्भ में होती है जैसे समुद्र के गर्भ मे टापू। चारो ओर पानी ही पानी बीच-बीच मे हरी-भरी बस्तियाँ। यह भूमि अजीब होती है और अजीब होते हैं यहाँ के निवासी। पूरे चार महीनो तक यह भूमि बाढ की क्रीडा भूमि बनी रहती है। गगा तथा सरयू की उत्ताल लहरे चारो ओर लहराती रहती है। कभी जमीन कट जाती है, खेत कट जाते हैं, गाँव कट जाते हैं और घर कटकर दरिया मे गिर जाते है और कभी मवेशी भी लहरों मे बह जाते हैं।

गगा और सरयू की इन विनाशकारी लहरो से घरबार को बचाने के लिए आदमी भी कम प्रयत्नशील नही। अपनी बलिष्ट भुजाओ से लहरो को चीरता हुआ या अपनी नाव को उन लहरो पर नचाता हुआ यहाँ आदमी अपने अस्तित्व की रक्षा के लिए सघर्ष की हद कर देता है। प्रकृति से की गई इस कसमस के कारण यहाँ के लोगों के पुट्ठे ही मजबूत नहीं होते, उनके हृदय मे भी निस्सीम साहस सकलित होता रहता है।

गगा और सरयू उतार पर आती है, बाढ भी खत्म होती है। दियारे के लोग अपने दुस्साहस और दबंगपन के लिए काफी मशहूर होते हैं। गगा और सरयू के उतार के बाद खेतो मे चने, गेहूँ, मटर, जौ, सरसों की फसलें जब लहराती हैं, तब देखने लायक समा होता है। आबादी के बाद भी कुछ जमीन यो ही पड़ी रहती है जहाँ कास, मूँज और

श्री कपिल देव सिंह "सुहृद"

घास के बाद भी मीलों रेगिस्तान की तरह बालू ही बालू दिखलाई पडता रहता है। बची हुई जमीन मे घासें लहराती हैं, जिनमे गायें-भैंसे चरती रहती है। गेहूँ की रोटी और गाय-भैंस का घी-दूध खा-पीकर आदमी यहाँ सत्रह-अठारह साल मे तगडा जवान बन जाता है। बिहार के सुपुष्ट एव सुन्दर मनुष्य के नमूने देखने हो तो जाकर सिताब-दियारा को देखें।

दो नदियो का सगम स्थल हिन्दुस्तान मे स्वभावत ही तीर्थभूमि का सम्मान प्राप्त कर लेता है। जहाँ दो धारायें मिलकर एक हो जाय वह स्थल क्यों न पूत पुण्य समझा जाय। सिताबदियारे में उत्तरी भारत की दो प्रसिद्ध नदियों का सगम हुआ है, जहाँ घाघरा घहराती हुई आकर विशालहृदया जाह्नवी गगा से आ मिली है। कालीदास ग्रन्थावली मे भी इस सिताबदियारा के सगम तथा इलाहाबाद के सगम का उल्लेख है—कालीदास ने दोनों सगमो का जिक्र अपनी पुस्तक मे किया है। यह बहुत पुराना सगम है।

दो प्रान्तो की सरहदें भी यहाँ आ मिली हैं। नदियों की ये दुहरी धारायें प्राय. सरहद को मिटाने की कोशिश करती रहती हैं। दो नदियो के सगम पर बसा और दो राज्यो के झूले पर झुलता हुआ यह सिताबदियारा गाँव, छोटा मोटा कस्बा है। इसके बाईस टोले हैं और एक लाख के लगभग यहाँ की जनसख्या है। इसका क्षेत्रफल चवालीस हजार बीघा है। सिताबदियारा मे भारत सरकार के छ डाक-घर है।

सिताबदियारे ने बहुत से रत्न पैदा किए है। राजा सिताबराय जो आखिरी मुसलमानी जमाने में बिहार के सूबेदार (राज्यपाल) थे—इसी सिताबदियारे के निवासी थे। इन्ही के नाम पर यह सिताबदियारा गाँव है। कवि घाघराय का भी इसी घाघराय के टोले मे जो अपभ्रश होकर घुरी टोला है' घर था।

हिन्दुस्तान मे महात्मा गाधी ने १९१७ मे पहली लडाई (सत्याग्रह) चम्पारण (बिहार) मे लडी। राष्ट्रपति डॉ० राजेन्द्र प्रसाद जी, अर्थमंत्री डॉ० अनुग्रहनारायण सिह जी, आदि के साथ जाकर महात्मा गाँधी के कामो मे तन-मन-धन से लगने वाले श्री शभूशरण जी का भी घर इसी सिताबदियारा मे था।

इतना ही नही, इसी सिताबदियारा गाँव को देशरत्न श्री जयप्रकाश नारायण जी ने सुशोभित किया है। अद्‌भुत है यह महिमाशील गाँव जो गगा और सरयू के सगम पर बसा है। यहाँ वारि और सिकता का अपूर्व सम्मिलन है। यहाँ की शस्यश्यामला भूमि पर बाढ का आक्रमण है, सृष्टि के ऊपर सहार की छाप है। यहाँ जो कुछ भी है, वह यहाँ वालो को जीवन मे अव्यक्त नही है।

जिस प्रकार उपन्यासकार या कहानीकार निर्लिप्त भाव से अपने उपन्यास या कहानी का ताना-बाना बुनता है और पात्रों की सृष्टि करता है उसी प्रकार एक कलाकार है जो निर्लिप्त भाव से असख्य पात्रों की सृष्टि करता जा रहा है। जिस प्रकार अपने

पात्रो के हर्ष-शोक, विरह-मिलन, सुख-दुःख आदि से उपन्यासकार या कहानीकार उदासीन रहता है, उसी प्रकार जिस कलाकार ने हम लोगो की जिन्दगी की कहानी का श्रीगणेश किया है। वह न हमारे हर्ष मे प्रसन्न होता है न हमारे दुःख मे विषण्ण। वस्तुतः सृष्टि एक ऐसी कहानी है जिसमे जहाँ एक कहानी का अवसान होता है वही दूसरी कहानी का आरभ होता है, ठीक उसी प्रकार, जिस प्रकार, एक दीपक जब बुझता है तब उससे ही दूसरा दीपक जल उठता है या जिस प्रकार जब एक कदली का वृक्ष भू लुण्ठित होता है तब उसके मूल से ही दूसरा कदली वृक्ष अकुरित हो उठता है। हमारी जिन्दगी भी जहा आख्यान की शृखला की एक कड़ी है। इस महा आख्यान का श्रीगणेश तब हुआ था जब सृष्टि हुई थी। इसका अवसान तब होगा जब प्रलय होगा। जिस प्रकार पात्र यह नही जानते कि उनके जीवन का अर्थ क्या है, उनके जीवन की चरम परिणति क्या होगी। उसी प्रकार हम भी अपने जीवन की चरम परिणति के बारे मे कुछ भी नही जानते लेकिन कलाकार की दृष्टि मे प्रत्येक पात्र की सार्थकता आईने की तरह स्पष्ट है। जिस प्रकार एक धारा के बाद दूसरी धारा आती है और चली जाती है लेकिन नदी का अस्तित्व ज्यों-का-त्यो रहता है उसी प्रकार एक मनुष्य मरता है और दूसरा जन्मता है। इस जन्म-मरण का क्रम अविराम गति से चलता है। आप वैज्ञानिक भाषा मे इसे विकास कह सकते हैं। इतिहासकार की दृष्टि मे यह ऐतिहासिक प्रगतिवाद है किन्तु सज्ञा-भेद से तत्व-भेद नही होता।

मेरी जिन्दगी की कहानी के कई भाग हैं। लेकिन प्रधानता दो भागो की है—साहित्यिक और राजनीतिक। जिस प्रकार साहित्य मे मेरा प्रवेश है उसी प्रकार राजनीति मे भी। दोनो क्षेत्रों मे मेरा प्रवेश समान है। साहित्य ने मुझे दुःख को भुला देनेवाली मस्ती दी है तो राजनीति ने आफतो और कठिनाइयो से जूझने वाला धैर्य प्रदान किया है। साहित्य ने मुझे सत्यप्रियता प्रदान की है तो राजनीति ने कर्त्तव्यशीलता दी है। साहित्य ने मुझे कल्पनाशील और भावुक बनाया है तो राजनीति ने मुझे व्यवहार-कुशल और नीतिज्ञ बनाया है। जहाँ साहित्य ने अन्तर्मुखी प्रवृत्तियो को मासल किया है वहाँ राजनीति ने बहिर्मुखी प्रवृत्तियो को जगाया है। मैंने सर्वदा इसे स्वीकार किया है कि मेरे व्यक्तित्व के निर्माण मे साहित्य और राजनीति दोनो का पारस्परिक सहयोग रहा है। इतना होते हुए भी जब मैं दोनों पर तुलनात्मक दृष्टि से विचार करता हूँ तो मैं इस निष्कर्ष पर पहुँचता हूँ कि राजनीति वाले प्रमाद के कारण यह मानने लगे हैं कि साहित्य कोई बडी शक्ति नही है। किंतु सचाई यह है कि साहित्य से राजनीति का निर्माण और उसका पालन पोषण भी होता है तथा जिस राजनीति को साहित्य का समर्थन प्राप्त नही है, वह ज्यादे दिनो तक टिक भी नही सकता। राजनीति क्षणभगुर वस्तु है और उसके आकाश मे चमकनेवाली बिजलियाँ पलक मारते इस तरह बुझ जाती हैं कि फिर उनका नामो निशान तक नही रहता। लेकिन साहित्य के छोटे पौधे भी

सदियो के पार तक अपनी सुगध फैलाते रहते हैं। राजनीति मे अधिकतर अहकार भरा रहता है। मेरा अपना ख्याल है राजनीति अपने इस अहकार को जितना शीघ्र छोड दे मानवता का उतना ही अधिक कल्याण होगा।

यदि मैं कहूँ कि साहित्य और राजनीति के क्षेत्र मे मैं अपनी एक हस्ती रखता हूँ तो आप मुझे अहकारी या दभी समझने की भूल न करे। हस्ती शब्द का प्रयोग मैंने जान बूझ कर और सोच समझकर किया है। इसका कारण है कि दोनो क्षेत्रो मे जब जो कुछ मैं उचित समझता हूँ, बिना किसी हिचक के या रोक टोक के कर लेता हूँ और उसमे किसी की दाल नही गलती। इसके मूल मे है ईश्वर के प्रति मेरा अखण्ड आत्म-विश्वास और सत्य। मुझे अपने पर पूर्ण विश्वास है। मैं जब किसी कार्य का सम्पादन करने की इच्छा व्यक्त करता हूँ तब तन मन धन से जुट जाता हूँ। मेरे उच्च मनोबल के सामने सारी बाधाएँ काफूर हो जाती हैं। मेरे जीवन में ऐसा एक भी अवसर नही आया है जब मैंने किसी कार्य को सोचा हो और वह नही हो।

साहित्य और राजनीति मे जो कुछ मैं हूँ उससे अधिक प्रतिष्ठा मुझे प्राप्त हुई है। इसका कारण यह है कि मैं किसी से द्वेष नही करता। जिसने मेरा अपकार किया है उसका भी मैंने उपकार ही किया है। छोटे-बडे सभी लोगों का मुझे स्नेहाशीर्वाद प्राप्त होता रहा है। भारत के सबसे बड़े लक्ष्मी के लाडले मेरे यहाँ पधार कर मुझे आशीर्वाद देते हैं तो दरिद्र भिखमगा भी तथा सड़क पर सोनेवाला भी। वस्तुतः यह सब ईश्वर की कृपा है। साहित्य और राजनीति के तरह-तरह के व्यक्ति मेरे पास आते हैं और तरह-तरह की बाते करते हैं। किसी की बातो से यदि मन प्रसन्न होता है तो किसी की बातो से मन विषण्ण भी होता है—तभी मैं समझता हूँ कि दोनो क्षत्रों मे रहने से दोनो से क्या लाभ है और क्या हानि।

जिन्दगी के उत्थान-पतन, उतार-चढाव, जय-पराजय आदि की लहरो पर मैं सदा लहराता रहा हूँ। मैं कभी भी न झुका हूँ न टूटा हूँ। मैं छियासठ वर्षों का हो गया हूँ। यह न मेरे लिये सुख की बात है न मेरे हित चिन्तकों तथा मेरे मित्रों के लिये ही। लेकिन मेरे सुख या दुख या मेरे मित्रो के सुख दुख से क्या वह अदृश्य कलाकार प्रभावित होगा। सघर्ष मेरा साथी है और रहेगा क्योकि सघर्ष ही जिन्दगी है। मुझे दुनियाँ से कोई शिकायत नहीं है और जिन्हे मुझ से है उनसे मैं क्षमा याचना करता हूँ कि मैं उनके अनुसार नही बन सका। परमात्मा मेरा सहचर है। वह मुझे नया उत्साह, नया जोश और शक्ति पैदा करता रहता है। मनुष्य जब तक अपनी शक्तियो पर भरोसा नही करेगा तब तक वह कोई भी महान कार्य नही कर सकता। ईश्वर ने किसी भी मनुष्य को अपूर्ण बनाया ही नहीं। उपनिषदों मे कहा गया है कि विधाता ने जिसे दो हाथ और पैर दिये हैं उसे सब कुछ दिया है। यदि मनुष्य अपने को नही पहचानता और अपनी शक्तियों का उपयोग नहीं करता तो इसमे भगवान का क्या दोष ? मनुष्य अपनी

सीमाओं का सृष्टा स्वय है। ईश्वर अतृप्त आत्माओ के लिये प्रतिपल अमृत-वर्षण करता है। मैं जो कुछ बोलता हूँ वह मेरी आत्मा की आवाज है और सत्य का बल है। वे कभी व्यर्थ नही होते।

यदि आप सुख चाहते हैं तो दुःख का चिन्तन छोड दें। सुख प्रप्ति का यही उपाय है। हम जो नही चाहते उसका विचार भी अपने मन मे नही लायें। ऐसी बातो को सुन कर लोग हँसते है।

सेवा करना यह मेरा एक पेशा-सा हो गया है। साहित्य सर्जना मैं आत्मतोषाय या स्वात सुखाय करता हूँ—मेरे अस्तव्यस्त जीवन को देखकर अनेक व्यक्ति मुझसे पूछते हैं कि मै कब और कैसे लिखता हूँ। मैं उनसे कहता हूँ कि मेरे लिखने का कोई नियम नही है। मैं कभी-कभी महीनो सार्वजनिक कार्यो मे व्यस्त रहता हूँ। व्यस्तता की इन घडियो मे यह विस्मृत हो जाता है कि मैं स्रष्टा साहित्यकार भी हूँ। मेरी कल्पना कपोती किसी अदृश्य लोक मे लीन हो जाती है। मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि मैं आपादमस्तक व्यावहारिक और कार्यशील व्यक्ति हूँ। मेरे मन की सम्पूर्ण सरसता का स्रोत सूख जाता है। लेकिन कभी-कभी मैं अहर्निश लिखता रहता हूँ। सर्जना की इन घडियो मे मैं अपनी सृष्टि से एकाकार हो जाता हूँ। तत्स्वरूप हो जाता हूँ और आत्म-विस्मृत भी। इस प्रकार मैने दोनो प्रकार की आत्म-विस्मृति की अनुभूतियाँ प्राप्त की हैं और दोनो मे किसे श्रेय या प्रेय कहूँ, यह बात मेरी समझ मे नही आती। जिस प्रकार हलवाहे और सगीतकार की श्रमशील आत्म-विस्मृति मे तात्विक दृष्टि से भिन्नता रहते हुए भी अभिन्नता हैं उसी प्रकार मेरे शारीरिक और मानसिक श्रम के क्षणो की आत्म-विस्मृति का इतिहास विच्छिन्न होते हुए भी अविच्छिन्न है और यही मैं कहूँगा, मुझे दोनो स्थितियो मे समान आनन्द की प्राप्ति होती है। लेखन-काल मे मैं लेखक ही नही रहता, अपनी सृष्टि का द्रष्टा भी होता हूँ। लेखन के पूर्व मैं कोई तैयारी नही करता। इतना मैं अवश्य स्वीकार करूँगा कि जब विचारो का विहग क्षिप्र गति से उड़ता है तब भाषा का बहेलिया उसके पीछे दौडने मे गिरता है, घिसटता है और फिर उनके साथ हो जाता है। लिखने के समय मैं भाषा की ओर से उदासीन रहता हू और लिखने के बाद उसकी ओर ध्यान देता हूँ। जब मैं किसी पुस्तक की पाण्डुलिपि तैयार करता हूँ और प्रेस मे छपने को भेजता हूँ तब उसे देखने का भार किसी मित्र को सौपता हूँ और निश्चिन्त हो जाता हू।

राष्ट्रपति डॉ० राजेन्द्र प्रसाद—अर्थ मन्त्री डॉ० अनुग्रहनारायण सिंह—डॉ० राहुल साकृत्यायन, डॉ० रामधारीसिंह "दिनकर", डॉ० लक्ष्मीनारायण "सुधाशु", श्री जगजीवन राम (मन्त्री, भारत सरकार) या अन्य कोई भी नेता या साहित्यकार बेगूसराय जब कभी भी आये तो वे लोग मेरे यहाँ ही ठहरे या ठहरा करते हैं। परि-चित अपरिचित, अमीर, गरीब बहुत से देश-विदेश के लोग बेगूसराय आते जाते हैं—

और वे लोग भी मेरे यहाँ ही ठहरा करते हैं और मुझे आशीर्वाद देकर जाते है।

ता० १८ फरवरी, १९६५ को बहुत दिनों के बाद हसनपुर मिल से लौटते समय श्री कृष्णकुमार बिडला सुहृदनगर मे मेरे यहाँ आये। काफी दिनो के बाद उनसे भेंट हुई थी। उनको नाश्ता कराया उस दिन कृष्णकुमार जी से मिलकर बडी प्रसन्नता हुई। इसलिए नही कि वे भारत के सबसे बडे उद्योगपति और लक्ष्मी के लाडले हैं। बल्कि इसलिए कि वे एक अत्यन्त सहृदय और निरभिमानी व्यक्ति हैं। जिनके सौम्य व्यक्तित्व से सज्जनता टपकती है। उनसे मिलकर ऐसा ही अनुभव हुआ जैसे परिवार के किसी सदस्य से ही दुख-सुख की बातें कर रहा हूँ। सच ही कहा गया है कि वृक्ष जब फलते हैं तो डालियाँ नीचे झुक जाया करती हैं।

यो तो स्व० बाबू साहब (डॉ० अनुग्रह नारायण सिंह) के जीवनकाल मे कृष्ण-कुमार जी से कई बार पटने मे भेंट हो चुकी थी। कल्याणी-काग्रेस के समय उन्होने मुझे अपने यहाँ (कलकत्ते मे) भोजन पर बुलाया था। पर उस समय समयाभाव के कारण (उनके घर पर जाकर) मैं उनसे मिलकर माफी माँगकर चला आया था। फिर भी इस बार कृष्णकुमार जी ने मेरे यहाँ सुहृदनगर मे पधारकर मुझे उपकृत किया। सुहृदनगर मे बैठकर इतमिनान से हम लोगो ने कुछ देर बातें की। क्या यह सौजन्य और शालीनता भूलने की चीज है? १९२७ की बात है—राजेन्द्र बाबू और राहुल जी बेगूसराय आये थे और मेरे यहाँ ठहरे थे। रात्रि मे सदाकत आश्रम की चर्चा करते हुए बहुत-सी बातें राजेन्द्र बाबू ने कही। बात करते-करते उन्होने कहा, "तोहरा त बहुत बढका लोग से जान पहचान बा, तू चहब त ढेर आश्रम के काम करा सकेल।" उस दिन कृष्णकुमार जी से बातें कर रहा था उस समय राजेन्द्र बाबू की कही हुई सारी बातें मानस कर रहा था। उस समय राजेन्द्र बाबू की कही हुई सारी बाते मानस स्मृति पर दौडने लगी। राजेन्द्र-बाबू का कहने का लक्ष्य था रायबहादुर खडगनारायण (जिनके लड़के विष्णुदेव नारायण जी हैं) और उलाब स्टेट के मालिक श्री चन्द्रचूडदेव जी।

सत्ता की छीना जोरी में निर्लिप्त रहकर ही शान्ति से जीवन व्यतीत करने में मुझे मन लगता है—लेकिन उसके साथ-साथ यह भी है कि सरकार मे काम करने वाले अगर किसी विभाग की कमेटी मे मुझे नामजाद (नोमिनेटेड) कर देते हैं तो ईमानदारी के साथ मैं उस काम को करता रहता हूँ। सरकार की बहुत-सी छोटी-छोटी कमेटियाँ—अनेक विभागो मे बनी हुई हैं। बहुत से लोग उन सब कमेटियो मे सरकार द्वारा नामजद हो जाते हैं—वैसे ही मेरा भी नाम कभी-कभी आ जाता है। लेकिन उसको यहाँ वाले बरदाश्त नही कर सकते हैं। मैं तथा मेरे परिवार वाले यहाँ डि० बोर्ड मे ठेके का काम किया करते थे—लेकिन कुछ ऐसे लोग बोर्ड मे आ गये कि उन लोगों ने कई जगह साफ शब्दों मे कहा "पहले यहाँ वालों को काम दिया जाएगा—अगर यहाँ वालों से काम बच जायेगा तब बाहरवालो को।" यही बात हुई

भी और मैंने ठेके का काम करना बन्द कर दिया। डॉ० श्रीकृष्ण सिंह जब चेयरमैन थे, रामचरित्र बाबू, रिजवी साहब, रामाधीन बाबू, चन्दो बाबू आदि जब तक इस बोर्ड मे रहे, मैं बडे ठाट-बाट के साथ ठेके का काम करता था। इन लोगो के हटने के बाद जन कल्याण विभाग मे ठेके का काम करने लगा। लेकिन उम्र का तकाजा हुआ और मैंने ठेके का काम करना बन्द कर दिया। सन् १९५२ मे जिस समय बिहार प्रान्तीय काग्रेस के अध्यक्ष थे डॉ० लक्ष्मीनारायण सुधाशु, उस समय विधान-सभा मे जाने के लिए कौन किस-किस जिले से मेम्बर होकर जाय, उसके लिए नौ आदमियो की एक कमेटी बनी। वे ही नौ आदमी मिलकर नाम चुनते थे और दिल्ली भेजते थे अखिल भारतीय काग्रेस के अध्यक्ष के पास। इन नौ सज्जनो की बैठक सिन्हा लायब्रेरी (पटना) मे होती थी। पुस्तकालय के बाहर हजारो की भीड लगी रहती थी—मैं उस पुस्तकालय के हॉल मे जहाँ बैठक होती थी अलग कुर्सी पर चुपचाप यह नाटकीय दृश्य देखता रहता था। छपरा जिला (केरिबिलगज तथा कुछ हिस्सा सदर का) से खडे होने के लिए एक मेरा भी नाम सर्वसम्मति से चुना गया। लेकिन अध्यक्ष डॉ० सुधाशु ने कहा इन सब झझटो मे मत पडो। यह सब तो पचवर्षीय योजना है। तुम तो यो ही बहुत ऊपर हो। उनकी बातो को सुनकर मैंने उसी समय त्याग पत्र लिख कर डॉ० सुधाशु को दे दिया साथ ही साथ सभी समाचार पत्रो मे भी। मेरे त्याग पत्र देने के बाद बाबू साहब (डॉ० अनुग्रह नारायण सिंह) को कुछ कष्ट भी हुआ। उन दिनो काग्रेस के नाम पर बडी ही आसानी से आदमी विधान सभा का मेम्बर चुना जाता था, आजकल जैसी खीचातानी नही होती थी। काग्रेस के लोगो को जनता, देवता समझती थी। लेकिन आपस की फूट, राग-द्वेष, ईर्ष्या अब काग्रेस को कहाँ ले जा रही है, कहाँ ले जाएगी, यह सोचने समझने की बात हो गई है।

सुहृदनगर से बेगूसराय बाजार की ओर जब कभी भी डेरे से बाहर निकलता हूँ तो देखता हूँ प्राय: बच्चे से लेकर बूढों तक जिनका कभी कोई राजनीतिक या सामाजिक स्वार्थ मुझसे नही सधता नमस्कार और प्रणाम का ताँता लगा देते हैं। कभी-कभी उनके अभिवादनो का उत्तर देते-देते मैं ऊब उठता हूँ, किन्तु शीघ्र ही इसे अपने प्रति उस सामाज का सहज स्नेह मानकर मैं अपने को सयत कर लेता हूँ और मन ही मन पुलकित भी होता हूँ।

दूसरी ओर सुनता हूँ आसाम रोड के बगल मे सुहृदनगर आने वाली सडक पर यात्रियो की सुविधा के लिए सरकार ने जो साइनबोर्ड लगवा दिया है उसमे लिखा है—"सुहृदनगर इतना किलोमीटर। मझौल इतना किलोमीटर। रोसड़ा इतना किलोमीटर।" उसमें सुहृदनगर पर किसी सज्जन ने बडे ही प्रयत्न से ता० १२–२–६६ को अलकतरा पोत दिया है। अवश्य ही कुछ लोग ऐसे भी हैं जिनकी आँखो में मेरे नाम की चुभन बर्दाश्त नही हुई और उन्होने उस पर कोलतार फेर कर सरकार का अधिक

नही तो तीस चालीस रुपयो का नुकसान तो कर ही डाला ।

बेगूसराय मे जब भी कभी कोई महापुरुष आते हैं, भाषणो मे मेरे नाम की चर्चा के साथ-साथ तारीफ भी प्राय कर देते है। कुछ लोगो को इससे भी जलन होती है। कुछ मिनिस्टर यहाँ (बेगूसराय) आने पर मेरे यहाँ ठहरना पसन्द करते हैं। यह भी कुछ लोगो को बुरा लगता है और वे लोग मेरी झूठी शिकायत लिखकर उन मिनिस्टरो के पास अवश्य भेज देते है। इतना ही नही कलक्टर और एस० डी० ओ० को भी। हालाकि उनकी इन शिकायतों का कोई नतीजा नही निकलता और न उनका मुझ पर ही कोई असर होता है। बल्कि उन लोगों की उस तरह की भेजी हुई चिट्ठी कुछ मिनिस्टर तो अपने पत्र के साथ मजाक करते हुए मेरे पास भेज देते हैं। मैं सोचता हूं मानव चरित्र भी कितना रहस्यमय है। एक ओर अनेक लोगो का आशीर्वाद तथा अभिवादन और दूसरी ओर यह ईर्ष्या और विद्वेष दोनो मे सगति कहाँ है ?

१९६५ ई० मे बेगूसराय से नौ मील उत्तर मभौल कोठी के पास सिऊरी घाट पर गडक नदी पर बने हुए पुल का उद्घाटन बिहार राज्य के मुख्य मन्त्री श्री कृष्णवल्लभ सहाय ने किया। सगमरमर पत्थर पर मोटे-मोटे अक्षरो मे मुख्य मन्त्री का नाम और उद्घाटन की तिथि लिखकर सरकार ने पुल की दक्षिण तरफ पुल मे लगवा दिया। शायद १९६५ ई० के दिसम्बर महीने मे लोक निर्माण के मन्त्री श्री रामलखन सिह यादव के साथ चेरीया बरियारपुर के तरफ जाने का मौका मिला। पुल पर ज्यो ही हम लोगो की गाडी पहुँची सुन्दर-सुन्दर अक्षरो मे लिखे हुए मुख्य मन्त्री के नाम पर मेरी नज़र पडी। उस सगमरमर पर लिखे हुए नाम पर कोलतार लेपा हुआ देखकर बडी तकलीफ हुई—मैंने रामलखन बाबू को ये सारी बाते रास्ते मे कही। मेरी बातो को सुनकर उनके चेहरे पर कुछ उदासी आ गई और वे कुछ सोचने लगे।

सडक पर लगे हुए साइनबोर्ड पर "सुहृदनगर" लिखे हुए पर (जब लोगो ने कहा और जाकर देखा कि) अलकतरा पोता हुआ है, तब ऊपर की लिखी हुई सारी बातें याद आ गईं और ऐसे सज्जनो के विपय मे १९१२ के मुगेर जिला गजेटीयर मे एक अंग्रेज ने जो लिखा है, वह पढने लायक है।

सुहृदनगर (बेगूसराय) मे जो मेरी निजी सम्पत्ति तीन मकान है, उसका मैंने एक वसीयतनामा लिख दिया है जिसकी रजिस्ट्री बेगूसराय सब-रजिस्ट्री ओफिस मे ता० २७–९–६५ को हुई। मैंने रजिस्ट्री को उस समय बेगूसराय मे सब-रजिस्ट्रार श्री खोखा बाबू थे—उन तीनों मकानो की देखभाल करने के लिए कुछ लोगों को एक ट्रस्टी बना दिया है। वसीयतनामा लिखते समय एक बात के लिए मैंने हिदायत की है और उसमे साफ-साफ शब्दो मे लिख दिया है—"मेरे मरने के बाद मेरे इन तीनो मकानों को बेचने का अधिकार किसी को नही रहेगा।" इस बात को मैंने जानबूझकर सोच-समझकर इस पुस्तक मे दे दिया है।

सन्त विनोबा भावे

सन्त बिनोवा भावे के सम्बन्ध मे जब मैं विचारता हूँ तब किसी कवि की ये पक्तियाँ "कागज के पन्नो को तुलसी तुलसीदल जैसा बना गया" स्मृत हो आती है। तुलसीदास ने जिन पन्नो का स्पर्श किया उन्हे तुलसीदल के समान पवित्र बना दिया। महात्मा गाँधी ने जिन व्यक्तियों को अपने समान बना दिया, उनमे विनोबा भावे का नाम सर्वोपरि है। पण्डित जवाहरलाल नेहरू यदि महात्मा गाँधी के राजनीतिक उत्तराधिकारी थे, तो विनोबा उनके आध्यात्मिक उत्तराधिकारी है।

भारत मे सन्तों की परम्परा अविच्छिन्न रूप मे जीवित है। महात्मा बुद्ध, तुलसी, कबीर, नानक, ज्ञानदेव, दादू, तिलक, गाँधी आदि जिस भारतीय सन्त-परम्परा की अविच्छिन्न कडी है, विनोबा भावे भी उससे भिन्न नही है। भारतीय सन्तो, महात्माओ, विचारको और दार्शनिको के ज्ञान-गौरव से विनोबा भावे का मस्तिष्क ऊर्जस्वित है।

महात्मा गाँधी ने भारत को राजनीतिक स्वतत्रता दिलायी, इसमे सन्देह नही है। सन्त विनोबा भावे भारत को आर्थिक स्वतत्रता देने-दिलाने की दिशा मे सक्रिय है, यह बात भी निर्विवाद रूप मे मानी जायगी। आर्थिक स्वतत्रता के अभाव मे राजनीतिक स्वतत्रता अर्थहीन है। इस अर्थ मे विनोबा भावे भारत की राजनीतिक स्वतत्रता के पाये की जड मजबूत करनेवालो मे प्रथम स्थान के अधिकारी हैं।

भारतीय राजनीति के रगमच पर पण्डित जवाहरलाल नेहरू को महात्मा गाँधी ने नही उतारा था, कालान्तर मे उन्हे भले ही प्रेरित किया हो। लेकिन विनोबा भावे को महात्मा गाँधी ने भारतीय राजनीति के रगमच पर अवतीर्ण किया था। इसके पूर्व अर्थशास्त्र के पण्डित भले ही विनोबा भावे के नाम से परिचित हों, भारतीय जनता उन्हे बिलकुल नही जानती थी।

१६४० ई० की बात है। रामगढ कांग्रेस अधिवेशन मे देश के सम्बन्ध मे विभिन्न प्रस्ताव पारित हुए। लोग महात्मा गाँधी से अनुरोध कर रहे थे और भाषण दे रहे थे कि अब अँगरेजों के साथ हमे असहयोग करना चाहिए। गाँधी जी जनता की नब्ज पहचानते थे। सभी लोगो के भाषणोपरान्त वे उठे और कहा—"अभी समय नही आया।" अपनी बात पर वे दृढ रहे और देश को आश्वासन दिया कि जब समय आयेगा

सन्त विनोबा भावे

तब मैं चुपचाप बैठा नही रहूँगा।

देश-गौरव जयप्रकाश नारायण को गिरफ्तार कर जेल मे नजरबन्द कर दिया गया था। १९४० ई० मे महात्मा गाँधी ने व्यक्तिगत सत्याग्रह-आन्दोलन छेडने का एलान किया।। यह तय हुआ कि प्रथम व्यक्तिगत सत्याग्रही के नाम की घोषणा गाँधी जी ही करेंगे। भारत के सब नेता घोषणा सुनने को आतुर थे। जनता सोचती थी कि गाँधी जी पण्डित जवाहरलाल नेहरू के नाम की प्रथम घोषणा करेंगे लेकिन उन्होने प्रथम सत्याग्रही के रूप मे बिनोबा भावे का नाम घोषित किया और सम्पूर्ण भारत मे विनोबा-भावे का नाम सूर्य की तरह चमक उठा। विनोबा भावे का नाम हर एक भारतवासी जान गया। इसके पूर्व मैं भी उनके नाम से अपरिचित था। सन् १९४० ई० मे ही मैंने जाना कि वे महात्मा गाँधी के साबरमती आश्रम मे रहते हैं और सस्कृत तथा और अनेक भाषाओ के विद्वान् है एव मनसा-वाचा-कर्मणा महात्मा गाँधी के द्वितीय सस्करण हैं। उन्होने व्यक्तिगत सत्याग्रह-आन्दोलन का श्रीगणेश किया। उन्हे गिरपतार किया गया। उन्हें वर्ष भर का कठिन दण्ड मिला और द्वितीय श्रेणी भी। मुझे उनके प्रथम दर्शन का सौभाग्य १९४८ ई० मे प्राप्त हुआ था पटना जिले के अन्तर्गत बिहटा नामक स्थान पर। बिहटा मे कोई बहुत बडी सभा हुई थी जिसमे डॉ० राजेन्द्रप्रसाद, बिहार के सभी मत्री और राज्यप.ल अणे साहब आदि भी गये थे। आचार्य विनोबा-भावे सभामच पर राजेन्द्रबाबू आदि के मध्य आसीन थे। दुबला-पतला शरीर, चमकता हुआ ललाट आँखो मे अप्रतिम ज्योति, शरीर पर चादर और कटि मे बलाका-पखो की भाँति उज्ज्वल लँगोटी—इसी रूप मे मैंने उनके प्रथम दर्शन किये थे। मैं आपाद-मस्तक श्रद्धावनत हो उठा था। मैं भावनाओ की तीव्र बाढ मे बहने लगा था। मेरी वृत्ति उमडने लगी थी। मैंने मूकभाव से उनके प्रति अपनी हार्दिक श्रद्धाजलि अर्पित की। तबसे मैं उनके साहित्य का मूक अध्येता बना और उनके कार्यो का तटस्थ द्रष्टा। उनके ग्रथो की सूची लम्बी है। जब कभी मुझे अवकाश मिलता है, मैं 'विनोबा के विचार', 'शान्ति-यात्रा', 'सर्वोदय-विचार,' 'विचार-पोथी', 'राजघाट की सन्निधि मे', 'भूदान-यज्ञ', सर्वोदय का घोषणा-पत्र', 'गाँव सुखी हम सुखी', जमाने की माँग', जीवन और शिक्षण' आदि ग्रथो के वन मे विहार करता हूँ और अनुभव करता हूँ कि मै किसी तपोवन मे साँस ले रहा हूँ और कोई उपनिषद्-कालीन ऋषि आधुनिक भाषा मे बोल रहा है।

वे ११ सितम्बर, १८९५ ई० मे महाराष्ट्र प्रान्त मे अवतीर्ण हुए थे। वे ब्राह्मण हैं। उन्होने अपनी प्राथमिक शिक्षा गागोदा ग्राम मे प्राप्त की थी और माध्यमिक शिक्षा बड़ौदा मे। इण्टर के बाद वे परीक्षाओ की शृखला में अपने को बाँध कर नही रख सके। वे जीवन के प्रति उदासीन हो गये। वे सासारिक मायाजाल से ऊब गये। वे संसार-विरक्त हो गये। उनकी चित्त-वृत्तियाँ सन्तो की सगति मे रमने

लगी। सन् १९११ ई० से १९१६ ई० की अवधि मे काशी मे सन्त-समागम मे लीन रहे और अपनी योग्यता-सम्बन्धी सभी प्रमाण-पत्र अग्नि की ज्वाला मे भस्मी भूत कर दिये। इसके बाद वे गाँधी जी की ओर आकृष्ट हुए और उनके व्यक्तित्व से प्रभावित भी हुए। परिणामत उन्होंने ७ जून, १९१६ ई० को आजीवन ब्रह्मचर्य और देश सेवा का व्रत ग्रहण किया। उनके विचारानुसार ब्रह्मचर्य व्यजक शब्द अन्य धर्म-ग्रथों मे नही है। यह शब्द हिन्दू धर्म के विशिष्ट आचरण का बोधक है। विनोबा भावे ने लिखा है—'ब्रह्मचर्याश्रम का हेतु यह है कि मनुष्य के जीवन को आरभ मे अच्छी खाद मिले। जैसे वृक्ष को, जब वह छोटा होता है तब खाद की अधिक आवश्यकता रहती है। बड़ा हो जाने के बाद खाद देने से जितना लाभ है, उससे अधिक लाभ जब वह छोटा रहता है तब देने से होता है। यही मनुष्य-जीवन का हाल है। यह खाद अगर अन्त तक मिलती रहे तो अच्छा ही है, लेकिन कम-से-कम जीवन के आरंभ काल मे तो वह बहुत आवश्यक है। हम बच्चो को दूध देते है। उसे वह अन्त तक मिलता रहे तो अच्छा ही है, लेकिन अगर नही मिलता तो कम-से-कम बचपन मे तो मिलना ही चाहिए। शरीर की तरह आत्मा और बुद्धि को भी जीवन के आरभकाल मे अच्छी खुराक मिलनी चाहिए। इसलिए ब्रह्मचर्याश्रम की कल्पना है।' विनोबा भावे शरीर से देश सेवा करते थे और मन से गीता, उपनिषद्, याज्ञवल्क्य-स्मृति, मनुस्मृति, योग-दर्शन आदि के वैचारिक ससार मे विचरते थे। इसमे वे श्रीनारायण शास्त्री के ऋणो को स्वीकारते हैं। जब वे महात्मा गाँधी के विचारो से प्रभावित हुए तब सर्वप्रथम वे उनके साबरमती आश्रम में गये और उनके कार्यो मे अपना हाथ बँटाने लगे। सन् १९२१ ई० मे वे वर्धा चले गये। वहाँ उन्होने नागपुर-झण्डा-सत्याग्रह मे भाग लिया और १८ जून, १९२३ ई० मे सर्वप्रथम कारागार के मेहमान बने। जब वे कारागार से मुक्त हुए तब १९२४ ई० मे हरिजन मन्दिर प्रवेश आन्दोलन मे भाग लेने के लिए गाँधी जी ने उन्हे त्रावणकोर भेजा। विनोबा भावे ने त्रावणकोर मे अपनी जिस अद्भुत कार्यक्षमता का परिचय दिया उससे गाँधी जी दग रह गये।

सन् १९३२ ई० मे उन्होने जलगाँव मे भाषण किया जिसके परिणामस्वरूप ब्रिटिश सरकार ने उन्हे दूसरी बार बन्दी बनाया और धुलिया जेल मे भेज दिया। इस जेल मे उन्हे मराठी साहित्य के प्रकाण्ड पण्डित साने गुरु जी का सान्निध्य प्राप्त हुआ। साने गुरुजी ने उनके गीता प्रवचनों को लिपिबद्ध किया। कालान्तर मे "गीता-प्रवचन' नामक ग्रथ हिन्दी, गुजराती, सिन्धी, मलयालम, तमिल, उडिया, बगला, आदि भाषाओं मे प्रकाशित हुआ।

धुलिया कारागार ने विनोबा भावे के जीवन मे एक नया मोड़ दिया। उनके मस्तिष्क में भूमिदान की भावना उद्भूत हुई। उन्हे प्रतीत हुआ कि वे एक नवीन विचार-क्षितिज के दर्शन कर रहे हैं। लेकिन उन्होने जिन व्यक्तियों को अपने नवीन

विचार-क्षितिज के दर्शन कराये उन व्यक्तियो ने उनकी खिल्ली उडायी और राय दी कि उनके मनोरम स्वप्न बालू की भीत हैं या हवाई किले हैं या आकाश-कुसुम हैं। वस्तुतः हर महापुरुष, चाहे वह विज्ञानवेत्ता हो या आविष्कारक, स्वप्न-द्रष्टा होता है और हर युग उसके सपनो की खिल्ली उडाता है लेकिन जब महापुरुष अपने अनवरत उद्यम के योग से अपने सपनो को साकार करता है तब युग उसकी पूजा करता है। युग ने विनोबा-भावे के भूदान-यज्ञ सबधी विचार को १९३२ ई० मे मान्यता नही दी। दूसरी बात यह थी कि १९३२ ई० मे इस विचार को कार्यान्वित करने का वातावरण भी भारत मे नही था क्योकि भारत गुलाम था। लेकिन भावे को अपने पर अखण्ड विश्वास था। जब वे धुलिया कारागार से मुक्त हुए तब फिर वर्धा मे रहने लगे। सन् १९३५ ई० मे उन्होने ग्राम-सेवा-मण्डल नामक सस्था स्थापित की और वर्धा के नजदीक पवनार ग्राम मे वास करने लगे।

१९४० ई० मे जब गाँधी जी ने उन्हे प्रथम व्यक्तिगत सत्याग्रही घोषित किया तब अनेक भारतीय नेता उन्हे ईर्ष्या की दृष्टि से देखने लगे थे। १९४२ ई० मे जब गाँधी जी ने "भारत छोडो" आन्दोलन का बिगुल बजाया तब भावे को गिरफ्तार कर मध्य प्रदेश की सिवनो कारागार मे भेज दिया गया था। उन्होने १८ अप्रैल, १९५१ मे तेलगाना स्थित पोचमपल्ली गाँव मे सर्वप्रथम भूदानयज्ञ का श्रीगणेश किया। उनकी मान्यता है कि पूँजीवादी जमाना अपनी अन्तिम साँसे गिन रहा है, दुनिया मे वैयक्तिक सम्पत्ति नामक कोई वस्तु नही है, वैयक्तिक सम्पत्ति की भावना सामन्तवादी और पूँजीवादी युगो की देन है, प्राकृतिक वस्तुओ पर वैयक्तिक अधिकार नही होना चाहिए और हवा, पानी आदि की तरह जमीन पर सभी मानवो का समान अधिकार है। आरभ मे विनोबा भावे व्यक्तियो से उनकी जमीन का छठा भाग, माँगते थे। उनके विचारानुसार यदि हम स्वेच्छा से ऐसा नही करेगे तो समाज मे हिंसक क्रान्ति होगी। अभिप्रेत अर्थ यह है कि विनोबा भावे भारत मे अहिंसक क्रान्ति के अग्रदूत हैं। उन्होने लिखा है—'जहाँ मैं दान लेता हूँ वहाँ हृदय-मथन की' हृदय-परिवर्तन की, मातृ-वात्सल्य की, भ्रातृभावना, की, मैत्री की और गरीबो के लिए प्रेम की आशा करता हूँ। जहाँ दूसरो की फिक्र की भावना जागती रहती है वहाँ समत्व बुद्धि प्रकट होती है, वहाँ वैर-भाव टिक नही सकता। वैर-भाव का स्वतत्र अस्तित्व ही नही होता। पुण्य मे ताकत होती है, पाप मे कोई ताकत नही होती। प्रकाश मे शक्ति होती है, अन्धकार मे कोई शक्ति नही होती। प्रकाश को अन्धकार का अभाव नही कह सकते। प्रकाश वस्तु है, अन्धकार अवस्तु है। लाखो वर्षो के अन्धकार मे प्रकाश ले जाइए, एक क्षण मे अन्धकार का निवारण हो जायेगा। वैसे ही आज पुण्योदय हुआ है। उसके सामने वैर-भाव नही टिक सकता। यह भूदान-यज्ञ अहिंसा का एक प्रयोग है, जीवन-परिवर्तन का एक प्रयोग है।'

पोचमपल्ली गाँव की जन सख्या तीन हजार थी और दो हजार व्यक्ति भूमिहीन थे। भूमिहीनो ने विनोबा जी से ८० एकड भूमि की माँग की। विनोबा जी के आह्वान पर श्री रामचन्द्र रेड्डी नामक ग्रामीण ने १०० एकड भूमि का दान किया जिसका वितरण भूमिहीनो मे किया गया। विनोबा जी ने सभी से भूमि माँगना आरभ किया जिसका परिणाम यह हुआ कि तेलंगाना मे सिर्फ दो महीनो मे उन्हे बारह हजार एकड भूमि प्राप्त हो गयी। उनके निर्देशानुसार भूदान समितियो का गठन हुआ। वे मध्य-प्रदेश और उत्तरप्रदेश का पैदल भ्रमण कर १४ सितम्बर, १९५२ ई० मे बिहार आये। उन्होने बिहार की ३२ लाख एकड भूमि का व्रत ग्रहण किया। चाण्डिल सम्मेलन मे उन्होने तय किया कि १९५७ ई० तक सम्पूर्ण भारत की कृषि-योग्य भूमि के छठे अश के रूप मे पाँच करोड एकड भूमि का सग्रह किया जाय और देश के लगभग एक करोड भूमिहीन परिवारो मे दत्त भूमि वितरित की जाय। लेकिन देश ने विनोबा भावे के आह्वान पर पर्याप्त ध्यान नही दिया जिसका परिणाम यह हुआ कि सितम्बर, १९६३ ई० तक सम्पूर्ण देश मे ४२ लाख एकड भूमि ही दान मे प्राप्त हुई। १० लाख एकड़ भूमि भूमिहीनो मे वितरित की जा चुकी है। कोई कह नही सकता कि भूदानयज्ञ विफल रहा।

भूदानयज्ञ का अन्तिम लक्ष्य सर्वोदय-समाज की रचना है। रस्किन नामक विचारक का एक ग्रथ है—"अनटू दी लास्ट" जिसका अर्थ है अन्त्योदय। इसमे लेखक ने बतलाया है कि ऊँच और नीच सबके मानवीय अधिकार बराबर हैं। महात्मा गाँधी ने जब यह ग्रथ पढा तो इन्होने विचारा कि समाज मे केवल अन्त्यज पडित नही हैं। यदि धनी धन से पडित हैं तो दरिद्र अपनी दरिद्रता से। इसलिए उदय दोनो का हो। अत महात्मा गाँधी ने "अनटू दी लास्ट" पुस्तक का रूपान्तर "सर्वोदय" नाम से किया। इसमे सबके कल्याण की भावना निहित है। लेकिन इस भावना मे नवीनता नही है। "सर्वेभवन्तुसुखिन" अर्थात् सब सुखी हो—यह भावना हमारी प्राचीनता की देन है। महात्मा गाँधी ने इस भावना को व्यावहारिक रूप देने का प्रयत्न किया और जब उनका निधन हो गया तब सर्वोदय की भावना के सबल पक्षधर विनोबा भावे बने। विनोबा भावे ने ३० जनवरी, १९४९ ई० को स्वय कहा था—"मैं आशा करता हूँ कि गाँधी जी की देह मुक्ति हम मे शक्ति-संचार करेगी और हम सत्य-निष्ठ जीवन जी कर सर्वोदय की तयारी के अधिकारी बनेगे।" इसमे सन्देह नही कि विनोबा का लक्ष्य महान् है और आज भूदान-आन्दोलन, सम्पत्तिदान, श्रम-दान, जीवन-दान और ग्राम-दान मे व्याप्त हो गया है।

जब भावे भूदान से ग्रामदान की मजिल पर पहुँचे तो उनके चित्त मे एक छटपटाहट पैदा हुई। उन्होने एक क्रान्तिकारी कदम उठाया। इसके परिणाम स्वरूप भूदान के लिए वे जिस गाँधी-निधि का उपयोग करते थे, उसका उपयोग करना उन्होंने

छोड दिया और सारी भूदान-समितियाँ तोड डाली। इतिहास इस बात का साक्षी है कि कोई भी दल या पार्टी अपनी व्यापकता के लिए किसी-न-किसी प्रकार का सगठन सुदृढ करती है। लेकिन विनोबा भावे ने इससे उल्टी प्रक्रिया को जन्म दिया। उन्होने लिखा है—"क्रान्तियाँ मान्त्रिक होती है, तान्त्रिक नहीं होती हैं। मत्र के बल से क्रान्ति होती है, तत्र के सगठन के बल से नही। सस्था से कोई साधारण सेवा का काम हो सकता है, उससे सत्ता बन सकती है परन्तु जन-सत्ता मे क्रान्ति लाने का काम उससे नही हो सकता। क्रान्ति के लिए मत्र चाहिए और लोग सारे मुक्त हो। हर कोई अपनी-अपनी इच्छा के अनुसार काम कर सकता हो। इस तरह सारी जनता पर आन्दोलन सौंप दें, तब क्रान्ति हो सकती है।" इस वैचारिक क्रान्ति का परिणाम यह हुआ कि मैसूर प्रदेश मे हिन्दुस्तान के विभिन्न राजनीतिक दलो के बडे-से-बडे नेता इकट्ठे हुए और प्रस्ताव पारित कर देश को ग्रामदान का कार्य उठाने का आदेश दिया। इस प्रकार हम देखते है कि विनोबा भावे ने जिस भूदानयज्ञ का श्री गणेश किया था उसने देश मे एक वैचारिक क्रान्ति का सर्जन किया। ग्रामदान क्या है, इसे उन्होने स्वय समझाया है—'...समझने की जरूरत है कि इस देश मे और दुनिया मे सम्पतिहीन कोई नही है। हर किसी के पास देने लायक कुछ न-कुछ चीज है। किसी के पास जमीन है, किसी के पास सम्पत्ति है, किसी के पास बुद्धि है, किसी के पास श्रम-शक्ति है। प्रेम तो सबके पास है, अथवा होना चाहिए। जिसके पास देने की जो चीज है वह उसे ग्राम-दान मे देनी चाहिए।" इस वैचारिक क्रान्ति की मशाल जलाये विनोबा भावे विगत २१ सितम्बर, १९६५ ई० को बेगूसराय पधारे। सुबह के सात बजे महिला कालेज मे बेगूसराय की जनता ने उनका सहर्ष स्वागत किया। स्वागत के बाद जब वे चलने लगे तब मैंने उन्हे प्रणाम किया। उन्होने मुझे बहुत ही गौर से देखा और आगे की ओर बढ़े। मैं श्री सुशीलकुमार सिंह, श्री कपिलदेव दुबे और डॉ० कृष्णदेव नारायण के साथ उनके निवास स्थान की ओर चला। रास्ते मे मैंने उन लोगो को कहा—'बाबा का आशीर्वाद मुझे प्राप्त हो गया। वे बडे ही गौर से मुझे कुछ देर देखते रहे।" मेरी बातो की ओर केवल सुशील बाबू ने ध्यान दिया और शेष व्यक्तियो पर इन बातो का कोई प्रभाव न पडा क्योकि वे अपनी बातो में मशगूल थे। सुशील बाबू अपनी सज्ञा के अनुरूप गुण धारण करते हैं और साधु सतो के प्रति हार्दिक श्रद्धा रखते हैं। हम लोग बाबा के निवास स्थान पर पहुँचे और उनकी सुख-सुविधा देख कर थोडी ही देर में लौट गये। हम लोग पुन: ग्यारह बजे उनके निवास स्थान पर पहुँचे और और बारह बजे तक उनके पास बैठे रहे। बाबा प्रवचन कर रहे थे। ऐसा प्रतीत होता था, उनके सामने हमारे मन की सारी जिज्ञासाएँ शान्त हो गयी हो। जब उनका प्रवचन समाप्त हुआ उन्होने दर्शको से कहा—"अब दक्षिणा लाव।" और चुप हो गये। मैंने तत्क्षण अपनी 'बीती बातें" पुस्तक उनको भेंट की और चरण छू कर प्रणाम किया। वे पुस्तक लेने के बाद आराम करने

लगे और हम लोग वहाँ से चलते बने। चार बजे शाम को तीस हजार की महती सभा में उन्होंने अपने भाषण मे मेरा स्मरण जिस रूप मे किया वह उनकी महत्ता का द्योतक है। उन्होने कहा—"...इस बेगूसराय की धरती पर एक-से-एक बडे साहित्यकार हो गये है। इनमे एक सुहृद जी हैं। उन्होंने आज अपनी एक बहुत अच्छी किताब "बीती बातें" पढने को दी। ऐसे लोगो को अपने कर्त्तव्य के बारे मे क्या बताऊँ ?" इसमे सन्देह नहीं कि तीस हजार की महती सभा मे एक-से-एक बड़े लक्ष्मी-पुत्र और सरस्वती-पुत्र उनके दर्शनार्थ पधारे थे। विनोबा भावे ने किसी का स्मरण नही किया। उन्होने दो शब्दों में मुझे ही आशीर्वाद दिया, यह मै अपने जन्म-जन्म के सचित पुण्यो के फल के रूप मे ग्रहण करता हूँ। विगत २६ सितम्बर, १९६५ को जब मैं बेगूसराय खादी-भण्डार में बाबा की छपी हुई जीवनी की तलाश मे गया तब उसके व्यवस्थापक रमाकान्त बाबू ने बतलाया—"बाबा तो आप पर ढरे हुए है। वे जब यहाँ से सिकन्दरा गये तब वहाँ भी आपकी खूब तारीफ की।" मैंने उन्हे कहा—'प्रशसा से केवल कानों मे गुदगुदी पैदा होती है और दस व्यक्ति जब उसे दुहराते हैं तब मन प्रसन्न हो जाता है लेकिन आशीर्वाद से व्यक्ति सदा फलता-फूलता रहता है। यह बाबा का आशीर्वाद है—मेरे लिए।"

भारतीय राजनीति के आकाश मे अनेक तारे चमके और अस्त हो गये। लेकिन विनोबा भावे उस लाल तारे की तरह दीखते हैं जो सबसे भिन्न है। आज उनके विचारों और कार्यों के अध्ययन के लिए विदेशो से बहुत लोग भारत में आते हैं और प्रभावित होते हैं। वह दिन दूर नही है जब गाँधी-दर्शन की तरह विनोबा-दर्शन का अध्ययन-अध्यापन देश मे ही नही, विदेशों मे भी होगा और बाबा ससार के शीर्षस्थ चिन्तको मे समादृत होंगे।

महर्षि अरविन्द ने महात्मा गाँधी मे कर्म की प्रधानता मानी थी और विश्व कवि रवीन्द्रनाथ ठाकुर मे ज्ञान की। हमारी मान्यता है कि सन्त विनोबा भावे मे ज्ञान, कर्म और भक्ति का अद्भुत समन्वय हुआ है। ऐसा समन्वय आज तक किसी महापुरुष मे नही हुआ है। सन्त विनोबा मे ज्ञान, कर्म और भक्ति का जो समन्वय हुआ है वह उनकी चिरकालिक जीवन-साधना का सुपरिणाम है। इस दिशा मे उन्होंने सर्वप्रथम कार्य यह किया कि उन्होंने 'गीता' का रूपान्तर मराठी पद्य मे किया और उसका नाम 'गीताई' रखा। जब वे धुलिया कारागार मे थे तब गीता पर प्रवचन करते थे। २१ फरवरी, १९३२ ई० से १९ जून, १९३२ ई० तक प्रत्येक रविवार को उन्होने प्रवचन किये थे जो 'गीता-प्रवचन' मे सगृहीत है। 'गीता-प्रवचन' का रूपान्तर १८ भाषाओं में हो चुका है। इस ग्रथ में उन्होने लिखा है, "मेरे जीवन मे गीता ने जो स्थान पाया है उसका मैं शब्दो मे वर्णन नही कर सकता। गीता का मुझ पर अनन्त उपकार है। रोज मैं उसका आधार लेता हूँ और रोज मुझे उससे मदद मिलती है। उसका भावार्थ जैसा मैं समझा हूँ, इन प्रवचनों मे समझाने की कोशिश की है। मैं तो चाहता

हूँ कि यह अनुवाद हर एक घर मे, जहाँ हिन्दी बोली जाती है, पहुँचे और घर-घर मे इसका श्रवण, मनन और पठन हो।"

दूसरा कार्य उन्होने यह किया कि उन्होने बौद्ध धर्म के मूल ग्रथ 'धम्मपद' का सकलन किया। उनका मत है कि महात्मा बुद्ध ने ब्राह्मणो और तपस्वी श्रमणो की विचार-परम्परा से विच्छिन्न समन्वय का प्रतिपादन नही किया है। वे इस बात पर बल देते है कि 'धम्मपद' के अध्ययन से विश्व-मानव के निर्माण मे साहाय्य प्राप्त होगा।

तीसरा कार्य उन्होने यह किया है कि सिखों के धर्म ग्रन्थ 'जपुजी' का उन्होने मूल-भाष्य प्रकाशित किया है। इसकी भूमिका मे उन्होने लिखा है—"यह नाम-स्मरण की किताब है। इसमे सत्य रूप भगवान् की उपासना है। हम सत्य-निष्ठ कैसे बनें—ऐसा आरभ मे प्रश्न उपस्थित किया गया है और अन्त मे "सत्य खण्ड" मे हमे पहुँचा दिया है। बीच मे साधना का वर्णन किया गया है। साधना सर्वसमावेशक है, जिसके आठ अग आखिर की पौडी मे निर्दिष्ट है।

चौथा कार्य उन्होने यह किया है कि उन्होने 'कुरान शरीफ' का सार निकालने के लिए अरबी भाषा और व्याकरण का अध्ययन किया तथा 'रुहुल कुरान' नामक ग्रथ प्रकाशित किया। 'रुहुल कुरान" का स्वागत इस्लामी जगत् ने श्रद्धापूर्वक किया है और स्वीकारा है कि उनकी यह देन अद्‌भुत है।

वे ईसाई धर्म ग्रथ बाईबिल के 'न्यूटेस्टामेन्ट' के अध्येता पिछले चालीस वर्षों से रहे हैं। वे इस ग्रथ का सार भी प्रस्तुत करेगे। अब उनका मत है कि आधुनिक युग न धर्म का है न राजनीति का। उनके विचारानुसार आधुनिक युग विज्ञान का है और इस युग मे ससार को आध्यात्मिक पथ अपनाना होगा। वे मानते हैं कि अध्यात्म और विज्ञान के समन्वय से धरातल पर स्वर्ग अवतरित होगा और राजनीति तथा विज्ञान के समन्वय से ससार सर्वनाश की राह पर जायेगा। इस नवीन विचारधारा ने पाश्चात्य जगत को भी प्रभावित किया है।

अनेक दिनो से यह बात हवा मे गूंज रही थी कि बाबा ३ नवम्बर ६५ को लखमिनिया आयेंगे लेकिन कोई निश्चित कार्यक्रम नही बतलाता था। लखमिनिया जाकर उनके दर्शन की उत्कट अभिलाषा समुद्र की लहरो की भाँति हृदय मे उमड़ रही थी। मैं २ नवम्बर, ६५ को नौ बजे रात मे श्री सुशील कुमार सिह (एस० डी० ओ०) के यहाँ गया। उन्हे अपने आने की खबर भेजी। वे अपने आफिस मे आये। मैंने उनसे बाबा के विषय मे पूछा। उन्होने छपा कार्यक्रम मुझे दिया और कहा—"सुबह आठ बजे मैं लखमिनिया जाऊँगा। आप भी मेरे साथ चले।" मैंने भी अपने चलने की स्वीकृति दे दी। मैं डेरे पर आया। पूजा-पाठ के उपरान्त कुछ लिखने बैठ गया। इतनी ही देर में श्री सुशील बाबू ने फोन से कहा—"कलक्टर साहब सुबह मे ही आ जाते है। इसलिए मैं सुबह सात बजे वहाँ पहुँच जाऊँगा। आप भी साथ चले।" मैंने उन्हे कहा कि

आप चले जायँ—मैं आ जाऊँगा।

३ नवम्बर, ६५ को मैं गाडी लेकर चित्रकार श्री कुज बिहारी शर्मा के यहाँ गया। उन्हे बाबा का फोटो लेने का आग्रह किया। वे प्रस्तुत हो गये। हम दोनो ने प्रसन्न मुद्रा मे लखमिनिया के लिए, प्रस्थान किया। लखमिनिया ब्लॉक मे गया। वही श्री शंकरशरण जी,आई० ए० एस० (कलक्टर) और श्री सुशील बाबू थे। मेरे आने की खबर मिलते ही आलोक कुमार और अभय कुमार भी दौडे हुए मेरे पास आये। मैंने कलक्टर साहब से मिलने के लिए चपरासी द्वारा खबर दी। उस समय ब्लॉक की कोई बैठक हो रही थी। सभी अफसर वहाँ बैठे थे। बैठक के बाद कलक्टर साहब ने मुझे बुलाया। बातें हुई। ग्यारह बजे से बारह बजे तक बाबा से मिलने का कार्यक्रम स्कूल मे था। हम सब लोग स्कूल मे गये। एक घटे तक प्रवचन होता रहा। इसके बाद बाबा डाक बगले मे गये। 'श्री' जी भी डाकबगला गये और बाबा से बाते की। मैंने बाबा से पूछा—"किस तिथि से किस तिथि तक आप भारतवर्ष के गाँवो और शहरो मे पैदल चले?" बाबा यह बात अपने एक भक्त को बतलाते गये और वे भक्त लिखते गये। लिखने के बाद उन्होंने फिर बाबा को दिखलाया। बाबा ने पूर्जा मुझे दिया जिससे ज्ञात हुआ कि ७ मार्च, १९५१ ई० से १८ जून, १९६४ ई० तक उन्होंने हिमालय से कन्याकुमारी और पजाब से आसाम तक प्रत्येक गाँव और शहर के चप्पे-चप्पे का पर्यटन किया है। १९ जुलाई, १९६५ ई० से कृश होने के कारण वे पदचारी नही रहे। अब वे मोटर से प्रत्येक गाँव और प्रत्येक शहर मे घूमते हैं और अपने लक्ष्य की सिद्धी के लिए जनमानस को अपने अनुकूल करने का भगीरथ-प्रयत्न करते हैं। सिर्फ मुँगेर जिले मे उन्हे पाँच सौ से अधिक ग्राम दान मे मिले हैं। पुर्जा लेने के बाद मैंने बाबा के चरणो को छूकर प्रणाम किया और बाहर चला आया। वे स्नान करने को स्नान-गृह मे गये। श्री शकरशरण जी, आई० ए० एस० वहाँ से चले गये। मैंने सुशील बाबू से विदाई ली और आलोक कुमार, अभय कुमार तथा श्री कुँजबिहारी शर्मा के साथ वहाँ से सुहृदनगर के लिए प्रस्थान किया। यह ईश्वर की कृपा और पूर्वजो का पुण्य प्रताप है कि मुझे बाबा का स्नेहाशीर्वाद प्राप्त हो जाता है। मेरे पास उनका कोई चित्र उपलब्ध नही था। श्री कुँजबिहारी शर्मा ने उस दिन उनका फोटो भी लिया। ईश्वर की कृपा से उनका चित्र भी उपलब्ध हो गया।

"बीती बातें" पुस्तक छपने के बाद मेरी लेखन शैली की तथा इस पुस्तक की चारों ओर प्रशसा होने लगी। विगत २१ सितम्बर, ६५ ई० को मैंने इस पुस्तक की एक प्रति बाबा को दी थी। उस दिन उन्होने भरी सभा मे इसकी काफी तारीफ की। २१ मार्च, ६६ को वे फिर बेगूसराय आये और बातचीत के सिलसिले में पुस्तक की चर्चा की और खोज भी। उनकी बातें सुनकर श्री अरविन्द कुमार "अरविन्द" एम० ए० ने अपनी पुस्तक 'बीती बातें' उन्हे दी। उसके बाद हम लोग डाक बगले से चले

गये। दो बजे हम लोग फिर डाक बंगला पहुँचे उन्हे विदा करने के लिये। देखा, वे पलथी मार कर चुपचाप पुस्तक उलट पुलट रहे हैं। पुन: वे लिखने लगे। हम लोग भी उनकी बगल मे चुप चाप बैठ गये। जब उनका लिखना समाप्त हो गया तब उन्होने हम लोगों को देखा। उन्होने जो कुछ लिखा था उसे मुझे दे दिया—"श्री कपिलदेव जी, 'बीती बाते' आपकी सरसरी तौर पर देख गया हूँ। इतनी सादी भाषा मे और निरहकार वृत्ति से लिखी हुई आत्म-कहानी बहुत कम देखने मे आई। धन्यवाद! विनोबा का जय जमीन!!" जब मैंने बाबा का यह आशीर्वचन पढा तो प्रसन्नता से गद्गद हो गया। हम लोगो ने उनके चरणो का स्पर्श किया। उन्हे फूल मालाओ से लाद दिया और जय-जयकार के साथ बिदा किया उन्होने यहाँ से चार बजे पूर्णिया के लिये प्रस्थान किया। विष्णुदेव बाबू के यहाँ हम लोग गये। पल्लू ने विष्णुदेव बाबू, सुशील बाबू और लल्लू को बाबा का लिखा पुर्जा दिखलाया। सुशील बाबू ने कहा—

सुहृद जी तो २९ सितम्बर, ६५ को ही हम लोगो से बोले थे कि आज बाबा मुझे बडे गौर से एक बार देखने लगे थे। उनका आशीर्वाद मुझे प्राप्त हो गया। मैंने उन्हे कहा कि आप धार्मिक ख्याल के व्यक्ति हैं। इस लिये मेरी बाते समझी थी तथा और व्यक्ति जैसे श्री कपिलदेव दुबे (आई० पी० एस०) और डाक्टर श्री कृष्णदेव-नारायण की समझ मे मेरी बाते नही आई। लेकिन समय आयेगा कि मेरी बाते भी लोग समझने लगेगे। महात्मा का एक नजर देखना भी बहुत बडा आशीर्वाद होता है। फिर बाबा प्रदत्त आशीर्वाद की चर्चा प्रान्त भर मे फैल गयी।

भारतवर्ष मे जिन महान व्यक्तियो ने धार्मिकता और आध्यात्मिकता का प्रसार किया है उनमें बाबा का नाम अन्यतम है। वे दोनो के मसीहा हैं। यह उन्ही की चेष्टा का परिणाम है कि आजादी के बाद भारतवर्ष मे वर्ग-सघर्ष की ज्वाला नही सुलगी। इस दृष्टि से हम कह सकते हैं कि वे समाज मे अर्थ की समता शान्ति से चाहते हैं, बल से नही।

७ मार्च, १९५१ से १८ जून, १९६४ ई० तक तेरह वर्ष तीन महीना ग्यारह दिन तक हिमालय से कन्याकुमारी तक और पजाब से आसाम तक प्रत्येक गाँव और प्रत्येक शहर के चप्पे-चप्पे का पर्यटन बाबा ने पैदल किया। इनके विषय मे महात्मा गाँधी ने क्या कहा था।

गाँधीजी ने कहा था—

'श्री विनोबा भावे कौन है? मैंने उन्हे ही इस सत्याग्रह के लिए क्यो चुना? और किसी को क्यो नही? मेरे हिन्दुस्तान लौटने पर सन् १९१६ मे उन्होने कालिज छोडा था। वे सस्कृत के पडित हैं उन्होने आश्रम मे शुरू से ही प्रवेश किया था। आश्रम के सबसे पहले सदस्यो मे से वे एक है। वे आश्रम मे सब प्रकार की सेवा-प्रवृत्तियो—रसोई से लगाकर पाखाना सफाई तक मे हिस्सा ले चुके हैं। उनकी स्मरण शक्ति

आश्चर्यजनक है। वे स्वभाव से ही अध्ययनशील है।'

उनके पास उनके शिष्यो और कार्यकर्त्ताओ का एक ऐसा दल है जो उनके इशारे पर हर तरह का बलिदान करने को तैयार है।

विनोबा कई वर्षो तक वर्धा के महिला आश्रम के सचालक भी रहे है। उनका विश्वास है कि गाँववालो को रचनात्मक कार्य के बगैर सच्ची आजादी नही मिल सकती। वे राजनीति के मच पर कभी लोगो के सामने आये ही नही।

श्री विनोबा युद्धमात्र के विरोधी है, परन्तु वे अपनी अतरात्मा की तरह उन दूसरो की अतरात्मा का भी उतना ही आदर करते है जो युद्धमात्र के विरोधी तो नही हैं, परन्तु जिनकी अन्तरात्मा इस वर्तमान युद्ध मे शरीक होने की अनुमति नही देती। अगरचे श्री विनोबा दोनो दलो के प्रतिनिधि के तौर पर है, यह हो सकता है कि सिर्फ हाल के इस युद्ध मे विरोध करने वाले दल का खास एक और प्रतिनिधि चुनने की मुझे आवश्यकता अनुभव हो।

'बीती बातें'
बहुबिध प्रशसित ग्रन्थ
केवल
दो सम्मत्तिया

'बीती बातें' आपकी मैं सरसरी तौर पर देख गया हू
इतनी सादी भाषा मे और निरहकार वृत्ति से
लिखी हुई आत्म-कहानी बहुत कम देखने मे आई।।

(महान सत) विनोबा
२१-३-६६

सुहृद जी की रचना 'बीती बातें' देखी। सुहृद जी की अपनी शैली है, भावपूर्ण रोचक और साहित्यिक। उन की रचनाओ पर उनके व्यक्तित्व की छाप पड ही जाती हैं। सुहृद सुहृद हैं। इसलिये उनके अपनो का दायरा बहुत बडा रहा है। इसलिये तो 'बीती बातें' मे बिहार के बाहर के बहुत से लोगो का जिक्र आया है। राजनेताओ का, साहित्यिको का, सरकारी अधिकारियो का, जमीदारो का और उद्योगपतियो का और सार्वजनिक कार्यकर्त्ताओ का। सुहृद जी नीलकठ है। उनकी अमलदारी मे भेद-भाव नहीं है।

जगजीवनराम
(मत्री भारत सरकार)

"बीती बाते" पुस्तक छपने के बाद मेरी लेखन शैली की तथा इस पुस्तक की चारो ओर प्रशसा होने लगी। ता० २१-९-६५ को मैंने इसकी एक प्रति महान सत श्री विनोबा जी को दी थी। उस दिन उन्होने भरी सभा मे इसकी काफी तारीफ की। ता० २१-३-६६ को बाबा फिर बेगूसराय आए और उन्होने इस पुस्तक के सबध मे इस पर लिखकर दिया—

"श्री कपिलदेव जी, "बीती बाते" आपकी मैं सरसरी तौर पर देख गया हू। इतनी सादी भाषा मे और निरहकार वृत्ति से लिखी हुई आत्म कहानी बहुत कम देखने मे आई। धन्यवाद ! विनोबा का जय जमीन।"

ऐसे-ऐसे महापुरुषों का आशीर्वाद जब मै पाता रहता हू तब ईर्ष्या करने वाले सज्जनों के विषय मे मेरे मन मे कभी राग-द्वेष पैदा नही होता। मैं तो प्रार्थना करता रहता हू—हे परमात्मा, ऐसी वृत्ति वालों को सद्‌बुद्धि दो—बातो को समझने की शक्ति दो।

शायद दिसम्बर, १९६१ की बात है। मैं मुंगेर से श्री रवीन्द्र नारायण (लल्लू) जी के साथ सध्या के जहाज से इस पार आया। जहाज से ट्रेन तक आने मे लगभग एक मील बालू पर पैदल चलना पडता था। मेरे लिए यह कोई नई बात नही थी क्योकि मुझे अपने घर (सिताबदियारा) जाने मे भी काफी दूर बालू पर चलना पडता है। हम लोग फर्स्ट क्लास मे बैठे। नौकर से गर्म पानी मगवाकर हाथ-पैर धोए। उसी समय एक दिव्य पुरुष गाडी मे आए। उनके साथ बहुत-से लोग थे। उनका चेहरा चमक रहा था। गाडी मे बैठते ही वे ध्यान-मगन हो गए। मेरी आदत कुछ अधिक बोलने की है। मैंने उनसे पूछा—"आप कहाँ जायेंगे ?" उत्तर मिला—"सहरसा और वे फिर ध्यानस्थ हो गए।

गौर वर्ण, प्रशस्त ललाट, भव्य मुख मडल, आखो मे ज्योति तथा अपनेपन का भाव, दिव्य भाल, अधरो पर मधुर मुस्कान, धोती और कुर्ता मे मैंने आनन्दमार्ग के उन्नायक बाबा श्री प्रभातरजन का प्रथम दर्शन दिसम्बर, १९६१ ई० मे गगा के तट पर लगी हुई उस रेलगाडी के फर्स्ट क्लास मे डब्बे मे किया। मैंने अनुभव किया कि वे भारतवर्ष के प्राचीन ऋषि-मुनियो की परम्परा मे अवतरित होकर इस तरह का काम कर जाना चाहते है जिससे देश का बच्चा-बच्चा लाभ उठा सके और उसका मानसिक स्तर उन्नत होकर सुखमय जीवन का मार्ग प्रशस्त हो सके। सहृदयता उनमें कूट-कूटकर भरी हैं। उनकी सहृदयता उनके परिचितो तक ही सीमित नही है, विशाल जन-समुदाय इससे लाभ उठाता है। यही कारण है कि उनके अनुयाइयो की सख्या दिन दूनी रात चौगुनी बढ रही है। ये प्रथम दृष्टि मे ही किसी भी व्यक्ति को पहचान जाते हैं कि कौन कैसा है। फिर भी वे सबको एक साथ लेकर चलना अपना कर्त्तव्य समझते हैं—वे सत जो ठहरे।

बीस-पचीस वर्ष पहले से उनका नाम सुनता था। मैंने मन मे कल्पना कर ली थी कि वे कोई मोटे अर्ध-वयस्क व्यक्ति होगे। पर उनका दर्शन प्राप्त करते ही मन की सभी धारणाएँ विपरीत निकली। वे बहुत-सी भाषाए जानते है। उन भाषाओ का उनका ज्ञान अगाध है।

उनके व्यक्तित्व से आकर्षित होकर मैंने उन्हे जानने के विचार से फिर प्रश्न किया—"आप क्या करते है ?"

उत्तर—मैं लेखक हू।

प्रश्न—"किस भाषा मे लिखते है ?"

उत्तर—"सभी भाषाओं मे।"

तब तो मेरी उत्सुकता और भी बढ गई। मैंने गाडी से नीचे आकर उनके साथ के एक व्यक्ति से पूछा—"ये कौन सज्जन है ?"

उत्तर मिला—"आनन्द मार्ग के सचालक यही हैं।"

इसके बाद मै डब्बे मे गया और उनके पैर छूकर प्रणाम किया। लल्लू को भी प्रणाम करने के लिए कहा।

बाबा ने पूछा—"आप सुहृद जी है ?"

मैंने उत्तर दिया—"जी हाँ।"

गाडी खुलने पर डिब्बा उनके अनुयाइयों से भर गया। उनमे मेरे परिचित बहुत आदमी थे—बडे-बडे अफसर और बडे-बडे विद्वान बाबा "सुहृद" छन्द की व्याख्या संसार की सभी भाषाओ मे करीब पैंतालीस मिनट तक करते रहे या यो कहा जाय कि उस सुहृद शब्द के साथ मेरी प्रशसा करते रहे।

साहेबपुर कमाल आने पर मैं गाडी से उतर गया, बाबा उसी गाडी से सहरसा गए। उसके बाद दो बार बाबा बेगूसराय आए और उन्होने मेरी काफी तारीफ की। जब-जब बाबा ने मेरे विश्य मे कुछ कहा, बेगूसराय के प्रसिद्ध वकील तथा रईस श्री वैद्यनाथ प्रसाद राय ने मुझसे सारी बाते कही। श्री रामतनुक बाबू ने भी ये बातें कही। श्री रामतनुक बाबू अपनी चलती हुई वकालत को ठुकरा कर आनन्द मार्ग के प्रचार मे अपना पूरा समय लगाते हैं।

अलग से देखने पर बाबा साधारण पुरुष ही लगते हैं। पर, उनके निकट पहुँचने पर जब उनकी दिव्य ज्योति के आलोक मे आदमी अपने को पाता है तब उसे ज्ञात होता है कि उसका जीवन सार्थक हो गया है। ऐसे सत का दर्शन जन्म-जन्मान्तर के पुण्य का फल है।

अब मैं आत्म-प्रशसा एव आत्म-प्रचार से कोसों दूर हूँ। कर्म से सन्यासी हूँ, चिन्तन से सयमी। अपने रहने के लिए मैंने एक तीन-मजिला मकान सुहृदनगर मे बनवाया है जिसमें मैं रहता हूँ और मेरे अतिथि लोग भी इसी मकान मे ठहरते हैं।

अक्सर अतिथियो से मकान भरा ही रहता है। कभी-कभी यह खाली भी रहता है। उस समय मेरे कोई मित्र आ जाते हैं और मेरे साथ ठहरते हैं। वे अकस्मात पूछ बैठते हैं—' इतने बडे मकान मे आप अकेले कैसे रहते है ?" पूछने वाले सज्जन को मैं जबाव मे कहता हूँ—"देखने मे यह ईंट-पत्थर का तीन-मजिला महल जरूर है, लेकिन वास्तव मे है तो यह फकीर की कुटिया ही।" हमारे कमरे मे विस्तरा लगा हुआ तथा हर कमरे को जो सजा हुआ देख रहे है यह मेरे लिए नही है, आप जैसे मित्रो के लिए है। जो आते है, आराम से रहते हैं—विश्राम करते हैं। हर कमरे मे मैंने आपही जैसे मित्रों के लिए बिजली बत्ती तथा पखा लगवा दिया है। इनना ही नही, स्नान घर मे भी पखा वगैरह लगवा दिया है जिससे कि आप जैसे अतिथियो को किसी बात के लिए किसी तरह की तकलीफ नही हो। लेकिन ठहरने वाले या मिलने वाले मेरे मित्रो को एक बात पर बराबर ध्यान रखना पडता है—वह है सफाई। यहाँ तक कि मैं स्नान घर (बाथ रूम) मे भी जूते ले जाना पसन्द नही करता हूँ। जूते पहन कर जाने से उसमे गन्दगी हो जायगी—यह मैं मानना हूँ। इसका पालन मैं उस समय भी करता था जब मैं राजनीतिक कैदी था। जेल के जिस कमरे मे मैं रहता था उसको इतना साफ-सुथरा रखता था कि मेरे साथ रहने वालो तथा मिलने वाले मित्रो को तो प्रसन्नता होती ही थी, जेल के अधिकारी भी जब मेरे कमरे मे आते थे तो सफाई देख कर प्रसन्नता से गद्‌गद हो जाते थे। इसी सफाई के उपलक्ष्य मे जेल के अधिकारियो ने मेरी रिहाई के बहुत पहले ही मुझे छोड दिया था। जेल मे यो भी बहुत सफाई रहती है—कही कागज का एक फटा हुआ टुकडा भी देखने को नही मिलता है, फिर भी जेल के इन्तजाम से मेरा व्यक्तिगत इन्तजाम अच्छा था। मै जहाँ कही भी रहता हूँ, सफाई पर अधिक ध्यान रखता हूँ। बचपन मे मेरी आजी मुझसे कहा करती थी—"सडक पर थूक नही फेंकना, कही गन्दगी नहीं फैलाना, क्योकि रात्रि मे देवता लोग चलते है।" उनकी कही हुई बातो को मैंने अपने जीवन का आदर्श बना लिया है। इससे मेरे साथ रहने वाले मित्रो को तो आराम मिलता ही है, मुझे भी आत्म-सतोष प्राप्त होता है। आप कितना भी अच्छा कपड़ा पहने रहिए, अगर वह साफ नही है तो देखने वालो को प्रसन्नता नही होगी। अपने मन मे भी असतोष जैसा लगेगा और यदि कोई फटा कपडा ही पहने हुए हैं, पर वह साफ है तो देखने वाले भी उसे पसन्द करेगे और अपने मन मे तो आनन्द प्राप्त होगा ही। महापुरुषो की जीवनी पढने मे मुझे अधिक मन लगता है, साथ-ही-साथ लिखने मे भी। क्योंकि अँधकारमय जीवन को प्रकाश देने के लिए महापुरुषो के जीवन-चरित्र से बढकर कोई और उत्तम माध्यम नही है। "मेरे-अपने" नामक अपनी पुस्तक मे मैंने कुछ महापुरुषों के सम्बन्ध मे लिखा है। इसी तरह की दूसरी पुस्तक भी तैयार हो चली है—शीघ्र प्रेस में जायगी।

मेरी बहुत-सी पुस्तकें प्रकाशित हुई। यह देखकर कुछ लोगो को काफी जलन

हुई। इतना ही नहीं, भारतवर्ष की सभी पत्र-पत्रिकाओ मे जब मेरी कविताएँ छपने लगीं तो उन्हे मुझसे राग-द्वेष होने लगा। सन् १९३२ ई० की बात है। मुझसे ईर्ष्या रखने वाले एक सज्जन ने अपने शिष्यो को तरह-तरह की गन्दी बातें सिखलाकर मेरे विरुद्ध प्रचार करने के लिए बाहर भेजा। उनमे दो व्यक्ति गोरखपुर गए और कल्याण-सम्पादक श्री हनुमान प्रसाद जी पोद्दार से मिले। उनसे उन लोगो ने मेरे विरुद्ध बहुत सी बुरी बाते कही। उन दिनों डाक्टर भुवनेश्वर मिश्र "माधव" भी कल्याण मे सहायक सम्पादक के रूप मे काम करते थे। उन दोनो सज्जनो की बातो को पोद्दार जी बडे ही धैर्य के साथ सुनते रहे—वे विदेह जो ठहरे! उन पर उनकी बातो का कोई असर नही हुआ। पर, डाक्टर माधव को उन बातो से काफी तकलीफ हुई लेकिन भारतीय शिष्टाचार वश—कि अपने घर पर आए हुए भले-बुरे सभी व्यक्तियो का आदर करना चाहिए। वे चुप रहे। कुछ दिनो के बाद मैं भी गोरखपुर गया और वहाँ के सबसे धनीमानी रईस बाबू गिरिधर दास के यहाँ पर महीनो ठहर गया। उन दिनों 'कल्याण' का "शक्ति-अक" नामक विशेषाक निकल रहा था। मैं एक दो दिन बाद देकर बराबर पोद्दार जी के यहाँ जाता था और वहाँ के शान्त वातावरण मे उनके सत्सग मे कुछ सीखता था। एक दिन पोद्दार जी ने मुझसे कहा—' शक्ति-अक निकल रहा है। उसके लिए एक कविता दीजिए।" पोद्दार जी ने कई दिन तकाजा किया, फिर भी मैं कविता नही दे सका तब डाक्टर माधव ने मुझसे कहा—"बेगूसराय के दो सज्जन यहाँ आए थे। उन लोगों ने सम्पादक जी से आपकी काफी शिकायत की है, इसीलिए आपसे कविता के लिए इतना तकाजा हो रहा है।" दूसरे दिन मैंने एक कविता दी जिसकी प्रथम पक्ति यो है—उठ तमक तान अम्बे! त्रिशूल! इस कविता मे से एक शब्द हटा दिया गया था—' फिजूल"। इसके स्थान पर कोई दूसरा शब्द दिया था।

वे दोनो सज्जन गोरखपुर से लखनऊ गए और "माधुरी" के सम्पादक श्री रूपनाराण पाण्डेय और श्री मातादीन शुक्ल से मिले। वहाँ भी मेरे विषय मे उन्होने बहुत-सी बुरी बुरी बातें कही। जब मैं गोरखपुर से बेगूसराय आया तो देखा शुक्ल जी का एक पत्र रखा हुआ है। उन्होने सारी बाते उस पत्र मे लिखी थी, साथ-ही-साथ माधुरी के विशेषाक के लिए एक कविता का तकाजा भी था। मैने शुक्ल जी के पास एक कविता भेज दी। जहाँ तक मुझे याद है, कल्याण और माधुरी के विशेषाक सावन महीने मे निकले थे—छ-छ, सात-सात सौ पृष्ठो के मोटे विशेषाक! जब दोनो विशेषाक बेगूसराय मे लोगो के पास आए तब मेरे विरुद्ध प्रचार कराने वाले सज्जन मन-ही-मन मर गए। माधुरी के विशेषाक के बाद वाले अक मे मेरी एक कविता मेरे चित्र के साथ छपी। फिर माधुरी मे ही श्री सत्यनारायण "सत्य" का मेरे ऊपर लिखा हुआ "सुहृद और उनका काव्य" शीर्षक एक लेख छपा।

यह तो बात हुई साहित्य-क्षेत्र की। अब लीजिए राजनीति-क्षेत्र की बात। मेरी

पैदाइश ऐसे नक्षत्र मे हुई है कि सभी महापुरुष आशीर्वाद देने मेरे घर पर ही आ जाते है। यह आदत स्वराज्य होने के पहले ही डॉक्टर राजेन्द्र प्रसाद तथा बाबू साहब (डाक्टर अनुग्रह नारायण सिंह) ने लगा दी था। बाहर से जो लोग बेगूसराय आते थे, मेरे यहाँ ठहरते थे। जब देश आजाद हुआ और मेरे यहाँ ठहरने वालो मे से बहुत-से व्यक्ति सरकार मे आ गए या जिन लोगो से पहले से ही घनिष्ठ सम्बन्ध था, उनमे से बहुत-से आदमी मन्त्रिमण्डल मे सम्मिलित हुए तब वे लोग बेगूसराय आने पर मेरे यहाँ आकर मुझे आशीर्वाद देने की कृपा अवश्य करते है। यह देखकर बहुतो को ईर्ष्या होती है और वे मेरे विरुद्ध तरह-तरह की शिकायते लिखकर उन सम्मान्य अतिथियो के पास भेजते रहते हैं। लेकिन जो लोग मुझे अच्छी तरह जानते है और स्वय मजबूत आदमी है, उन दुष्टो की बातो पर कभी ध्यान भी नही देते। लेकिन तारीफ की बात तो यह है कि उन लोगो को भी जब कोई काम आ पडता है तब मेरा दरवाजा खट-खटाना पडता है और चाय-पानी भी पीते है। यदि उचित काम होता है तो मैं उनकी अवश्य सहायता करता हूँ।

अभी-अभी दिसम्बर, १९६५ ई० की बात है। १९ दिसम्बर के साप्ताहिक हिन्दुस्तान मे मेरा एक लेख छपा। उसे पढकर किन-किन महाशयो को ईर्ष्या हुई यह मैं जानता हूँ और परमात्मा भी जानता है। उन्होने मेरे विरुद्ध बहुत सी बुरी बातें लिखकर आदरणीय बन्धु श्री बाँकेबिहारी भटनागर जी के पास भेजी। उन दिनो मेरे एक अजीज भाई दिल्ली मे थे। भटनागर जी से सारी बाते जानकर उन्होने उनका स्पष्टीकरण किया। मैं कभी-कभी सोचता हूँ कि इस तरह की बाते कुछ लोग मेरे विरुद्ध क्यो करते है। और मैं इस निर्णय पर पहुँचता हूँ कि जब कोई प्रतिभाशाली हस्ती इस दुनिया मे आती है तब उसे इस लक्षण से पहचाना जा सकता है कि "सभी मूर्ख लोग उसके विरुद्ध उठ खड़े होते है।"

मैने अपने जीवन मे मेरे प्रति अपकार करने वालो को भी उपकार से ही जवाब दिया है और भविष्य मे भी देता रहूँगा। मैं तो हमेशा कहता हूँ कि जो लोग मेरी बुराई करते है, परमात्मा उनको सद्बुद्धि दे—बातो को समझने की शक्ति दे। जीवन मे मैं सभी की तारीफ ही करता हूँ, निन्दा नही। दूसरे की निन्दा करने से स्वय अपना मन भारी बना रहता है और दूसरो की तारीफ करने से मन प्रसन्न रहता है। जो दूसरो की बुराई करता है वह खुद नीचे गिरता है और जो दूसरो की भलाई करता है वह ऊपर उठता है। जैसे कुआँ खोदने वाला नीचे जाता है और महल बनाने वाला ऊपर। मेरे जैसा छोटी औकात का बिना पढा-लिखा और बिना पैसे वाला आदमी इतना ऊपर उठ जाय, यह भी आश्चर्य की बात है। लेकिन यह भी ईश्वर की कृपा है कि इसीलिए देश के बड़े-से-बड़े और छोटे-से-छोटे सभी मुझे आशीर्वाद देने सुहृदनगर आते है और आते रहेगे।

सन् १९४८ ई० की बात है। बाबू साहब (डाक्टर अनुग्रह नारायण सिंह) बिहार सरकार के अर्थ मन्त्री होने पर भी जब-जब बेगूसराय आए और सुहृदनगर मे मेरे ही निवास-स्थान पर हर बार ठहरे तब कुछ लोगो को यह बात खटकने लगी। इसी बेगूसराय सब डिवीजन के लखमिनियाँ थाने के एक सज्जन ने मेरी काफी शिकायते लिखकर बाबू साहब के पास भेजी। साथ-साथ यह भी लिखा—"आप सुहृद जी के यहाँ नही जाया कीजिए और न वहाँ ठहरिए।" बाबू साहब ने उन महाशय को उत्तर देते हुए लिखा कि "आपसे अधिक मैं सुहृद जी को जानता हूँ। रही बात ठहरने की, तो आपही मुझे बतलाइए कि मैं कहाँ ठहरा करूँ? तब मैं इस बात पर विचार करूँगा।" बाबू साहब ने उक्त सज्जन का पत्र और उन्हे जो उत्तर दिया था उसकी नकल डाक से मेरे पास भेज दी। बाबू साहब से जब भेट हुई तब उन्होने मुझसे पूछा—"चिट्ठी मिल गई थी?" मैंने कहा—"जी हाँ?" श्री ब्रह्मदेव राय ने उन पत्रो को पढकर उक्त सज्जन पर और उनके पत्र पर काफी टीका-टिप्पणी की।

सन् १९६० ई० के २८ दिसम्बर को बिहार के सिचाई तथा विद्युत मन्त्री श्री महेशप्रसाद सिह बखरीमझोल की ओर आए थे। मझोल से उन्होने बेगूसराय के एस० डी० ओ० श्री शादीलाल चोपडा को फोन किया कि 'सुहृद जी को जाकर खबर कीजिए कि मैं उनके यहाँ दो बजे तक आ रहा हू, कही बाहर नही जाय।" फोन करने के बाद एक सज्जन ने घोर बिरोध करते हुए उनसे कहा—"आप सुहृद जी के यहाँ नही जाइए।" इस पर महेश बाबू ने कहा—"आप ही जहाँ कहेगे वहाँ मैं जाऊँगा और जहाँ नही कहेगे वहाँ नही जाऊँगा। आपसे अधिक और अधिक दिनो से मैं सुहृद जी को जानता और पहचानता हूँ। उनके यहाँ मैं जरूर जाऊँगा।" महेश बाबू को मना करने वाले बेगूसराय इलाके के एक एम० एल० ए० साहब थे।

श्री शादीलाल चोपडा ठीक एक बजे मेरे यहाँ आए और महेश बाबू का सवाद मुझसे कहा। महेश बाबू दो बजे मेरे यहाँ (सुहृदनगर) पधारे। उनके साथ जो लोग थे उन्हे नीचे ही ठहरा कर हम लोग ऊपर गए। वहाँ बीस-पचीस मिनट हम लोगो ने बातें की। जिस सज्जन ने यहाँ आने से महेश बाबू को रोका था वह भी साथ आए थे और नीचे खडे थे। मैंने अपनी पुस्तक "जगजीवनराम" की एक प्रति महेश बाबू को दी जिसमे एक जगह कुछ वाक्य लिखे हुए थे। उन्हे वे पढ गए। पढने के बाद उन्होने नीचे खडे हुए सज्जनो को ऊपर बुलाया और उन वाक्यो को पढकर उन्हे सुनाया। फिर रोकने वाले सज्जन से बोले—"जानते हो मैं इसीलिए सुहृद जी के यहाँ आता हूँ।" फिर चाय वगैरह के बाद चार बजे हवाई जहाज से महेश बाबू पटना के लिए प्रस्थान कर गए।

तारीफ तो यह है कि कुछ लोग छिपकर मेरी शिकायत भी करते है और मेरी खुशामद मे भी लगे रहते हैं। कुछ लोगो को दूसरे की उन्नति देखकर जलने की आदत

पड जाती है। मैं किसी की बुराई नही करता। फिर भी कुछ लोग मेरे खिलाफ बुरी-बुरी बाते लिखकर जहाँ-तेहाँ भेजते रहते है। इससे मेरा कुछ बिगडता नही है और न आजतक कभी इसके लिए चिन्ता ही की है। मैं तो कहता हूँ—

देखते है देखने वाले यहाँ,
मर रही दुनिया मगर हम जी रहे।

तुलसीदास ने सबसे पहले उन्ही दुष्टो की वन्दना की है। लेकिन मेरा जन्म उस कुल मे हुआ है जिसको प्रेम से कोई भी झुका सकता है, आँखे दिखला कर नही। बेगूसराय के एक प्रसिद्ध वकील और मुगेर डिस्ट्रिक्ट बोर्ड के तत्कालीन चेयरमैन ने एक दिन बातचीत के सिलसिले मे मुझसे कहा था—अमुक-अमुक व्यक्ति दिन-रात तुम्हारी बुराई ही करते फिरते है और फिर मौका पडने पर तुम उनकी सहायता मे दौड पडते हो।" मैंने उन्हे नम्रतापूर्वक उत्तर दिया था—"वे लोग अपनी दुष्टता को नही छोडते तो मैं अपनी शराफत को क्यो छोड दूँ।" आप तो देख ही रहे है बाहर से जो महापुरुष यहाँ आते है वे अपने भाषणो मे मेरी भूरि-भूरि प्रशसा करते है। इसका एक ही कारण है कि मे अपनी आदमीयत को नही छोडता। जो जिस रग का चश्मा लगाकर मुझे देखता है, मैं उसे वैसा ही दिखलाई पडता हूँ। उपकार करने वाले और दूसरो की बढती को देखकर जलने वाले मित्रो से मैं बराबर कहा करता हूँ—"सब दिन एक समान नही होते। ईमानदारी और सज्जनता ही फलती है। मैं समझता हूँ कि हर आदमी मे अनुकूल और प्रतिकूल वृत्तियाँ हर समय मौजूद रहती हैं। इनसे ही राग-द्वेष पैदा होते हैं। अनुकूल मे राग होता है और प्रतिकूल मे द्वेष। ये राग-द्वेष ही सारे अनर्थों की जड है। राग से काम और द्वेष से क्रोध उत्पन्न होता है।

राग-द्वेष वाले मित्रो को बराबर मैं कुछ न-कुछ कहता ही रहता हूँ। ऐसे ही एक मित्र एक दिन लम्बे भाषण देने के बाद मुझसे पूछने लगे—"कैसा रहा?" उनकी बात सुनकर मुझे हँसी आ गई और मैंने कहा—"अच्छा रहा।" लेकिन एक बात आप नही समझने है। आप वह नही हैं जो आप समझते हैं बल्कि वह है तो आप सोचते हैं।" फिर मैंने कहा—"जानते हैं हम धन दौलत के लिए बडे-से-बडा बलिदान दे सकते हैं किन्तु अपनी आत्मा की उच्चता, महत्ता तथा व्यापकता के लिए व्यावहारिक रूप मे कुछ भी नही करते। जब तक मनुष्य के मस्तिष्क मे बुरे और गन्दे विचारो की लहरें उठती रहती है तब तक उसका खून गन्दा और जहरीला रहता है। दूसरे शब्दो मे—विचारों की अशुद्धता से ही खून मे खराबी पैदा होती है। विचार ही रोशनी और स्वास्थ्य का भण्डार हैं।

साहित्य और राजनीति दोनो मे ही मेरा समान प्रवेश है। मेरे अस्त-व्यस्त जीवन को देखकर बहुत-से लोग अक्सर मुझसे पूछ बैठते हैं—"आप लिखते कब और कैसे हैं?" उन लोगों का आश्चर्यित होना स्वाभाविक ही है। उन लोगो से मैं उत्तर मे

कहा करता हूँ—"मेरे लिखने का कोई नियम नही है। कभी-कभी मैं महीनो दिन-रात कार्यव्यस्त रहता हूँ, एक मिनट का भी अवकाश नही मिलता और कभी-कभी दिन-रात लिखता रहता हूँ। लिखते समय मैं केवल लेखक ही नही रहता हूँ, अपनी सृष्टि का द्रष्टा भी रहता हूँ। लिखने के पहले मै कोई तैयारी नही करता। भाषा और व्याकरण की कुछ अशुद्धियाँ रह जाती है। प्रेस मे भेजने के पहले पाण्डुलिपि मैं अपने किसी मित्र को दे देता हूँ तब मै पुस्तक छपने के लिए भेजता हूँ।

डॉक्टर दिनकर की बहुचर्चित पुस्तक "सस्कृति के चार अध्याय" देखकर मुझे बहुत आश्चर्य हुआ कि इतनी मोटी पुस्तक कैसे लिख ली।" इसी तरह मैंने जब अपनी "बीती बातें" पुस्तक लिखी और वह छपकर तैयार हो गयी तब भी मुझे आश्चर्य हुआ कि मेरे जैसा कम पढा-लिखा आदमी इतनी मोटी पुस्तक कैसे लिख सका। एक दिन मैं डॉक्टर सुधाशु के यहाँ (२, किग जार्ज एवेन्यू, पटना) जा रहा था। अरविन्द कुमार गाडी चला रहे थे। मैं विचारमग्न था कि मेरे मन मे यह भाव उठा—मेरे जैसा कम पढा-लिखा आदमी इतनी मोटी पुस्तक "बीती बाते" कैसे लिख सका। अन्त मे इस निर्णय पर आया कि बिना ईश्वर की कृपा के मनुष्य कुछ नही कर सकता। जो कुछ भी मैंने लिखा है, इसका मुझे खुद भी ज्ञान नही है। परमात्मा ने ही इतनी पुरानी-पुरानी बातें याद दिला-दिलाकर लिखवाई हैं। जब कभी भी मैं लिखने बैठता हूँ, थोडी देर मे ही बीस-बीस तख्ते कागज लिख डालता हूँ। लिखने के बाद ईश्वर को प्रणाम करता हूं। यदि मेरे पास प्रेस कापी तैयार करने वाला कोई आदमी हो तो मैं दो दिनो मे सौ-दो सौ पृष्ठो की पुस्तक लिखकर प्रेस मे दे दू। प्रेस कापी जब भी किसी से तैयार करवाता हूं तब उसे काफी परिश्रमिक दे देता हू। मुफ्त मे किसी से कोई काम लेना—किसी का एहसान लेना मैं उचित नही समझता।

सन् १९४० ई० की बात है। परतन्त्र भारत मे रामगढ मे काग्रेस का अन्तिम अधिवेशन हुआ था। मैं वहाँ प्रारम्भ से ही था, नियमानुसार सब काम समय पर होते थे। महाराष्ट्र की बहुत-सी महिलाएँ भी काम करती थी। एक दिन भोजन की घण्टी बजी। मेरे साथ सुश्री इन्दु जी, सरला जी आदि भोजन करने गई। इन्दु जी महाराष्ट्र की रहने वाली थी। वह कविता लिखा करती थी और कुछ-कुछ नृत्य करना भी जानती थी। हम लोग जब भोजन करने बैठे तभी किसी ने इन्दु जी से कविता सुनाने का आग्रह किया। उन्होने नृत्य के साथ कविता सुनाना प्रारम्भ किया। सब आदमी उनका नृत्य देखकर, कविता सुनकर मन्त्रमुग्ध-से हो गए। भोजन-घर से कोई जाना ही नही चाहता था। किसी ने बाबू साहब से शिकायत की कि "सुहृद जी तो चौका घर मे कविता सुन रहे हैं और सुनने वाले लोग चौकाघर से निकलते ही नही है जिससे भोजन करने वालो को दिक्कत हो रही है।" बाबू साहब और राजेन्द्र बाबू एक ही जगह ठहरे हुए थे। शिकायत करते समय श्याम बाबू भी वही थे। उन्होने तुरत आकर मुझे

सूचित किया। चौका घर खाली हो गया और लोग भोजन करने बैठे। उसी दिन सबेरे डॉ० लक्ष्मीनारायण सुधांशु, पूर्णियाँ से राजेन्द्र बाबू से मिलने और कुछ रुपया देने आए थे। उनके चले जाने के बाद प० विनोदानन्द झा आए। राजेन्द्र बाबू चरखा चला रहे थे। विनोदा बाबू ने अपनी तकली निकाली और उसे चलाते हुए राजेन्द्र बाबू से बातें करते रहे। तकली चलाते हुए विनोदा बाबू मूड मे आ गए और बहुत ही लयताल से सस्वर एक गीत उन्होने गाया। गीत सुनकर राजेन्द्र बाबू और बाबू साहब बहुत ही प्रसन्न हुए। मै भी उनका गाना सुनता रहा। थोडी देर के बाद विनोदा बाबू चले गए और बाबू साहब तथा राजेन्द्र बाबू अपने-अपने काम मे लग गए। मैं भी अपने काम पर अपने आफिस चला गया। श्यामा बाबू ने जब उन सज्जन की शिकायत वाली बातें कही तब मैंने सोचा कि कल सबेरे बाबू साहब मुझ पर अवश्य रज होगे। उसी समय मै इन्दु जी को साथ लेकर राजेन्द्र बाबू और बाबू साहब के सम्मुख चला गया। उनके कुछ पूछने के पहले ही मैंने कहा—"बाबू साहब, इन्दु जी का नृत्य के साथ कविता-पाठ इतना सुन्दर होता है कि वर्णन करने योग्य नही। अभी हम लोग भोजन कर रहे थे और ये कविता सुनाने लगी। लोग भोजन छोडकर घण्टो कविता सुनते रहे। कोई उठने का नाम नही लेता था। आप लोग भी सुन लीजिए। राजेन्द्र बाबू से मैंने कहा—"बाबू जी ! सुनी ना।" इन्दु जी से मैंने कहा—"सुनाओ कविता।" नृत्य के साथ उन्होने कविता सुनाना प्रारम्भ किया। दोनों महापुरुष उनके कविता-पाठ और नृत्य से बहुत प्रसन्न हुए। फिर क्या था, बाबू साहब का क्रोध प्रसन्नता मे परिणत हो गया। एक घण्टे के बाद वहाँ से हम लोग अपने कैम्प मे आए। श्यामा बाबू से मैंने सारी बातें बताई। मैंने कहा—' भाई जी, आप यदि शिकायत की बात नही बतलाते तब तो कल सबेरे बाबू साहब मुझपर अवश्य रज होते।" श्याम बाबू मेरी बातो को सुनकर तथा मेरी युक्ति को जानकर बहुत प्रसन्न हुए। आज जब उस दिन की—सुबह से शाम तक की, बातें याद आती हैं तो सारा दृश्य आँखो के सामने नाच उठता है। विनोदा बाबू का तकली चलाते हुए लय के साथ सस्वर गाना, सुधांशु जी का घुल मिलकर कि "किस जिले से कितने रुपये आए और कितना बाकी हैं" बातचीत करना, रात्रि में सुश्री इन्दु जी का उस कविता का पाठ जिसमे किसान खेत मे हल जोतने जाता है—उसके माथे पर गमछे में थोड़ा-सा भोजन बँधा है—बाद मे उसकी स्त्री पानी लेकर आती है, उनका नृत्य के साथ कविता सुनाना आदि सभी बाते, जैसे कल की ही हो। विनोदा बाबू को तकली कातते हुए सस्वर गाना याद है या नही—मै नही जानता। सुधांशु जी ने बाबू साहब और राजेन्द्र बाबू से क्या-क्या बातें उस दिन की यह उन्हे स्मरण है या नही—मैं नहीं कह सकता, पर, मेरी स्मृति-पर सारी बाते ज्यो की त्यो अंकित हैं। साथ-ही-साथ भाई जी का उस रात मे मुझे सूचित करना कि बाबू साहब से एक सज्जन मेरी शिकायत कर रहे है जिसके फलस्वरूप राजेन्द्र बाबू और बाबू साहब का यह जान

जाना कि एक महाराष्ट्री लडकी इतना सुन्दर कविता-पाठ करती है और इतना अच्छा नृत्य भी जानती है—ये सारी बाते भाई जी याद रखते हुए भी भूलने की कोशिश करते होंगे क्योकि न वह दिन रहा न जमाना और न वह विचार तथा वैसा त्याग ही। रामगढ मे वर्षा हो जाने के कारण लोगो को बहुत कष्ट हुआ फिर भी वैसा काग्रेस अधिवेशन फिर न कही हुआ और न कभी होगा। उसका निशान अभी भी रामगढ झडा चौक पर अशोक पिलर नाम से रॉची जाने-आने वाले लोगो को दिखलाई देता है।

३०-१२-१९५९ ई० को राष्ट्रपति डॉक्टर राजेन्द्र प्रसाद रूरल कीमरी का शिलान्यास करने बरौनी आए हुए थे। शिलान्यास के स्थान पर विशिष्ट व्यक्तियों को राजेन्द्र बाबू से परिचय कराने के लिए खडा किया गया था। मैं उस पक्ति मे खडा नही हो रहा था। मैं सोच रहा था कि मेरा तो उनसे परिचय है ही—परिचय कराने के लिए क्यो खडा होऊँ। लेकिन धर्मदेव बाबू (सब-जज) और श्री हरिहर महतो, एम० एल०ए० ने मुझे खीचकर अपने बीच मे खडा कर लिया। राचेन्द्र बाबू आए, सबसे परिचय हुआ। शिलान्यास के बाद वे स्टेशन चले गए। मैं भी स्टेशन गया। राजेन्द्र बाबू और डॉक्टर जाकिर हुसैन प्लेट फार्म पर कुर्सी लगाकर धूप मे बैठे थे। मैं जब उनके पास पहुँचा तब राजेन्द्र बाबू ने कहा—"ए ठो कुर्सी मगा के बैठ।" मैं कुर्सी मगाकर उनके बगल मे बैठकर बाते करने लगा। मैंने कहा—"बाबू जी ! ई कौन तरीका है कि परिचित आदमी से परिचय करादे के ?" उन्होने कहा—"जब हम पहले पहल राष्ट्रपति भइली त सरदार (वल्लभ भाई पटेल) से जवाहर लाल जी वगैरह से हमरा के परिचय करावल गइल" तब मैंने कहा—"रउवा काहेना कहलीं जे एहलोग से त परिचय हमरा पहले से बा।" इस पर राजेन्द्र बाबू ने कहा—"तु अबगे काहे ना कहत हा जब तोहरा के लोग हमरा से परिचय करावत रहे तब।" बाबू जी की बाते सुनकर मुझे हँसी आ गई। इसके बाद मैंने कहा—"बाबू जी ! राजेन्द्र पुल चली देख ली।" इस पर वे बोले—"भागवत बाबू के बोलाब। मोटर से चल।" तब मैंने कहा—"अभी सडक अच्छा नईखे।" इसके बाद रेलवे के जी०एम० को बुलाया गया। पैंतीस मिनट मे इजिन वगैरह ठीक करके गाडी तैयार हो गई और सभी आदमी राजेन्द्र पुल देखने चले। सभी अफसर भी साथ चले। पुल के दक्षिणी हिस्से में हाथिदह स्टेशन पर गाडी खडी की गई। सभी लोग गाडी से उतर कर पुल देखने लगे। राजेन्द्र बाबू काफी दूर तक लाइन-लाइन चले गए। मैं डॉक्टर जाकिर हुसैन (अब उपराष्ट्रपति) से खडा होकर बातें कर रहा था। मैने कहा—"डॉक्टर साहब ! मैं आपका नाम बहुत पहले से जानता हूँ। डॉक्टर साहब ने हँसते हुए जवाब दिया—'क्या शरारत मे ?" मुझे भी हँसी आ गई। मैंने कहा—"नही, विद्वत्ता मे।' राजेन्द्र पुल से लौटकर राजेन्द्र बाबू मुजफ्फरपुर चले

गए और मैं सुहृदनगर चला आया। मैं जब सध्या होते-होते बेगूसराय पहुँचा तब कुछ सज्जनों के द्वारा फैलाई गई ऐसी झूठी अफवाह सुनने को मिली कि सुहृद जी बिना प्रोग्राम के ही राजेन्द्र बाबू को पुल दिखाने ले गये जिससे सी०आई०डी० विभाग के आठ अफसर डिसमिस हो गए है। मैं जहाँ भी गया वही यह बात सुनने को मिली वह भी ऐसे लोगो के मुख से जो यहाँ के प्रतिष्ठित व्यक्ति कहे जाते है। इस तरह की झूठी खबर फैलाने मे यह रहस्य था कि इसमे मेरी बदनामी होगी, पर, मुझे इससे प्रसन्नता हो रही थी कि जो लोग इसे सुनेगे वे इतना तो जानेगे कि राष्ट्रपति डॉ० राजेन्द्र प्रसाद सुहृद जी को इनता मानते हैं कि बिना प्रोग्राम के उनके आग्रह पर पुल देखने चले गए। मुझे आश्चर्य हो रहा था कि यदि राष्ट्रपति बिना प्रोग्राम के ही पुल देखने गए तब इससे सी०आई०डी० के अफसर क्यो नौकरी से बर्खास्त होगे! बहुत दिनो के बाद जब मैं दिल्ली गया तब राजेन्द्र बाबू से इस अफवाह की चर्चा की। उन्होने कहा—"तोहार बढती देख के वहाँ के खास-खास लोग बराबर जलते रहेला। जलला से त अच्छा बा कि ऊलोग अपना के ऊपर उठावे के कोशिश करे। कतना तोहरा से जली लेग। तोहरा किताब पर एक दो बार हम कुछ लिखले रही तबनो घरी न कुछ तोहरा खिलाफ जहाँ तहाँ गुमनाम चिट्ठ लिखले रहे लोग।" यह बात मैंने डॉक्टर दिनकर से भी कही। उन्होने उत्तर दिया—"जलने दो। जलकर खुद ही राखव हो जायँगे सब।" दिनकर जी यहाँ की सारी बाते जानते है। राष्ट्रपति कही जायँ और इसके लिए कोई अफसर बर्खास्त हो जाय—ऐसी अफवाह उड़ाने वाले को पागल या गुड्डा नही कहा जायगा तो क्या कहा जायगा।

देश-विदेश के परिचित या अपरिचित कोई भी महापुरुष बेगूसराय की पुण्य भूमि पर पधारते हैं तब आम सभा मे भाषण देते समय मेरी चर्चा करते हुए मेरी प्रशसा करने लगते हैं। कुछ लोगो को यह असह्य हो जाता है।

ता० २१-९-६५ ई० को बेगूसराय गणेशदत्त कॉलेज के प्रागण मे तीस हजार की उपस्थिति वाली एक महती सभा मे भाषण देते हुए सत विनोबाभावे ने मेरे विषय मे तथा मेरी पुस्तक "बीती बाते' के विषय मे जो कुछ कहा उसकी कुछ पक्तियाँ लिख देना मैं उचित समझता हूँ—

"इस बेगूसराय की धरती पर एक से एक बडे साहित्यकार तथा सार्वजनिक कार्यकर्त्ता हो गए हैं और अभी मौजूद हैं। इनमे एक सुहृद जी भी हैं। उन्होने जनता के बीच अपना विशिष्ट स्थान बना लिया है। उन्होने आज अपनी एक बहुत अच्छी किताब "बीती बातें" पढने के लिए दी है। ऐसे लोगों को अपने कर्त्तव्य के बारे मे मैं क्या समझाऊँ।' बेगूसराय से चालीस मील दक्षिण लक्खीसराय मे जब बाबा दूसरे दिन पहुँचे तो वहाँ भी अपने भाषण में मेरी चर्चा की। उस भाषण को समाचार पत्रो मे जब

राष्ट्रकवि दिनकर जी ने देखा तब उन्होने मुझे एक पत्र लिखा जिसके कुछ अश नीचे है—

२, साउथ एवेन्यू लेन,
नई दिल्ली।
२५—१०—६५

प्रिय सुहृद,

विनोबा जी ने जो तुम्हारी चर्चा की है वह तुम्हारे पुण्य का फल है। तुमने जीवन भर अपमान, कुत्सा, कलक सहकर सबसे सबध निभाया। सबका उपकार किया है। यह पुण्य तुम्हारे गुजरने के बाद और जोर से बोलेगा। ता० ३१ को अपराह्न मैं सुहृदनगर पहुँचूँगा। रात भर ठहरूँगा।

तुम्हारा—
दिनकर

राजेन्द्र बाबू और अनुग्रह बाबू या कुछ अन्य विशिष्ट व्यक्ति जब कभी बेगूसराय आए और ठहरने का मौका हुआ तब मेरे यहाँ छोड़कर अन्यत्र नही गए। एक बार बाबू साहब (अनुग्रह बाबू) से १६५२ ई० मे एक सज्जन ने कहा—'आप सुहृद जी के यहाँ क्यो ठहरते हैं।" इस पर बाबू साहब ने जवाब दिया—"क्योकि सुहृद जी आप लोगों के समान नही हैं।" कहने वाले सज्जन अपना-सा मुँह लेकर रह गए।

बाबू साहब के समय मे मेरे यहाँ कुछ अधिक मिनिस्टर लोग आते-जाते थे। उनके देहान्त के बाद उनमे से खास-खास लोग मेरे यहाँ आते है। उन लोगो के नही आने से मेरे मन मे शका होने लगी कि यहाँ के दुर्जन लोग मेरी शिकायते लिखकर उनके पास भेजते है। यह शका निराधार नही है। एक दिन मैं मुगेर सरकिट हाउस मे बैठा हुआ था। मुँगेर के कलक्टर ने मुझसे कहा—"आपके विरुद्ध रोज एक-दो गुप्त पत्र मेरे पास आते है। मैं सबको रखे जाता हूँ। जब मैं यहाँ से जाने लगूँगा तब आपको उन्हे सुपुर्द कर दूँगा। मैं आपको बचपन से जानता हू इसीलिए, नही तो कोई नया आदमी उतने गुमनाम पत्रों को पढकर अपनी कोई धारणा बना लेता।" मैंने उत्तर दिया—मै उन पत्रो को लेकर क्या करूँगा। मेरे विरुद्ध लिखने वाले लिखते-लिखते मर जायेगे और मैं जिन्दा का जिन्दा रहूगा और ऊँचा उठता जाऊँगा। मैं तो उन लोगो को जानता ही हूं। ये सारी बातें डॉ० सुधाशु के सामने हुई।

एक बार मैं दिल्ली गया था तब राजेन्द्र बाबू से यहाँ की बातें मैंने कही। उन्होंने उत्तर दिया—अभी तक तोहरा से लोग जलते बा, सबके तू भलाई करेल। अनुग्रह बाबू रहलन तब तोहरा बारे मे बराबर हमनी का आपसे मे बतिआवत रहली

हूँ जा। तोहार केहू का बिगाड राकेला।"

राजेन्द्र बाबू की बातो को सुनकर मन मे एक दृढता जम गई—विश्वास हो गया। बात ठीक ही है, जब मैं किसी की बुराई नही करता—बुराई करने वालो की भी भलाई ही करता हूँ, तब फिर मुझे चिन्ता क्यो हो। फिर भी लौकिकता कोई चीज है। आखिर मै भी हाड-माँस का ही बना हुआ एक आदमी हूँ। जब कोई मेरी झूठी शिकायत करता है—मेरे विरुद्ध झूठे प्रचार करता है तब मुझे तकलीफ जरूर होती है—इसलिए कि जो लोग मुझे नही जानते है और मेरे विषय मे ऐसी-ऐसी बाते सुनते है, वे क्या सोचते होगे। उनके मन मे क्या-क्या विचार उठते होगे। अत मे इस बात को याद करके मन को सान्त्वना देता हूँ कि जब गाँधी जी जैसे महात्मा को लोग गोली मार देते है तो मेरे जैसे छोटे लोगो की क्या बात है।

यह बात सही है कि मै जितना ऊपर नही उठा हू उससे अधिक चारो ओर फैल गया हूँ। यह प्रकट है कि ससार मे अच्छे और बुरे दोनो प्रकार के लोग है। दोनो तरह के लोग मेरे व्यक्तित्व की छत्रछाया मे नि.सकोच और निर्भय होकर खेलते है। अपनी पूजा करने वालो को मै उतना ही सम्मान देता हूँ जितना गाली देनेवालो को। शिकायत करने वालो के प्रति कभी-कभी क्षणिक दुख होता है लेकिन उससे मेरी कोई हानि नही होती है। उन बातो को मैं कभी अपने जीवन मे महत्व नही देता हूँ।

१९४६ ई० की बात है। उस समय देश आजाद नही हुआ था। दिसम्बर के महीने मे सुहृदनगर पोस्ट आफिस खोलने की आज्ञा हो गई थी। १ जनवरी, १९४७ ई० को सुहृदनगर डाकघर बाजाप्ते खुल गया। उन दिनो काँग्रेस का मन्त्रिमडल बना था। जब सुहृदनगर पोस्ट आफिस खुला तब यहाँ के लोगो ने इसका विरोध किया कि इसका नाम गाँधी नगर रखा जाय, सुहृदनगर नही। यह बात बिहार के विधायको को मालूम हुई है। उन लोगो ने मिलकर एक आवेदन-पत्र पोस्टल विभाग के डाइरेक्टर श्री कृष्ण-प्रसाद आई०सी०एस० को दिया कि "सुहृद जी के नाम पर सुहृदनगर डाक घर खोलकर सरकार ने बहुत ही अच्छा और सही काम किया है। इसके लिए सरकार को बधाई है।" बहुत-से एम० एल० ए० ने अलग-अलग पत्र भी बिहार के पी० एम० जी० दीवान बहादुर दौलतराम जी को लिखे। सुहृदनगर नाम का विरोध करने वाले अत मे हतोत्साह होकर बैठ गए।

यह आश्चर्य की ही बात है कि मेरी बढती को देखकर जहाँ बाहर वालो को प्रसन्नता होती है वहाँ बेगूसराय के कुछ खास-खास लोगो को जलन क्यो होती है। वे मेरे विरुद्ध गलत प्रचार कर अपनी शक्ति का अपव्यय क्यो करते है। लेकिन उनके इस प्रकार के विरोधी प्रचार से कभी-कभी मेरा उपकार भी हो जाता है। जो लोग मुझे नही जानते है वे भी जानने लगते है और भेट होने पर मेरी तारीफ करने लगते है।

१९५३–५४ ई० मे रेलवे अधिकारियो ने बेगूसराय रेलवे स्टेशन के बगल मे एक पार्क बनवा दिया। उस पार्क को बनाने मे रेलवे को कोई खास खर्च नही पडा, क्योकि रेलवे गुमटी को आगे की ओर बढाया गया तो सडक को भी आगे बढाकर रेलवे लाइन पार करके एक नयी सडक बनानी पड़ी। सडक को बनाने के लिए जो मिट्टी खोदी गई उससे एक बडा तालाब बन गया। एक दिन मैंने रेलवे अधिकारी को यह सुझाव दिया कि इस गढे को तालाब बनवा दिया जाय और इसके ऊपर चारो तरफ फूल-पत्ती लगवा कर एक पार्क बनवा दिया जाय। इसके बनाने मे कोई विशेष खर्च भी नही पडेगा। मेरा सुझाव अधिकारी को पसद आ गया। उन दिनों श्री लाल बहादुर-शास्त्री रेलवे मत्री थे। वे पूर्णियाँ होते हुए मुरली गज जा रहे थे। उन्होने मुझे भी साथ चलने के लिए पत्र लिख दिया था। मैं दो-तीन मित्रो के सहित शास्त्री जी के साथ मुरलीगज चला। मैंने शास्त्री को भी वह जमीन दिखलाई और अपना सुझाव बतलाया। उन्होने एन० ई० रेलवे के जनरल मैनेजर श्री भीष्म अरोडा को मेरे सुझाव की बात कही। अरोडा साहब को यह बात जॅच गई। उन्होने उसकी अच्छी रूपरेखा प्रस्तुत कर दी। गढे को तालाब का रूप दे दिया गया और उसके ऊपर चारो तरफ फूल-पत्ती लगवा कर जगह-जगह पर बेच रखवा दिए गए। साथ-ही-साथ बिजली बत्ती भी लगवा दी गई—चारो ओर मरकरी के प्रकाश से पार्क जगमग करता रहता है। रेल से जो भी मुसाफिर उतरते हैं वे उस पार्क मे विश्राम कर अपनी विश्रान्ति को दूर करते है और अपने दिल और दिमाग को फूल-पत्तियो के बीच बैठकर ताजा करते है। एक बात कह देना देना जरूरी है कि केवल रेल के मुसाफिर ही नही, बेगूसराय के नागरिक भी उस पार्क से लाभ उठाते है। कुछ दिनो के बाद जगजीवन बाबू रेल मत्री हुए। उन्होने और भी फूल-पत्ती से पार्क को सजवा दिया। दूर-दूर तक इस इस पार्क की तारीफ होने लगी। लेकिन यहाँ के कुछ जलन स्वभाव वाले लोगो को यह बात असह्य प्रतीत होने लगी। वह भी केवल इसलिए कि यह मेरे सुझाव पर बना है। उन लोगो ने रात को सभी मरकरी और बल्ब खुलवा कर गायब कर दिये जो नही खुले उन्हे तोड दिया गया। इतना ही नही, सर्चलाइट के बेगूसराय के सवाददाता ने यह खबर भेजकर छपवाई कि "यह रेलवे पार्क बेकार बना है। इसमें फूल-पत्ते वगैरह बेकार लगाए गए है। इस पर व्यर्थ ही एक लाख पचीस हजार रुपया खर्च किया गया है। इत्यादि। जहाँ दो-चार हजार रुपये भी नही खर्च हुए, वहाँ लाखो का खर्च छापा गया। जहाँ दिन-रात यात्री लोगी आकर उठते-बैठते है उसके विषय मे छपवाया गया कि बेकार बना है। यहाँ तक उसमे छपा कि इसी पार्क के चलते जनरल मैनेजर पर आफत आ गई है। जितनी बाते भी छपी, सब बिलकुल झूठी थी। जब यह समाचार सर्चलाइट मे छपा था, मैं उस समय पटने मे था। बाबू (डॉक्टर अनुग्रह नारायण सिह) ने वह समाचार पढकर सुनाया। उन दिनो सर्चलाइट मे प० शम्भूनाथ झा सहायक सम्पादक

थे। शम्भू बाबू अरोडा साहब के परम मित्र थे। उनसे जब मैंने इस समाचार की चर्चा की तब उन्होने सर्चलाइट मँगवाया और उस समाचार को देखा। उनको बहुत तकलीफ हुई कि यह सरासर झूठा समाचार कैसे छप गया। पार्क कैसे बना—यह वे अच्छी तरह जानते थे। उन्होंने प्रतिवाद छापना चाहा पर मैंने उन्हे यह कहकर रोक दिया—"सत्य-सत्य ही रहता है। प्रतिवाद छपाने का मतलब है कीचड उछालना। कीचड से कीचड़ नही धोया जाता।" मेरी बातो को सुनकर शम्भू बाबू हँसे और उन्होने मेरी सलाह मान ली। महीनो बाद जब मैं पटना से बेगूसराय आया तब बेगूसराय के प्रसिद्ध वकील और लेखक श्री झारखडी प्रसाद तथा बेगूसराय लोकल बोर्ड के भूतपूर्व चेयरमैन तथा प्रसिद्ध वकील श्री चन्द्रशेखर प्रसाद जी (चाँदी बाबू) को पार्क मे टहलते देखा। उन लोगो ने कहा—"इतनी अच्छी चीज बन गई, पर, ऐसे-ऐसे लोग भी है जो इसके विषय मे झूठी-झुठी बातें अखबारो मे छपवाते हैं। पटना मे तुमने तो देखा ही होगा, इसका प्रतिवाद क्यो नही दे दिया?" मैंने हँसते हुए कहा—"आप लोगो ने क्यों नही प्रतिवाद लिखकर भेज दिया। क्या आप लोग लिखते तो आपको भाई का भात देना पडता?"

लेकिन बेगूसराय के कर्मठ कॉग्रेसी नेता श्री मेदिनी पासवान, एम० एल० ए० तथा श्री हरिहर महतो, एम० एल० ए० से नही रहा गया। मेदिनी बाबू ने अपने नाम से इसका प्रतिवाद सर्चलाइट मे छपवाया। हरिहर बाबू ने भी सर्चलाइट के सम्पादक को एक बहुत बडा पत्र लिखा। उस पत्र को सर्चलाइट के सम्पादक ने बाबू साहब को दिखलाया था। बाबू साहब पार्क की सभी बातें जानते थे। उन्होंने सम्पादक जी को असली बात समझाई। जब मैं दूसरी बार पटना गया तब सम्पादक मडल ने मुझसे कहा—"मैं इस सवाददाता को हटा देता हू।" इस पर मैंने सम्पादक मडल को समझाया कि ऐसा नही किया जाय।

उस पार्क के फूल पत्तियों को लोगो ने धीरे-धीरे उखाड़ लिया। एक दिन फूल के पेड उखाडते हुए व्यक्तियो को जब माली ने रोका तब उखाड़ने वालो ने धमकाते हुए कहा—"अगर बोलोगे तो इसी कुदाल से तुम्हारी गर्दन काट देंगे।" माली दौडा हुआ मेरे पास आया और सारी बातें मुझसे कही। मैंने माली को समझाया—"अब कोई आदमी फूल का पेड उखाड कर ले जाय तो तुम कुछ नही बोलना। जिन लोगो की सुख-सुविधा के लिए यह सुन्दर पार्क बना हुआ है वही जब इसे पसन्द नही करते है तब तुम्हारे रोकने से यह कितने दिन बचेगा? इसमे न तुम्हारे बाल-बच्चे आकर बैठेंगे, न मेरे। मैंने तो यही वालो के लिए सब कुछ किया है।"

उस पार्क को दुष्ट लोगो ने इसलिये बर्बाद कर दिया कि वह सुन्दर चीज मेरे सुझाव पर बनी। अब वह पार्क उजाड़-सा लगता है। अब केवल इतना ही होता है कि रेल से उतरनै वाले मुसाफिर तथा स्थानीय लोग उसमे आराम करते हैं—रात्रि मे और

साँझ-सबेरे भी ।

मैं अपनी औकात से बहुत अधिक ऊपर उठ गया हूँ। यह यहाँ के कुछ लोगो को असह्य हो गया है। इसलिए वे दिन-रात मुझे नीचा दिखाने की कोशिश करते रहते हैं। लेकिन जिसको ईश्वर नहीं गिरावेगे उसको दुष्टजन कैसे गिरा सकते हैं।

आसम रोड (राष्ट्रीय पथ) भारत की एक प्रसिद्ध सडक बनी है। इस सडक पर ससार के बडे बडे आदमी आते रहते हैं और बेगूसराय पहुँचने पर सुहृदनगर आकर मुझे आशीर्वाद देना नही भूलते। आसाम रोड से उत्तर की ओर रोड सुहृदनगर होते हुए नेपाल की सीमा तक चली गई है। सड़क के किनारे सरकार के लोक निर्माण विभाग ने एक बहुत बड़ा साइन बोर्ड लिखवाकर टाँग, दिया है। जिसमे सबसे ऊपर लिखा है सुहृदनगर इतना किलोमीटर। तब है मझौल इतना किलोमीटर इत्यादि। साइन बोर्ड से लोगों को सुहृदनगर या मझौल जाने मे सहूलियत होती है। इस पर दिनकर जी ने कहा—"बेगूसराय मे साहित्य और राजनीति दोनो क्षेत्रो का सुहृद पडा है। इसके यहाँ सभी लोग आते-जाते रहते हैं।" इसके बाद जलपान हुआ। वहाँ से आने पर मैंने दिनकर जी से कहा—"दिसम्बर, १९६५ के साप्ताहिक हिन्दुस्तान मे सुधाशु जी पर मेरा एक लेख छपा था। उसे देखकर किसी ने आदरणीय भाई श्री बाँकेबिहारी-भटनागर जी के पास मेरे विरुद्ध बहुत सी बाते लिखकर भेज दी। प्रिय बन्धु श्री ब्रज-किशोर नारायण का एक पत्र है इसी आशय का—

पटना,
३—१—६६

आदरणीय सुहृद भैया,

सादर प्रणाम। आपके खिलाफ किसी दुष्ट ने भटनागर जी को बुरी-बुरी बातें लिख दी थी। वे मुझसे पूछ रहे थे। उन्हे मैंने सभी बातें बता दी। आप से सबधित दोनो रचनाओ की बहुत अच्छी प्रतिक्रियाएँ हैं।

आपका—
नारायण

सभी बाते जानने के बाद वे दुखित होकर बोले—"अभी तक सब जलते ही है। यही के किसी व्यक्ति ने लिखा है।" इस पर मैने कहा—इन बातों का मेरे ऊपर कोई असर नही होता है। मेरे प्रति कौन क्या करता है यह मैं अच्छी तरह जानता हूँ—सबको पहचानता हूँ। मेरे पास कोई मिनिस्टर आ जाता है तब गालियों से भरी हुई चिट्ठियाँ मेरे पास आने लगती हैं—आने वालों को भी गालियाँ और मुझे भी। लेकिन इससे मैं अपने अन्दर उनके प्रति किसी बात का अभाव नही होने देता।

ता० ७–३–६६, सोमवार को श्री हरिहर महतो, एम० एल० ए० आए। दस बजे तक यहाँ ठहरे। उस दिन होली थी। हरिहर बाबू ने मुझसे पूछा—"आप बाहर नहीं जाइएगा ?" मैंने कहा—"लोग रग दे देगे, इसलिए आज मैं दिन मे नही निकलूंगा।" इस पर वे बोले—"आप भले ही बाहर नही निकलें लेकिन लोग तो आप ही के नाम पर होली खेलते हैं।" मैंने कहा—"आपकी बात मैं नही समझ सका, साफ-साफ बतलाइए।" उन्होने बतलाया—"कई दिन हुए, मैं डेरा से सुहृदनगर आ रहा था। देखा कि आसाम रोड के उत्तर जो सडक पर साइन बोर्ड लगा है और जिस पर सुहृद-नगर इतना किलोमीटर आदि लिखा है उस साइन बोर्ड के सुहृदनगर वाले हिस्से पर किसी शरीफ ने कोलतार पोत दिया है।" मैं बोला—"यह कोई नयी बात नही है। इन शरीफो का बस चले तो वे मुझको भी मिटा दें, यह तो मेरे नाम के अक्षरो को उन्होने मिटाया है। आप खुद सोचिए, लोग मेरा नाम भी लिखा हुआ नही देख सकते—बर्दाश्त नही कर सकते।" मैंने हरिहर बाबू से बतलाया—लोक निर्माण विभाग के सेक्शनल अफसर श्री राधाकृष्ण चौधरी ६–३–६६ को कह रहे थे कि एक्जक्यूटिव इजीनियर श्री कमलेश्वरी प्रसाद जी यहाँ आए थे। सुहृदनगर पर अलकतरा पुता हुआ देखकर उनको बडा कष्ट हुआ। वे कहने लगे—"सरकार जनता के आराम के लिए काम करती है—पैसे खर्च करती है और चन्द शरीफ ऐसे है कि सरकार के उस काम को नष्ट करने मे ही अपना बडप्पन समझते हैं।"

ऐसे ही लोगों को लक्ष्य कर मैंने आज से पैंतीस वर्ष पूर्व एक कविता लिखी थी। हरिहर बाबू के आग्रह पर मैंने वह कविता उन्हे सुनाई।

ता० २४–२–६६ ई० को डाक्टर रामधारी सिंह जी 'दिनकर" श्री विष्णुदेव अग्रवाल जी की पत्नी के निधन के बाद उनसे मिलने बेगूसराय आए। साथ ही बेगूसराय के एस० डी० ओ० श्री सुशील कुमार सिंह की लडकी के विवाहोत्सव मे भी वे सम्मिलित हुए। विष्णुदेव बाबू से मिलने के बाद हम लोग सुशील बाबू के यहाँ गए। सुशील बाबू ने बडे ही उल्लास से दिनकर जी का स्वागत किया। सभी भाइयो का दिनकर जी के साथ एक ग्रूप फोटो भी हुआ। सुशील बाबू ने कहा—"सुहृद जी के चलते साहित्य और राजनीति दोनो क्षेत्र के लोग मेरे यहाँ आ गए।

सन्मार्ग साहित्य

आलोचना तथा शोध प्रबन्ध

१.	महाभारत का आधुनिक हिन्दी प्रबन्ध काव्यों पर प्रभाव	डा० विनय	२० ००
२	आधुनिक हिन्दी कथा साहित्य और चरित्र विकास	डा० बेचन	१६ ००
३	स्वातन्त्र्योत्तर हिन्दी साहित्य	,,	१५.००
५	बच्चन व्यक्तित्व और कवित्व	,,	१० ००
६	व्यक्ति और व्यक्तित्व	कपिलदेव नारायण	१० ००

उपन्यास

१	छोटे साहब	भगवतीप्रसाद वाजपेयी	७.००
२	राहें अलग-अलग	यादवेन्द्र शर्मा चन्द्र	४ ५०
३	धूप और बादल	श्रीराम शर्मा राम	४.५०
४.	जहाँगीर	,,	४.५०
५	पाप और पुण्य	कमल शुक्ल	५.००
६	निशा की गोद	,,	२ ५०
७	चीन के मोर्चे पर	डा० बेचन	३ ००
८.	शराबी का दिल	रमेश भारती	३ ५०
९.	कल्पना	रामकृष्ण कौशल	२ ५०
१०	गगा	हसकुमार तिवारी	६ ००
११.	पथ के राही	,,	२ ५०
१२.	मौत और ज़िन्दगी	द्वारिकाप्रसाद एम० ए०	३ ५०
१३	तिनके और लहरें	हरदयालसिंह एम० ए०	५ ००
१४.	सामाजिक कारा के बन्दी	,,	४ ००
१५	स्वयसिद्धा	माणिकलाल बन्द्योपाध्याय	३.५०
१६	प्रयास के सुमन	आदर्शमोहन 'सारग'	५ ५०
१७.	चमकता ससार	रामभरोसे त्रिपाठी	२.००
१८	परिधि के परे	जगन्नाथप्रसाद मिश्र	४ ००

१६. भँवर के बीच	श्यामल किशोर झा	३ ००

नाटक

१ हास्य नाटक	शौकत थानवी	३.००
२ राष्ट्रीय सुरक्षा के स्वर	हिमाशु श्रीवास्तव	३ ००
३ इक्कीसवी सदी बाईसवी सदी	भगवानदास सफडिया	४ ००
५ नया समाज और गाँव का देवता	रामकृष्ण बेनीपुरी	१ ००
६ शकुन्तला	,,	१ ५०

जीवनोपयोगी

१ आगे बढो	स्वेट मार्डेन	१ ५०
२ सफलता की कुँजी	स्वामी रामतीर्थ	१ ००
३ नैतिक जीवन	रघुनाथप्रसाद पाठक	२ ५०
४ पाठशाला के हीरे	,,	१ ००
५ देशभक्त बच्चे	,,	१ ५०
६ हम क्या चाहते है	स्वामी विवेकानन्द	१ ५०
७ विश्वशान्ति का सदेश	,,	२ ५०
८ कर्म योग	,,	२ ००
९ भक्तियोग	,,	२ ००
१० भक्ति और वेदान्त	,,	२ ००
११ तिलक विचार सार	म० ग० तपस्वी	२ ५०
१२ अस्सी घाव	कमल शुक्ल	२ ००
१३ मुगलों को चुनौती	,,	२.००
१४ चन्द्रशेखर आजाद	जगन्नाथप्रसाद मिश्र	१ ५०
१५ सरदार भगतसिंह	,,	१ ५०
१६ कुअरसिंह	,,	१ ५०
१७ सुभाष	उपेन्द्रकुमार एम० ए०	२ ००
१८ पटेल	,,	२ ००
१९ झाँकी हिन्दुस्तान की	अ० अ० अनन्त	३ ५०
२० हमारे पर्व और त्यौहार	चौधरी हरिहरसिंह	७ ५०
२१ विद्यार्थी जीवन	महात्मा नारायण स्वामी	१ ५०
२२ अतीत की विभूतियाँ	हिमाँशु श्रीवास्तव	३ ००

लेखक की अन्य रचनाए

काव्य

१	विजय (खण्ड-काव्य)	३ ५०
२	बिहार विभूति (खण्ड काव्य)	१२ ००
२	जगजीवन (खण्ड-काव्य)	३ ५०
४	प्रम-मिलन (खण्ड-काव्य)	३ ५०
५	बेगूसराय गोलीकाण्ड (खण्ड-काव्य)	२ ५०
६	विश्व बीणा (कवितायें)	२ ५०
७	प्रेम-प्रलाप (कवितायें)	३ ००
८	निर्झरिणी (कविताएँ)	२ ५०
९	बन्दी (कवितायें)	४.५०
१०	रजनी (कवितायें)	३ ६२

गद्य

११.	डॉ० अनुग्रहनारायण सिंह (जीवनी)	१२ ००
१२	जगजीवनराम (जीवनी)	२ ५०
१३.	बीती बातें (आत्मकथा)	१५.००
१४	मेरे अपने (संस्मरणात्मक जीवनी)	६ ००
१५	प्रेम निकुज (गद्य काव्य)	२.५०.
१६.	बादल (कहानी)—	प्रेस मे
१७	व्यक्ति और व्यक्तित्व	८.००